DYS-04

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

हठ योग एवं योग विज्ञान

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

प्रो. अशोक शर्मा
कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय ,
कोटा (राज.)

संयोजक एवं सदस्य

संयोजक
वैद्य नित्यानंद शर्मा
सहायक आचार्य (योग एवं स्वास्थ्य शिक्षा)
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय ,
कोटा (राज.)

सदस्य

डॉ. डी.एन. शर्मा
किच्छा, उत्तराखंड

डॉ. ओ.एन. तिवारी
विलासपुर (छत्तीसगढ़)

डॉ. दुर्गा अरोड़
नई दिल्ली

प्रो. गोविन्द शुक्ला
करवड़ जोधपुर (राज.)

डॉ. जयसिंह यादव
जोधपुर (राज.)

डॉ. राकेश जोशी
उदयपुर (राज.)

डॉ. किरण गुप्ता
जयपुर (राज.)

डॉ. गोविन्द पारीक
एनआईए, जयपुर (राज.)

डॉ. अंजना शर्मा
कोटा (राज.)

संपादक एवं पाठ लेखन

संपादक
वैद्य नित्यानंद शर्मा
BAMS, M.D., Ph.D. (योग एवं आयुर्वेद)
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय ,
कोटा (राज.)

भाषा संपादक
डॉ. अंजना शर्मा
चिकित्साधिकारी ,राज. वैद्य दा.द.जोशी.
जिला आयुर्वेद चिकित्सालय, तलवड़ी,
कोटा (राज.)

पाठ लेखक

डॉ. ओम नारायण तिवारी
योग एवं ज्योतिषाचार्य,
विलासपुर (छत्तीसगढ़)

डॉ. किरण गुप्ता
योग एवं प्राकृतिक चिकित्सक
डाईटिशियन, प्राकृतिक चिकित्सालय,
बापूनगर, जयपुर (राज.)

वैद्य नित्यानंद शर्मा
आयुर्वेदाचार्य एम.डी.पीएचडी
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय ,
कोटा (राज.)

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो. अशोक शर्मा
कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय ,
कोटा (राज.)

प्रो. लीला राम गुर्जर
निदेशक, अकादमिक
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय ,
कोटा (राज.)

डॉ. शिवकुमार मिश्रा
निदेशक, पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय ,
कोटा (राज.)

उत्पादन मुद्रण - जनवरी 2018
इस सामग्री के किसी भी अंश की वमखुविवि कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में मिमियोग्राफी चक्रमुद्रण द्वारा या अन्यत्र पुन: प्रस्तुत कने की अनुमति नहीं है।

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय कोटा

हठ योग एवं योग विज्ञान

अनुसूची

इकाई संख्या	**इकाई का नाम**	**पृष्ठ संख्या**
इकाई 1	योग विज्ञान का स्वरूप	2-10
इकाई 2	राजयोग का स्वरूप	11-24
इकाई 3	हठ योग का वैज्ञानिक स्वरूप	25-59
इकाई 4	हठयोग प्रदीपका ग्रंथ परिचय	60-71
इकाई 5	हठयोग साधना के आसन	72-92
इकाई 6	हठ योग एवं नाड़ी शुद्धि का वैज्ञानिक स्वरूप	93-108
इकाई 7	मुद्रा एवं बंध विज्ञानीयम्	109-127
इकाई 8	घेरण्ड संहिता : ग्रंथ परिचय	128-149
इकाई 9	घेरण्ड संहिता में आसनों का स्वरूप	150-172
इकाई 10	हठयोग एवं मंत्रयोग	173-179
इकाई 11	लययोग एवं तारकयोग	180-186
इकाई 12	स्वामी चरणदास : अष्टांगयोग ग्रंथ परिचय	187-208
इकाई 13	स्वास्थ्य एवं रोग का अर्थ एवं परिभाषा	209-218
इकाई 14	योग चिकित्सा की परिभाषाऐं	219-226
इकाई 15	सामान्य योग अभ्यासक्रम (प्रोटोकाल)	227-267

इकाई 1

योग विज्ञान का स्वरूप

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य
1.2 प्रस्तावना
1.3 योग विज्ञान का यम - नियम क्षेत्र
1.4 सृष्टिक्रम, पंचमहाभूत, योग का व्यावहारिक महत्व
1.5 योग विज्ञान की अवधारणा एवं क्षेत्र
1.6 स्वास्थ्य प्रबंधन में आश्टांगिक मार्ग
1.7 योग विज्ञान के विभिन्न क्षेत्र
1.8 सारांश
1.9 बोधात्मक प्रश्न
1.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

1.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी-

- योग विज्ञान का यम - नियम क्षेत्र
- सृष्टिक्रम, पंचमहाभूत, योग का व्यावहारिक महत्व
- योग विज्ञान की अवधारणा एवं क्षेत्र
- स्वास्थ्य प्रबंधन में आश्टांगिक मार्ग

1.2 प्रस्तावना

स्वास्थ्यानुसंधान ही योगानुसंधान है। जड़ एवं चेतन के प्राकृतिक सामंजस्य से परे हटना ही स्वा की स्थिति से हटना है और स्वा में अर्थात् समाधि में स्थिति होने के लिए क्रिया योग की आवश्यकता होती है। शरीर को सम्यक् स्वास्थ्य प्रदान करना (निरोग रखना) तप है , मन को सम्यक् स्वास्थ्य प्रदान करना (मन का निग्रह या नियंत्रण) स्वाध्याय है। तथा आत्मा को सम्यक् स्वास्थ्य प्रदान करना (आत्मा को तम के आवरण से रहित करना) ईश्वर प्रणिधान है। इसे ही क्रिया योग कहा जाता है। क्रिया योग ही साधना की प्रगाढ़ता में समाधि की योग्यता देता है जो योग विज्ञान का अन्तिम लक्ष्य है। **स्वास्थ्य प्रबंधन में आश्टांगिक मार्ग में यम एवं नियम के क्षेत्र के महत्व को स्वास्थ की दष्टि से वर्णन किया गया है।**

- योग विज्ञान क्या है यह ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे
- योग विज्ञान के आधारभूत क्षेत्रों, का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे
- योग विज्ञान के सिद्धांतों और तकनीको का सैद्धांतिक ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे
- योग विज्ञान का भारतीय समाज में स्वरूप की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे
- योग विज्ञान की सैद्धांतिक पृष्ठभूमि की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे
- योग विज्ञान का जीवन में क्या व्यवहारिक महत्व है इसकी जानकारी प्राप्त कर सकेंगे
- योग विज्ञान का परम्परानुसार विकास का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे
- योग विज्ञान का ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक विकास का ज्ञान प्राप्त सकेंगे।
- योग विज्ञान की अवधारणा को स्पष्ट रूप से जान सकेंगे।
- स्वास्थ्य प्रबंधन में अष्टांगिक मार्ग की उपयोगिता जान सकेंगे।
- योग विज्ञान के प्रमुख क्षेत्रों की जानकारी हासिल कर सकेंगे।

1.3 **योग विज्ञान का यम - नियम क्षेत्र**

मनुष्य के नैतिक प्रशिक्षण की विधियाँ यम कहलाती है इन विधियों के पाँच प्रकार है

(1) अहिंसा

(2) सत्य

(3) अस्तेय

(4) ब्रम्हचर्य

(5) अपरिग्रह

'यम' धातु से बनें इस शब्द का अर्थ है नियन्त्रण करना। पाँचों यमों द्वारा साधक अपने ऊपर नियंत्रण स्थापित करता है। अपने ऊपर नियंत्रण करने से समाज को भी स्वतः ही लाभ प्राप्त होता है इस कारण इन्हें यम कहते है। योग साधना में प्रवेश करने वाला साधक व्यक्तिगत स्तर पर आन्तरिक शुद्धि व सात्विक मनोवृत्ति निर्मित कर सकने में इन यमों द्वारा सक्षम हो पाता है। मन , वचन व कर्म से इनका पालन स्वयं के साथ समाज के लिए भी अत्यंत लाभदायक है।

सामाजिक व्यवहार में पूर्णरूप से इन यमों का पालन नहीं किया जा सकता इसे ही ध्यान में रखकर महर्षि पंतजलि ने ग्रहस्थ व्यक्तियों के लिए इनके पालन में कुछ ढील दे दी है। जब इनका पालन प्रत्येक स्थिति, समय एवं काल में अनिवार्य रूप से किया जाता है तो इन्हें व्रत कहाँ जाता है तथा ये पाँच यम पंचमहाव्रत कहे जाते है। केवल यम क्षेत्र में ठीक से प्रवेश करके भी योग के अन्तिम लक्ष्य कैवल्य को प्राप्त किया जा सकता है। यम विशुद्ध रूप से मानसिक प्रशिक्षण का क्षेत्र हैं।

योग विज्ञान का नियम क्षेत्र

मनुष्य के लिए कर्म करने के आदर्श सिद्धांत नियम के क्षेत्र के अन्तर्गत आते है इन्हें भी पाँच प्रकारों में बाँटा गया है।

(1) शौच (बाह्रय एवं अभ्यन्तर)

(2) संतोष

(3) तप

(4) स्वाध्याय

(5) ईश्वरप्रणिधान

नियम विशुद्ध रूप से क्रियात्मक है। इनके द्वारा प्रमुखतः शरीर की शुद्धि एवं इन्द्रियों पर नियंत्रण किया जाता है। नियम प्रमुखतः शारीरिक अभ्यास है, और गौण रूप से मानसिक अभ्यास इनके अभ्यास से साधक का स्वयं का अधिकत्तम भला होता है। नियम साधक के कर्मो का परिष्कार कर उसके अन्तःकरण को निर्मल और निःसंग बनाता है। मन की पवित्रता से चित्त में अस्थिरता या चचंलता नहीं आने पाती चित्त की सभी बाह्रय वृत्तियाँ अभ्यन्तरमुखी होकर धीरे-धीरे शांत होने लगती है और अन्तः करण में ज्ञान का प्रकाश फैलने लगता है। इस प्रकार पाँचों नियमों का विधि पूर्वक सतत् पालन योग के लक्ष्य की ओर उन्मुख करता है। नियमों का महत्व इतना अधिक है कि अभ्यास एवं वैराग्य की प्राप्ति हेतु किये जाने वाले क्रियायोग के लिए इनके तीन अंग तप , स्वाध्याय एवं ईश्वरप्रणिधान का अभ्यास बताया गया है। नियम का क्षेत्र योग साधना का द्वितीय आधारभूत क्षेत्र है जो योग साधना के अंतिम लक्ष्य को प्राप्त करा सकता है। अतः मन वचन एवं कर्म से नियमों का पालन करना आवश्यक है।

अष्टांग योग ग्रंथ में स्वामी चरण दास ने यम एवं नियमों को विस्तार दिया है।

यम - अंहिसा , सत्य, अस्तेय, ब्रम्हचर्य, क्षमा, दया, धीरता, नम्रता, प्रमितभोजन और शुचिता।

नियम - तप , संतोष, आस्तिकता, दान, ईश्वर पूजन, सिद्धांत, श्रवण, लज्जा, बुद्धि, तप एवं होम।

वर्तमान विश्व समुदाय में दार्शनिक विचारधाराओं के बीच योग (i)ति ''जीवन जीने की कला'' के सामुदायिक स्वरूप में संपूर्ण विश्व में स्थान पा रही है। इसे आज मानव के लिए जीवन जीने की कला की संहिता **(code of art of living)** के रूप में जाना जा रहा है। योग विज्ञान के सिद्धांतों और तकनीकों को चार भागों में बाँटा गया है।

(1) शारीरिक स्तर

(2) मानसिक स्तर

(3) भावनात्मक स्तर और

(4) आत्मिक स्तर

इन स्तरों के परिष्करण और उन्नयन हेतु योग विज्ञान के सिद्धान्तों को प्रयोग में लाया जा सकता है। इन चारों स्तरों के शुद्धिकरण हेतु योग विज्ञान या योग सिद्धान्त के पृथक-पृथक विभाग किये गये है। कुछ प्रमुख विभाग निम्नलिखित तालिका (क्रमांक 01) के अनुसार है।

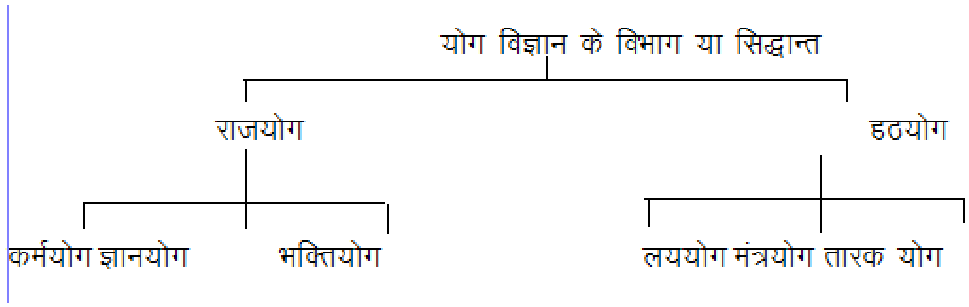

सृष्टि क्रम की संक्षिप्त व्याख्या

(1) एकादश इन्द्रियाँ:- (i) मन

(ब) ज्ञानेन्द्रियाँ:- कान , त्वचा, नेत्र, जिव्हा एवं नासिका

(स) कर्मेन्द्रिया:- वाणी , हस्त, पाद, उपस्थ, एवं गुदा

(2) पंच तन्मात्राएँ:- शब्द, स्पर्श, रुप, रस, एवं गंन्ध

(3) पंच महाभूत :- आकाश, वायु, अग्नि , जल एवं पृथ्वी

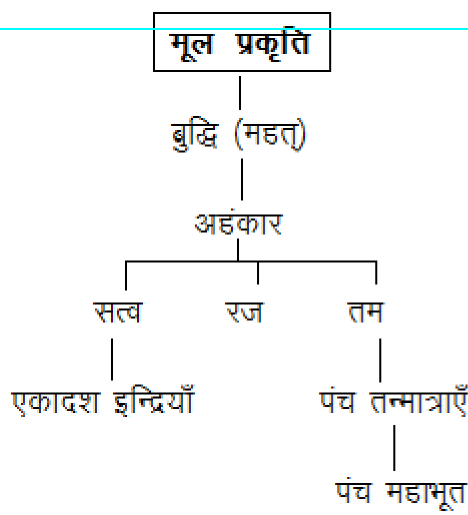

1.4 सृष्टिक्रम, पंचमहाभूत, योग का व्यावहारिक महत्व

पंच महाभूत

यह दृश्य जगत् और हमारा भौतिक शरीर इन्हीं पंच तत्वों के पंचीकरण से बना हैं हमारे शरीर को उपनिषद् पाँच कोशों में विभक्त करते है तथा स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढ़ते है।

(1) अन्नमय कोश (दृश्य भौतिक शरीर)

(2) प्राणमय कोश (श्वास प्रश्वास को स्पंदन की शक्ति सामथ्र्य)

(3) मनोमय कोश (हमारी संकल्प-विकल्प की क्षमता)

(4) विज्ञानमय कोश (हमारी बृद्धि की निर्णयात्मकता)

(5) आनंदमय कोश (पूर्ण ज्ञान की अवस्था)

पंच कोश

आनंदमय कोश में प्रवेश ही योग में प्रवेश है। योग दर्शन का प्रतिनिधि ग्रंथ पातंजल योग सूत्र बड़े वैज्ञानिक ढंग से आत्मस्थ होने के लिए चित्त वृत्तियों के निरोध को योग या कैवल्य के रुप में व्यवहारिक रुप से अष्टांगमार्ग के रुप में निरुपित करता है। अष्टांग मार्ग के आठ अंग क्रमशः यम , नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि है। यह आठ अंग मानवीय व्यवहार में मन के नियंत्रण के साधन के रुप में प्रस्तुत होते हैं इसी कारण योग विज्ञान को भारतीय मनोविज्ञान माना है।

योग विज्ञान का व्यवहारिक महत्व

यौगिक जीवन (i)ति साधु सन्तों , महात्माओं और ब्रम्हचारियों जिन्होंने ग्रहस्थ आश्रम या सांसारिक बंधनों का त्याग कर दिया है, केवल उनके अपनाने का विज्ञान नहीं हैं। बल्कि योग (i)ति को कोई भी व्यक्ति विवाहित, अविवाहित स्त्री पुरुष अपना कर योग के वैज्ञानिक सिद्धांतों द्वारा अपने जीवन को सुखमय एवं सहज बना सकता है। व्यक्ति किसी भी आयु-वर्ग , व्यवसाय, धर्म , लिंग, जाति या सम्प्रदाय का हो। यौगिक आचार-विचार से व्यक्ति के गुणों में परिवर्तन आने लगता है। प्रत्येक व्यक्ति में तीन गुण विद्यमान होते है , राजसिक, सात्विक ओर तामसिक। तमोगुण - निद्रा , तन्द्रा, मोह, भय, आलस्य, दीनता, भ्रम, आदि उत्पन्न करता है। रजोगुण - चंचलता , चिन्ता, संसार कर्मो में प्रवृत्ति आदि पैदा करता है, जिससे दुख और शोक उत्पन्न होता है। सतोगुण से क्षमा , श्रद्धा, धैर्य, उत्साह, वीर्य, दान, दया आदि पैदा होते है। जिससे सुख और आनन्द की वृद्धि होती है। योग के अभ्यास, व्यक्ति को ''तम'' और ''रज प्रधान'' अवस्था से ''सत्व प्रधान'' अवस्था की ओर ले जाते है। इसलिए सुखी एवं निरोग जीवन हेतु योगाभ्यास परम् आवश्यक एवं श्रेष्ठतम् मार्ग है।

वर्तमान जीवन (i)ति दिन प्रतिदिन दुःखी , अशान्त और नीरस बनती जा रही है। इसका मूल कारण यह हैं कि उन्नति के नाम पर हम प्रतिस्पर्धा और तनावपूर्ण जीवन जीने लगे है। व्यक्ति का जीवन असन्तुलित हो गया है क्योंकि जीवन के विभिन्न पक्षों जैसे शारीरिक स्वास्थ्य , मानसिक स्वास्थ्य , समाजिक (नैतिक) स्वास्थ्य एवं आध्यात्मिक स्वास्थ्य में सन्तुलन के कोई प्रयास ही नही किये जा रहे है। इस कारण व्यक्ति दुखित एवं निराश है। योग विज्ञान एक ऐसा विज्ञान है जो ''व्यक्ति को उसके अस्तित्व के सभी पक्षों पर प्रभाव डालते हुए सन्तुलित करता हैं'' उसे पूर्ण स्वास्थ्य, समृद्धि, सुख और शांति प्रदान करता है। एवं व्यक्तित्व के सभी पक्षों को उध्र्वमुखी कर व्यक्तित्व को आदर्श व्यक्तित्व (सहज मानव स्वभाव) के निर्माण में सहायक होता है।

1.5 योग विज्ञान की अवधारणा एवं क्षेत्र

जीवन के जो भी धर्म है , उन सबके साध्य हेतु शरीर ही एक मात्र साधन है। साधन जितना सम्यक् होगा साध्य उतना ही उन्नत (उच्च) होगा। प्राचीन काल से आज तक मनुष्य ने जो कुछ भी भौतिक प्रगति की है उन सब में इस शरीर को ही सुख प्रदान करने का उद्देश्य निहित है। भारतीय वाङ्गमय विशेषकर वेद (संहिताएँ , ब्राम्हण, आरण्यक एवं उपनिषद्) एवं परिवर्तो काल में षड्दर्शन , शरीर रूपी साधन से सत्यानुसंण्धान , तत्वानुसंधान, ब्रम्हानुसंधान, आत्मानुसंधान या स्वास्थ्यानुसंधान

रूपी साध्य को प्राप्त करने का उद्योग प्रस्तुत करते रहे हैं। भारतीय चिंतकों ने तो शरीर को सम्पूर्ण ब्रम्हाण्ड की सूक्ष्म प्रतिकृति की संज्ञा दी है। इस सच्चिदानंद (सत्यं , शिवम्, सुन्दरम्) ब्रम्ह से ही विश्व के सब प्राणियों का जन्म आनन्द में हुआ है और वह आनन्द में ही जीवन जीता है तथा आनन्द में ही उसका लय हो जाता है। ऐसा तैतरीय उपनिषद का मत है और यदि ऐसा नहीं हो रहा है तो शरीर को स्वस्थ रखने में सम्यक्ता नहीं है। और तब स्वास्थ्यानुसंधान के रूप में योगानुसंधान की आवश्यकता होगी।

वर्तमान में भी सम्यक् स्वास्थ्य को परिभाषित करते हुए ''विश्व स्वास्थ्य संगठन'' स्वास्थ्य को केवल रोग और अपंगता का अभाव भर नहीं मानता बल्कि व्यक्ति की संपूर्ण भौतिक , मानसिक एवं सामाजिक सम्पन्नता की स्थिति को स्वास्थ्य से जोड़कर देखता है। जे. एफ. विलियम स्वास्थ्य को जीवन का वह गुण मानते है जो मनुष्य को अधिकतम जीवित रहने एवं श्रेष्ठतम सेवा करने योग्य बनाता है। आयुर्वेद स्वस्थ मनुष्य हेतु एक सर्वांग परिभाषा प्रस्तुत करता है जिसके तीनों दोष (वात, पित्त, कफ) सम हों जिसकी जठराग्नि (पाचन क्रिया) सम हो, जिसकी धातुओं (रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र) की क्रिया सम अर्थात् क्षय और वृद्धि से रहित हो जिसके मलों (स्वेद , मूत्र, पुरीष) की क्रिया सम हो , जिसकी आत्मा, दशों, इन्द्रियाँ (पांच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ) और मन प्रसन्न (निर्मल अविकारी) हों वह व्यक्ति ''स्वस्थ'' कहलाता है। अर्थात् शरीर, मन, आत्मा तीनों पूर्ण रूप से विकार रहित हो तो तब उसे सम्यक् स्वास्थ्य कहा जाता है।

मनुष्य जन्म से पूर्व , जन्म की सूक्ष्मता एवं जन्म के बाद वृद्धि में जो भी कर्म करता है वह सब योग ही है। अर्थात् जड़ चेतन के बीच जो भी परिवर्तन हो रहा है। वह सब योग का ही प्रयोजन है क्रमबद्ध पर्याय है। इस क्रमबद्ध पर्याय से परे हटना सम्यक् रूप से स्वा की स्थिति से परे हटना ही अस्वास्थ्य है। स्वा में स्थित रहने का पूरा विज्ञान योग दर्शन स्पष्ट करता है। स्वा में अर्थात् समाधि में स्थित होने के लिए क्रिया योग की आवश्यकता होती है। क्रिया योग के तीन रूप है तप , स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान इन्हें स्वास्थ्य प्राप्त करने के नियमों शौच एवं संतोष के साथ रखा गया है। शरीर को सम्यक् स्वास्थ्य प्रदान करना (निरोग रखना) तप है, मन को सम्यक् स्वास्थ्य प्रदान करना (मन का निग्रह या नियंत्रण) स्वाध्याय (आत्म ज्ञान) है, तथा आत्मा को सम्यक् स्वास्थ्य प्रदान करना आत्मा को तम के आवरण से रहित करना ईश्वर प्राणिधान है। ये तीनों क्रिया योग के रूप में अभ्यास एवं वैराग्य की सिद्धि करवाते है। अभ्यास से शरीर एवं वैराग्य ही मन की शुद्धि होती है तब व्यक्ति समाधि की ओर अग्रसर होने की योग्यता अर्जित कर पाता है।

समाधि की ओर अग्रसर होने हेतु योगदर्शन वर्णित व्रतों का नियम पूर्वक (मन , वचन, कर्म) से पालन करना होता है , व्रत जो जाति , देश, काल और समय की सीमा से रहित समस्त अवस्थाओं में पालन करने योग्य है इनके पाँच प्रकार के क्षेत्र हैं , इन व्रतों को महाव्रत या यम कहा जाता है। इनके द्वारा स्वयं पर नियंत्रण किया जाता है , इनका अभ्यास मानसिक स्तर पर होता है जो शुद्ध सात्विक मनोवृत्ति निर्माण करते हैं। उनके भेद हैं अहिंसा , सत्य, अस्तेय, ब्रम्हचर्य और अपरिग्रह। इन व्रतों को नियमों से पालन करना चाहिए। नियमों के भेद है , शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्राणिधान। ये नियम विशुद्ध रूप से क्रियात्मक है इन नियमों के पालन से शरीर और इन्द्रियों को मन नियंत्रित करने की योग्यता

अर्जित कर लेता है। मन के नियंत्रण के चित्त शांत होता है। चित्त के शांत होने से वृत्तियॉं उठना बंद हो जाती है। यही योगस्य चित्त, वृत्ति, निरोधः है।

1.6 स्वास्थ्य प्रबंधन और आष्टांगिक मार्ग

सम्यक् स्वास्थ्य प्राप्त करने हेतु शारीरिक , मानसिक एवं आत्मिक शुद्धि का विधान योग दर्शन में महर्षि पंतजलि आठ सोपानों में करने का उपदेश करते हैं। ये आठ सोपान, यम-नियम, आसन-प्राणायाम, प्रत्याहार-धारणा, ध्यान एवं समाधि है। यमों एवं नियमों के पालन करने में , वितर्क, बाधा (व्यवधान) उत्पन्न करते हैं, इस हेतु उनसे बचना चाहिये। वितर्कों से बचकर यम नियमों का पालन करने पर शरीर को स्थिर एवं सुखपूर्वक स्थित रखने में संसारिक द्वन्दों के प्रभाव नहीं व्यापते। द्वन्दहीन शरीर में प्राणों का संचालन अपनी इच्छा से किया जा सकता हैं। प्राणों का संचालन तीन भेदों में क्रमशः अन्तः , बाह्य और स्तम्भ रूप से देश , काल एवं संख्या से अपने शरीरानुकूल निर्धारित करना होता है और जब प्राण अपने इच्छा से (स्वाभाविक रूप से) गति करता है तो बुद्धि स्थिर हो जाती है। स्थिर बुद्धि ही विवेक ज्ञान है। बुद्धि से स्थिर (प्रकाशित) होने पर मन को निग्रह (वश) में करने की योग्यता आ जाती है और जब मन को अपने वश में करने की क्षमता (प्रत्याहार) आ जाती है तो इन्द्रियों का वश में होना (बुद्धि का स्थिर होना) निश्चित हो जाता है। इन्द्रियों को विषयों से स्थिर बुद्धि के अनुसार संबंध रखने की योग्यता धारणा जब हो जाती है तब अहंकार समाप्त हो चित्त (मन , बुद्धि, अहंकार) शांत होने लगता है। शांत चित्त (धारणा, ध्यान, समाधि) को किसी विषय में एकाग्र किया जाना संयम कहलाता है। संयम से भूत एवं भविष्य सब दृष्ट हो जाता है तथा संयम से अनेक सिद्धियाँ (अलौकिक सामथ्र्य) प्राप्त हो जाती है। संयम से एकाग्र हुआ चित्त दृष्टा एवं दृश्य से रंगा हुआ समस्त अर्थों वाला होता है। ऐसा चित्त ही स्वरूप को प्राप्त कराता है, इस चित्त को स्थिर करने के उपाय यौगिक जीवन शैली द्वारा संभव है। यह शैली संसार में सर्वाधिक संख्या में उपस्थित मध्यम अधिकारियों के लिए एक मात्र विकल्प है। इसके अन्तर्गत श्रद्धापूर्वक, योग साधना (i)ति के सोपानों को पूर्ण करना होता है। इस हेतु मन , वचन, कर्म से यमों का नियमों के द्वारा पालन करना चाहिए। शरीर का षट्कर्मों (नेती धोती, बस्ती, कुजंर, नौली एवं त्राटक साथ ही कपालभाति, धौंकनी, बाधी और शंख प्रक्षालन) की क्रियाओं को करते हुए , शरीर के प्राकृतिक विकास हेतु योग आसनों का अभ्यास करना चाहिए। आसनों द्वारा शरीर के सम्यक् विकास में (शरीर को पूर्णतः प्राणों युक्त करने में) प्राणायाम का विधान भेद एवं अंगों सहित करने का विवरण योगदर्शन प्रस्तुत कर इसे स्थिर करने हेतु मन के निग्रह हेतु प्रत्याहार की विधि से मन को धारण करने का निर्देश करता है। मन को धारण करने के आधार के अनुसार ही आधार ध्यान में पर्णित होने लगता है और ध्यान की गहराई के अनुरूप ही सम्यक् स्वास्थ्य (समाधि) घटित हो जाता है।

योग दर्शन अधिकारी भेद से समस्त मनुष्यों को तीन प्रकारों उत्तम , मध्यम एवं निम्न (हीन) में वर्गीकृत करता है तथा उत्तम अधिकारियों को राजयोग द्वारा आत्मानुसंधान या कैवल्य प्राप्ति का निर्देश करता है। मध्यम अधिकारियों को ज्ञानयोग , भक्तियोग, कर्मयोग आदि के द्वारा मनोनिग्रह कर आत्मज्ञान की प्रेरणा देता है तथा निम्न (हीन) अधिकारियों को शरीर शुद्धि की ओर प्रवृत कर हठयोग की सहायता का विधान करता है। जड़ शरीर की सम्यक् शुद्धि होने के बाद चित्त की (मन , बुद्धि, अहंकार) पुरूष के

समान शुद्धि होने पर सम्यक् स्वास्थ्य (मोक्ष , निर्वाण, परमपद, कैवल्य मुक्ति) प्राप्त किया जा सकता है। यही योग का अनुशासन (प्रबंधन) है और यह अनुशासन ही कैवल्य की ओर प्रवृत (प्रेरित) करता है।

1.7 योग विज्ञान के विभिन्न क्षेत्र

विज्ञान की अंधाधुन्ध प्रगति और मानव व्यक्तित्व के वैश्वीकरण की स्थिति ने मानव जीवन की निजता एवं सरलता को मानव जीवन से छीन लिया है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा के बिना सहज जीवन रह ही नहीं गया है। ढ़ाई साल का बालक नर्सरी शिक्षा में 'पाँच किलो' का स्कूल बैग लिये बगैर अपना अस्तित्व ही नहीं बना सकता है। अस्सी वर्ष की वृद्ध काया बिजली और कूकिंग गैस जैसी मूलभूत चीजों की लाईन में धक्के खाये बिना अपना जीवन यापन कर ही नहीं सकता ऐसे परिवेश में शारीरिक एवं मानसिक शांति के लिए योग विज्ञान ने हर क्षेत्र में अपनी भूमिका सिद्ध कर दी है। कुछ प्रमुख क्षेत्र जहाँ योग की भूमिका स्वीकार कर ली गई है। जो निम्नलिखित है -

1. शिक्षण संस्थानों के सभी स्तरों एवं क्षेत्रों में
2. चिकित्सा विशेषकर आयुर्वेदिक एवं प्राकृतिक चिकित्सा सिद्ध एवं यूनानी चिकित्सा के क्षेत्र में
3. खेल दक्षता बढ़ाने के क्षेत्र में
4. औद्योगिक कर्मचारियों की दक्षता बढ़ाने में
5. मनोचिकित्सा के क्षेत्र में
6. शारीरिक शिक्षा के क्षेत्र में
7. राजनीतिक व्यस्तता के समायोजन में
8. अत्मानुशासन , धर्मानुशासन एवं वैशविकशांति के क्षेत्र में
9. व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास एवं स्वास्थ्य प्रबंधन में
10. शारीरिक सौन्दर्य विकास के क्षेत्र में
11. सामुदायिक स्वास्थ्य आदि क्षेत्रों में

1.8 सारांश

प्रस्तुत इकाई में अष्टांग योग के अन्तर्गत पांच यम एवं पांच नियमों का आधारभूत वर्णन करते हुए सृश्टि क्रम पंचकोष योग का व्यावहारिक महत्व एवं स्वास्थ्य प्रबंधन में आंश्टागिक मार्ग मा वर्णन करते हुए योग विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों का संक्षेप उल्लेख किया गया है।

1.9 बोधात्मक प्रश्न

1- योग विज्ञान के यम क्षेत्र का वर्णन कीजिए।
2- योग विज्ञान के नियम क्षेत्र का वर्णन कीजिए।
3- सृश्टि कर्म की संक्षिप्त व्याख्या कीजिए।
4- योग का व्यावहारिक महत्व समझाइये।

5- स्वास्थ्य प्रबंधन में आंश्टागिक मार्ग की महत्तता बताइये।

6- योग विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में उपयोगिता समझाइये।

1.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

- योग और अनुसंधान स्वामी कुवलयानन्द, कैवल्यधाम लोनावाला पूना 410403
- साधना स्वामी शिवान्द , दिव्य जीवन संघ , पत्रालय शिवानन्द नगर 249192 , जिला टिहरी गढ़वाल हिमालय (उ.प्र.)
- राजयोग स्वामी विवेकानंद, अद्धैत आश्रम, 5-देही एन्टाली रोड, कलकत्ता - 700014
- लाईट ऑनयोग महर्षि अरविंद, अरविंद आश्रम पाण्डिचेरी
- अष्टांग योग- चरणदास अनुवादक , श्री ओ. पी. तिवारी , प्रकाशक कैवल्यधाम-एस. एम. वाई. एम. समिति , कैवल्यधाम लोनावाला पूना
- योग परिचय - डॉ पीताम्बर झा , प्रका. गुप्ता प्रकाशन डी- 35 साउथ एकसटैंशन भाग I नई दिल्ली - 49
- योग का परिचयात्मक -डॉ ओमनारायण तिवारी स्वरूपप्रकाशक पं. सुन्दरलाल शर्मा (मुक्त) विश्वविद्यालय छत्तीसगढ़, बिलासपुर (छ.ग.)
- पतनजल योग दर्शन - डॉ. नित्यानन्द शर्मा

इकाई 2

राजयोग का स्वरूप

इकाई की रूपरेखा

2.1 उद्देश्य
2.3 राजयोग का स्वरूप
2.4 कर्म योग का स्वरूप
2.5 भक्ति योग का स्वरूप
2.6 ज्ञान योग का स्वरूप
2.7 सारांश
2.8 बोधात्मक प्रश्न
2.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

2.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पष्चात आप जानेगे कि -

- राजयोग का स्वरूप
- कर्म योग का स्वरूप
- भक्ति योग का स्वरूप
- ज्ञान योग का स्वरूप

2.2 प्रस्तावना

हमारे जीवन के जन्म ग्रहण से लेकर मृत्यु होने तक में किये गये समस्त व्यवहार योग है। महर्षि अरविंद भी ऐसा ही मानते है कि ‘‘सम्पूर्ण जीवन योग है’’ (Whole Life is Yoga) जीवन के कार्यकलापों में कुछ व्यवहार धनात्मक होते है कुछ ऋणात्मक लेकिन विशद् दृष्टिकोण से होते योग ही है। इन धनात्मक और ऋणात्मक व्यवहारों में धनात्मक व्यवहारों को अपनाने या ग्रहण करने का व्यवस्थित या सम्यक् ज्ञान जिस विज्ञान से होता है उसे ही हम योग विज्ञान के नाम से जानते है, इस प्रकार योग एक व्यवहारिक विज्ञान है। योग विज्ञान बहुत व्यापक विषय है यह जहाँ मोक्ष शास्त्र है वही आयुर्वेद चिकित्सा विज्ञान , मनोचिकित्सा विज्ञान, शिक्षा विज्ञान, दर्शन शास्त्र, मूल्य विज्ञान एवं प्रबंध विज्ञान का भी व्यवहारिक अंग हैं। विज्ञान की विधियों और प्रणालियों की तरह ही योगविज्ञान भी अपने आप में पूर्ण विज्ञान है तथा इसकी अपनी विधियां, प्रणालियाँ एवं तकनीके है। इस प्रकार योग (i)ति एक -

(1) वैज्ञानिक विद्या है।(2)जीवन में व्यवहार की आदर्श कला है। और (3)पृथ्वी में उत्पन्न एवं विद्यमान समस्त संस्कृतियों के श्रेष्ठतम् मूल्यों से युक्त मानवीय आचार एवं व्यवहार का लिखित संविधान है। वर्तमान गतिशील विश्व में स्वास्थ्य एवं शांति की तलाश में भटक रहे लोगों को योग विज्ञान (दर्शन) एक अंतिम सहारे के रूप में दिखाई देतायोग ''शरीर का नहीं मन के नियंत्रण द्वारा शरीर पर अधिकार करने की कला एवं मन के नियंत्रण द्वारा चित्त को शांत एवं सहज रखने का अभ्यास एवं वैराग्य युक्त व्यवहार के रूप में लिया जाता है। इसमें योग को प्राप्त करने हेतु अभ्यास एवं वैराग्य की सतत् साधना करनी पड़ता है। श्रीमद्भगवत गीता के अनुसार राजयोग, भक्तियोग, कर्मयोग, ज्ञानयोग मानव जीवन में कल्याणकारी एवं अरोग्यदायक है।

2.3 राजयोग का स्वरूप

विभिन्न प्रकृति के लोग इस जगत् में रहते है। इनके दुःख निवारण के लिए तथा मुक्ति के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये विभिन्न धर्मों ने अपने अपने मार्ग बतलाये है। इन धर्मों के बीच हिन्दू धर्म ने सभी प्रवृतियों को ध्यान में रख एक आदर्श साधना विधान के द्वारा मुक्ति का संदेश प्रस्तुत किया है जिसके निम्नलिखित चार पद है –

1. राजयोग (The path of Concentration)
2. कर्मयोग The path of Action)
3. भक्ति योग (The path of Devotion)
4. ज्ञान योग (The path of Real Knowledge)

राजयोग का स्वरुप Nature of the path of Concentration)

श्री भगवान् ने उद्धवजी को तीन योगों का उपदेश दिया था। वे हैं ज्ञानयोग , कर्मयोग और भक्तियोग। अध्यात्म मार्ग में शीघ्र अग्रसर होने की इच्छा करने वाले व्यक्ति को अपने स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण -इस देहचातुष्टय तथा मन , बुद्धि, चित्त और अहंकार इस अन्तःकरण -चातुष्टय को शुद्ध करना परमावश्यक है।

स्मृति ग्रन्थों के अनुसार सृष्टि , स्थिति और लय का कारण अन्तः करण ही है। अन्तःकरण की सहायता से जिसका साधन किया जाता है , उसको राजयोग कहते है। अन्तः करण दृश्य है और आत्मा इस दृश्य का द्रष्टा है। दृश्य से दृष्टा का सम्बन्ध होने पर सृष्टि होती है। सृष्टि की उत्पत्ति का कारण चित वृत्तियों का चाचंल्य है। इस चित्त वृत्ति चांचल्य पर नियंत्रण प्राप्त करना ही स्व-स्वरुप का ज्ञान (प्रकाश) होना है और यही योगों का अन्तिम लक्ष्य होता है जिसे राजयोग कहा गया है।

राजयोग साधना:- राजयोग साधना में विचार बुद्धि (चिन्तन और मनन)का प्राधान्य होता है। विचारशक्ति की पूर्णता द्वारा राजयोग का साधन होता है। राजयोग के ध्यान को ''ब्रह्मध्यान'' कहते है। राजयोग के द्वारा सिद्धि प्राप्त साधक को जीवनमुक्त कहते है। जैसे मंत्रयोग की साधना से महाभाव समाधि होती है, हठयोग की साधना से महाबोध समाधि प्राप्त होती है, लययोग की साधना से महालय समाधि प्राप्त होती है, उसी प्रकार राजयोग की साधना से जीवनमुक्त की समाधि को निर्विकल्प समाधि कहते है। यह निर्विकल्प समाधि ही कैवल्य की प्राप्ति है। जैसे समाज में यह श्रेष्ट्तम पद राजा का पद एक ही होता

है उसी प्रकार विभिन्न योगों के अन्तिम लक्ष्यों के बीच साधना का चरम् लक्ष्य ‘‘कैवल्य’’ का पद प्राप्त करना अन्तिम लक्ष्य है। इस कारण इसे राजयोग कहते है। राजयोग सब योग साधनों में श्रेष्ठ है और साधन की चरम सीमा है। राजयोग के साधनों को शास्त्रों में विभिन्न अंगों में विभाजित किया गया है। ये अंगों सोलह प्रकार में विभक्त है।

राजयोग के अंग:- जैसे पूर्ण चन्द्रमा की सोलह कलाएँ होती है। उसी प्रकार योग की पूर्णता हेतु निम्नांकित सोलह अंग बताये गये है।

(1) ज्ञान की सात भूमिकाएँ

(i) शुभेच्छा:- मोक्ष की इच्छा को शुभेच्छा कहते है।

(ii) सुविचारणा:- गुरु के समीप श्रवण-मनन करने की अन्तःकरण की वृत्ति सुविचारणा कहलाती है। विवेक वैराग्य से अभ्यासपूर्वक सदाचार में प्रवृत रहना।

(iii) तनुमानसा:- निदिध्यासन अर्थात ध्यान और उपासना के अभ्यास से मानसिक एकाग्रता को प्राप्त करने की योग्यता।

(iv) सत्वापत्ति:- संशय विपर्यय रहित ब्रह्म और आत्मा के तादात्मय अर्थात उपरोक्त अनुभूति की अवस्था। यह सिद्धावस्था है।

(v) असंसत्कि:- सविकल्प समाधि के अभ्यास के द्वारा मानसिक वृत्तियों के निरोध की निर्विकल्प समाधि की अवस्था।

(vi) पदार्थभावनी:- गहन (प्रगाढ़) सुषुप्ति की स्थिति। नित्य समाधि की अवस्था।

(vii) तुर्यगा:- केवल एक ही स्थिति ब्रह्मीभूत-स्थिति में ही सदा रमण करते रहने की अवस्था। उपरोक्त ज्ञान की सात भूमिकाएँ विचार प्रधान है। इनके साधन भी अनेक प्रकार के है।

(2) धारणा:- यह भी दो प्रकार की होती है।

(i) प्रकृति धारण

(ii) ब्रह्म धारणा

(3) ध्यान:- ये तीन प्रकार के होते है।

(i) विराट्ध्यान

(ii) ईशाध्यान

(iii) ब्रह्म ध्यान

(4) समाधि:- समाधि के दो प्रकार हैं।

(i) सम्प्रज्ञात या सबीज:- इसके चार भेद है- वितर्कनुगम , विचारनुगम, आनन्दनुगम और अस्मितानुगम।

(ii) असम्प्रज्ञात या र्निबीज:- इसके दो भेद है:- भवप्रत्यय , और उपायप्रत्यय।

राजयोग की प्राप्ति हेतु इन सोलह अंगों का साधन करना होता है। मन्त्रयोग , हठयोग और तारकयोग में सिद्धि या किसी एक में सिद्धि प्राप्त होने के बाद साधक राजयोग में पूर्णाधिकार प्राप्त कर लेता है।

इस प्रकार राजयोग का अर्थ है समाधि। महर्षि पतंजलि के अष्टांगयोग का लक्ष्य भी समाधि है। इस कारण अष्टांगयोग समाधि-अर्थयुक्त राजयोग कहलाता है। महर्षि पतंजलि के योग के आठ अंगों में सभी अन्य योगों का अन्र्त भाव हो जाता है।

उदाहणार्थ:-

(1) राजयोग:- अष्टांगयोग का मुख्य लक्ष्य समाधि (राजयोग) की प्राप्ति ही है।

(2) कर्मयोग:- साधना के साधक अपने अन्दर साध्य के गुणों को धारण करता ही है। अतः इससे निष्कामकर्म या अनासक्ति योग की शिक्षा स्वतः मिलती है।

(3) भक्ति योग:- भक्ति का प्रमुख अंग है श्रद्धा। अतः ''श्रद्धावीर्य स्मृति समाधि ''तथा'' ईश्वप्रणिधानाद्वा'' सूत्र भक्ति द्वारा योग प्राप्ति के निर्देशक है।

(4) ज्ञानयोग:- सम्मपूर्ण ज्ञेयतत्व का ज्ञान ही योग है। तथा योग सांख्य (ज्ञान) की अभिन्नता है अर्थात दोनों एक ही आधार भूमि में प्रतिष्ठित है। यहि राजयोग का स्वरुप है।

राजयोग साधना का साधन क्रम

मानवीय चेतना के अन्तःमुखी प्रवाह के नियंत्रण हेतु राजयोग अपने साधना क्रम में धारणा और ध्यान से प्रारंभ करता है। राजयोग की साधनभूमि प्रधानतः समाधिभूमि है ऐसा हमने ऊपर अध्ययन किया है। समाधि भूमि में पहले वितर्क रहते है और उसके बाद आगे विचार शुरु होता है। विचार की अन्तः भूमि आनन्दानुगत होती है। आनन्द ही मानवीय अस्तित्व या अस्मिता की शुद्ध अवस्था है। साधक को जब दृश्य के चार भेदों विशेष लिंग , अविशेषलिंग, लिंग, और अलिंग का ज्ञान होता है। तब वह विशेष लिंग (जड़ जगत) और अविशेषलिंग (प्रकृति) को त्यागने योग्य हो जाता है। इसके बाद लिंग मात्र मैं ब्रह्म हूँ की चेतना सविकल्पक होती है। इसे अविशेषलिंग या र्निविकल्प समाधि की स्थिति जिसे तुरीय अवस्था या भावातीत अवस्था कहते है इसका साधना क्रम शास्त्रों में वर्णित नहीं है। इस क्रम को जीवन्मुक्त गुरु या अपरोक्षनुभूति प्राप्त साधक द्वारा ही उपदेशित किया जा सकता है।

राजयोग के इस साधन क्रम का यदि मूल्यांकन या समालोचना की जाय तो यह सिद्धान्त प्राप्त होता है कि राजयोग के सोलह अंगों का क्रमशः पालन उसी प्रकार किया जाना चाहिये जैसे छत्तो पर चढ़ने हेतु एक-एक सीढ़ी पर चढ़ना होता है, और छत्ति पर पहुँचने के बाद सीढ़ी की आवश्यकता नहीं रह जाती है। साधक प्रकृति (सृष्टि) के स्वरूप को समझकर ब्रह्म , ईश या विराट्रूप में अद्वितीय बह्यसत्ता ा का साक्षात्कार (दर्शन) कर ध्यानभूमि की अनन्तम् गहराई (समाधि) में पहुँच जाता है और समाधि की दशाओं में प्रवेश करते हुये स्व-स्वरूप को प्राप्त कर जीवनमुक्त दशा रूपी समस्त योगों के ध्येय को प्राप्त कर लेता है। यही राजयोग की उपासना का अन्तिम पड़ाव है।

2.4 कर्मयोग का स्परूप (Nature of the path of Action)

साधना से साधक अपने अन्दर साध्य के गुणों को धारण करता है। ''साधना (कर्म) की प्रकृति एवं साध्य के अनुरूप प्राप्त परिणाम कर्मयोग कहलाता है।'' कर्म का अर्थ है शरीर से तथा मन से की जाने वाली क्रिया। क्रिया या कर्म के बिना किसी को भी एक क्षण के लिए भी रहना असंभव है। हम जो भी कर्म करते हैं उन सबके संस्कार मन में संचित होते जाते है। भारतीय दर्शनों की यह मान्यता है कि मन में हमेशा इस जन्म में तथा पूर्व जन्मों में किये हुए प्रत्येक कर्म के संस्कारों का एक प्रचंड समुदाय या संग्रह रहता है। इसको कर्माशय कहते हैं। प्रत्येक कर्म संस्कार का फल हमें कभी न कभी अवश्य मिलने वाला है, चाहे इसी जन्म में हो या आने वाले जन्मों में। अच्छे कर्म का अच्छा फल होगा , बुरे कर्म का फल दुःखदायक होगा। कर्मफल को 'कर्मविपाक' कहा जाता है। कर्माशय से जीव संसार में बंध जाता है। जब तक सभी कर्मो के फल भोगकर समाप्त नहीं किये जाते तब तक संसार से मुक्ति नहीं हो सकती। कर्मयोग वह युक्ति या कुशलता है जो मनुष्य को कर्मबंधन से मुक्त करा देती है। यह युक्ति है कर्मफल की इच्छा को छोड़ देना। इसलिये उसको अनासक्त योग या निष्काम कर्मयोग कहते है। इसमें लाभ , हानि, सुख, दुःख, शीत, उष्ण आदि द्वन्दों के प्रति समान दृष्टिकोण रखा जाता है। इसलिए यह समत्व बुद्धियोग भी कहलाता है। कर्मफल की इच्छा को छोड़कर कर्म करते रहना , कर्त्तजव्य को कभी नहीं छोड़ना, यह कर्मयोग का सारांश है। कर्मफल के प्रति आसक्ति को छोड़ने से कर्म के बंधनों से छुटकारा मिल सकता है। अर्थात् इच्छा और आसकित्तल का त्याग करना तथा मन को स्थिर एवं शांत करना यही कर्मयोग का स्वरूप है।

कर्मयोगी अर्जुन

कर्म का स्परूप:- इस जगत् में अपनी-अपनी प्रकृति के अनुसार आचरण करने के लिए गीता में दो प्रकार की निष्ठाएँ बतायी गयी हैं। उनमें से ज्ञानयोग ज्ञानियों के लिए तथा कर्मयोग कर्मयोगियों के लिए है। ज्ञान योग निवृत्ति मार्ग तथा कर्म योग प्रवृत्ति मार्ग है।

कर्म योग अन्य योगों की अपेक्षा अधिक ग्राह्य है इसकी ग्राह्यता के निम्नलिखित कारण है -

1. निष्काम कर्मयोग प्रवृत्ति में निवृत्ति मार्ग की ओर इंगित करता है। यह ग्रहस्थ आश्रम का विशिष्ट योग है मनुष्य ग्रहस्थ आश्रम में रहकर अपने कर्त्ततव्य कर्मों का पालन करते हुए तथा आश्रम का बिना त्याग किये हुए इस योग क माध्यम से परमतत्व की प्राप्ति में समर्थ हो सकता है। भगवान् ने गीता में सूर्य , मनु, इक्ष्वाकु तथा जनक आदि ग्रहस्थ राजर्षियों का नाम उद्धत करते हुए इंगित किय है कि कल्प के प्रारंभ में प्रवृत्ति मार्गियों ने इस विद्या को जानकर तथा इसके द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर आचरण करके सुगमतापूर्वक परमात्मतत्व की प्राप्ति की थी।
2. निष्काम कर्मयोग के आश्रय के बिना ज्ञानयोग भी सरलता से नहीं प्राप्त किया जा सकता। इसी उद्देश्य से श्रीमद्भागवत गीता 5वें अध्याय के 6वें श्लोक में निष्काम कर्मयोग के बिना ज्ञानयोग की प्राप्ति भी दुःखपूर्वक होनी बतायी गयी है।
3. कर्मयोग का आचरण अन्य योगों की अपेक्षा अत्यन्त सुगम तथा व्यावहारिक है। समस्त अवस्थाओं, जातियों, धर्मों एवं सम्प्रदायों में इस निष्काम कर्मयोग का आचरण निर्भयतापूर्वक

किया जा सकता है। निष्काम भावना से किये जाने के कारण इसमें किसी प्रत्यवाय या विपरीत दण्ड का भी भय नहीं रहता। अतः यह सब प्रकार से उपयोगी तथा सुरक्षित योग है।

4. कर्म के विषय में अर्जुन के मोहित हो जाने से ही श्रीमदभगवत्गीता का उपदेश दिये जाने की आवश्यकता हुई थी। गीता वन में चले जाने को आतुर अर्जुन को स्वधर्म में रत रहने की प्रेरणा देकर कर्म की ओर ही प्रेरित करती है। यह संसार भी एक युद्ध है , जिसमें निष्काम कर्मयोग के माध्यम से कर्म करते हुए परम पद की प्राप्ति कराना ही गीता का मुख्य उद्देश्य है।
5. तत्वज्ञान की प्राप्ति के बाद उद्यपि ज्ञानयोगी को कर्म करना आवश्यक नहीं है फिर भी लोक संग्रह एवं लोकशिक्षा के लिए आदर्श स्थापन के लिए वह कर्मों में प्रवृत रहता है। इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए गीता में स्वयं ब्रह्मा तथा भगवान के द्वारा कर्मों में प्रवृत रहने की वरीयता दी गई है।

मानासिक भावना ही क्रियाओं के कर्म , अकर्म तथा विकर्म बनाने में मूल हेतु है। कर्म का स्परूप एक दीखने पर भी मानसिक भावना में अन्तर होने के कारण उनके स्वरूप तथा परिणामों में भी अन्तर आ जाता है। कोई भी क्रिया साधारण कामना रहने से कर्म , किसी को अनिष्ट पहुँचाने की भावना होने से विकर्म तथा कामनारहित होने से अकर्म या निष्कामकर्म बन जाता है।

कर्मयोग की परिभाषायें:-

1. मैत्रायष्युपनिषद (4/11) के अनुसार

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः ।
बन्धाय विषयासत्कं मुक्त्यै निर्विषयं स्मृतम्।।

अर्थात् मनुष्य का मन ही बंधन का एवं मोक्ष दोनों का ही कारण है। विषयों में आसक्त होने से बंधन हो जाता है तथा विषयों में आसकत्तो न होने पर मोक्ष हो जाता है ऐसा स्मृति कहतीं है।

2. श्रीमद्भगवद्गीता (5/11 एवं 18/15) के अनुसार

कायेन मनसा बुद्धया केवलैरिन्द्रियैरपि।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति सगं त्यकत्तारत्मशुद्धये।।
शरीरवाड.मनोभिर्यत्कर्म प्रारभते नरः।
न्याय्यं वा विपरीतं वा पच्चैते तस्य हेतवः।।

अर्थात शरीर , मन और इन्द्रियों द्वारा की जाने वाली प्रत्येक चेष्टा या व्यापार या हलचल का नाम कर्म है। इस परिभाषा में कर्म की परिधि इतनी अधिक व्यापक है कि देहधारियों के द्वारा किसी काल में संपूर्ण कर्मों का त्याग किया जाना संभव ही नहीं है।

3. निष्काम कर्मयोग के संदर्भ में गीता (2/50) के अनुसार

बुद्धियुत्को जहातीह उभे सुकृत दुष्कृते।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्।।

जब देहधारी बिना कर्मों के रह ही नहीं सकता तब कर्म योग हेतु निष्काम कर्म की गीता में उपरोक्त परिभाषाओं द्वारा कर्मयोग को स्पष्ट किया गया है कि समबुद्धि युक्त पुरूष पुण्य और पाप दोनों

को इसी लोक में त्याग देता है अर्थात् उनसे मुक्त हो जाता है अतः मनुष्य को समत्वरूप योग में लग जाना चहिये यह समत्वरूप योग ही कर्मों में कुशलता है अर्थात् कर्मबंधन से छूटने का उपाय है।

कर्मयोग की विशेषताएँ

कर्मों को करने में वह कौशल या युक्ति क्या होनी चाहिये , जिससे प्रवृत्तिमार्ग में रहते हुए निवृत्तिमार्ग का फल या परमतत्व की प्राप्ति हो जाय। अर्थात् कर्मों को भुने चने के समान अंकुरणरहित या बंधनमुक्त कैसे बनाया जाय ? इस हेतु कर्मयोग अपनी (i)ति से निम्नलिखित विशेषताओं को प्रस्तुत करता है -

1. केवल नियत कर्म का सिद्धांत

मीमांसा दर्शन में कर्म को दो प्रकारों में बाँटा गया है।

1. विहित कर्म और
2. निषिद्ध कर्म

वेदों एवं परिवर्तित शास्त्रों में विहित कर्म की निम्नलिखित चार प्रक्रियायें बतलाई गई है -

1. नित्य कर्म
2. नैमित्तिक कर्म
3. काम्य कर्म और
4. प्रायश्चित कर्म

निष्काम कर्मयोग में निषिद्धकर्म (चोरी , व्यभिचार, असत्य, कपट, हिंसा आदि) तथा काम्यकर्म (स्त्री, पुत्र, धन, यश आदि की प्राप्ति हेतु कर्म) सर्वथा त्याज्य है।

नित्य , नैमित्तिक एवं प्रायश्चित संबंधी समस्त विहित कर्मों को एक व्यक्ति द्वारा किया जाना संभव नहीं है। अपने वर्णाश्रम धर्म के अनुसार निर्धारित कर्म तथा यज्ञ, दान और तप को नियत कर्म, सहज कर्म या स्वाभाविक कर्म कहा गया है। इहलोक तथा परलोक के संपूर्ण भोगों की कामना का सर्वथा त्याग करते हुए श्रद्धा एवं उत्साहपूर्वक इन्हीं नियत कर्मों का किया जाना इस योग में आपेक्षित है।

2. फल की इच्छा का अभाव

इस योग में कर्त्तछव्य कर्मों का किया जाना मानव का स्वाभाविक धर्म हैं , किन्तु उनमें फल-प्राप्ति की कामना कदापि नहीं होनी चाहिये। परिश्रम, श्रद्धा एवं निष्ठापूर्वक किये गये कर्म का फल तो अच्छा ही होगा। इसी भावना को दृष्टिगत रखते हुए निष्काम कर्मयोग के निम्नलिखित उपदेश गीता में किये गये है -

(i) कि तेरा कर्म करने में ही अधिकार है , उसके फलों में कभी नहीं इसलिए तू कर्मों के फल का हेतु कम हो तथा तेरी कर्म न करने में भी आसकित्तो न हो।

(ii) जो व्यक्ति कर्मों में और उनके फल में आसत्कि का सर्वथा त्याग करके संसार के आश्रय से रहित हो गया है और परमात्मा में नित्य तृप्त है वह कर्मों में भली भाँति बरतता हुआ भी वास्तव में कुछ भी नहीं करता।

(iii) कर्मयोगी कर्मों के फल का त्याग करके भगवत्प्राप्ति रूप शांति को प्राप्त होता है और सकाम पुरूष कामना की प्रेरणा से फल में आसत्क होकर बँधता है।

(iv) और जो पुरूष कर्मफल का आश्रय न लेकर करने योग्य कर्म करता है , वह सन्यासी तथा योगी है, और केवल अग्नि का त्याग करने वाला सन्यासी नहीं है तथा केवल क्रियाओंका त्याग करने वाला योगी नहीं है।

3. आसक्ति का अभाव:-

विषयों का ध्यान करते हुए पुरूष के लिए आसक्ति ही वह प्रथम सीढ़ी है , जिस पर आरूढ़ होकर मानव पतनोन्मुख होकर नष्ट हो जाता है। श्रीमद्भगवतगीतामें उसके पतन का क्रम यह है कि प्रायः सामान्य व्यक्ति को विषयों का चिन्तन करते-करते उन विषयों में आसक्ति हो जाती हैं , जिससे उनकी कामना उत्पन्न होती है। कामना में विध्न पड़ने से क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोध से अविवेक या मूढ़भाव उत्पन्न होता है, जिससे स्मरण शक्ति भ्रमित हो जाती है। स्मृति के भ्रमित होने से बुद्धि का नाश होता है तथा अन्ततः वह पुरूष अपने साधन से पतित होकर नष्ट हो जाता है।

4. समत्व बुद्धि

जिस प्रकार समुद्र में विभिन्न नदियों के जल प्रवेश करते हैं , लेकिन उसमें कोई विशेष हलचल उपस्थित नहीं होती, उसी प्रकार इस जगत् में रहते हुए निष्काम कर्मयोगी के मन में सिद्धि-असिद्धि , जय-पराजय, सुख-दुःख तथा लाभ-हानि आदि द्वन्दों में भी कोई विकार उत्पन्न नहीं होता। यही समत्व निष्काम कर्मयोग या समत्व नामक बुद्धियोग कहलाता है।

5. सर्वत्र समान व्यवहार

जिस प्रकार मनुष्य अपने शरीर के समस्त अंगों सिर , मुँह, मस्तिष्क, गुदा तथा उपस्थ के विभिन्न कर्मों को जानते हुए भी उनके सुख-दुःख में समान व्यवहार करता है , उसी प्रकार निष्काम कर्मयोगी भी समस्त प्राणियों में ब्रह्य-सत्ता का दर्शन करता हुआ उनसे यथोचित व्यवहार करता है तथा किसी से द्वेष नहीं करता।

6. काम्य संकल्पों का भी त्याग

कर्मयोग के साधक के लिए केवल काम्य कर्मों का ही नहीं , अपितु समस्त काम्य संकल्पों का भी परित्याग कल्याणकारी है, क्योंकि जब बीजरूप संकल्प ही नहीं होगा तो काम्य कर्मरूप वृक्ष की भी उत्पत्ति नहीं होगी तथा परमतत्व की प्राप्ति में प्रारंभ से ही कोई व्यवधान भी नहीं होगा।

7. कर्मों का ईश्वरार्पण तथा शरणागति भाव

कर्मयोग की साधना में कर्मों को भगवान को ही अर्पण किया जाना अपेक्षित है। समस्त कर्म पूर्ण शरणागति तथा समर्पण भाव से करना चाहिये ताकि उन कर्मों को करने से किसी प्रकार का बंधन न हो।

साराशंतः कर्मयोग मानव की शारीरिक , मानसिक तथ आध्यात्मिक प्रकृति के सर्वथा अनुकूल है। इससे स्वार्थ तथा परमार्थ, व्यक्ति तथा समाज, इहलोक एवं परलोक सभी का कल्याण साधन होता है। वैयक्तिक कामना से रहित होकर विश्वात्मा की कामना से कर्म करना ही ईश्वर से तादात्म्य स्थापित करता है। कर्म योग के सभी प्रकारों को समझाने के बाद अन्त में भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन को उपदेश दिया कि वह सभी धर्मों को छोड़कर केवल उनकी शरण में आ जावें। वे स्वयं उसे समस्त पापों से मुक्त कर देगें।

अतः निष्काम कर्मयोग का भी प्रयोजन मानव का दैवी रूपान्तर करके ईश्वर के कार्य का साधन बनाते हुए समग्र विश्व के वास्तविक कल्याण का मार्ग प्रशस्त करना है।

2.5 **भक्ति योग का स्वरूप** (Nature of the path of Devotion)

निष्काम कर्मयोग के विषय में जो इसके पूर्व में आपने अध्ययन किया है , उसी के अन्तर्गत ही भक्तियोग भी है। नामस्मरण, चिन्तन, धारणा, ध्यानरूप जो भक्ति है, वह भी एक मानसिक कर्म ही है। इस कारण भक्ति निष्काम कर्मयोग के अर्न्तपरभूत है। जिस प्रकार निष्काम कर्म अन्तःकरण की स्थिरता का हेतु है। जब बाह्य करण शुद्ध एवं अन्तःकरण स्थिर हो जाता है। तब ब्रह्मात्मैक्य ज्ञान प्राप्त होता है। अतः साधक को कर्मयोग

एवं भक्ति योग दोनों की साधना करनी चाहिये तब जाकर ज्ञान योग हो पाता है। भक्ति योग को अनन्य योग भी कहा जाता है।

गुरू द्वारा प्रस्तुत ''तत्वमसि'' महावाक्य का बिना कर्मयोग एवं भक्ति योग के साधन के ज्ञान युक्त (ज्ञान योग) नहीं किया जा सकता है। इस महावाक्य में 'तत्' पद का अर्थ है ईश्वर और 'त्वं' पद का अर्थ है जीव इन दोनों अर्थ के साथ 'असि' पद से ईश्वर और जीव का जो एक्य ज्ञान है। वह ज्ञान व्यवहारिक हो जावें तो ज्ञानयोग हो जाता है।

अनुग्रह , प्रेम, भक्ति ये तीनों एक ही स्नेह के पर्याय है। वयोमान, गुण, योग्यतादि से किंचित न्यून रहने वाले सेवक, शिष्य, पुत्रादि पर जब इस स्नेह का भाव पहुँचता है तब उसे अनुग्रह के रूप में हम जानते है। यदि अपने समकक्ष , मित्रगणों, भार्यादि से स्नेहमय वार्तालाप अथवा पत्रव्यवहारादि किया जाता है तो यही स्नेह प्रेमस्परूप में प्रकट होता है और वह हम अपने से श्रेष्ठ माता, पिता, गुरू और देवादि के पास विनय, श्रद्धा, सदाचारादि अलंकारों से युक्त होकर जाते है तो यह स्नेह राजर्षि प्रसाद , अम्बरीष या देवर्षि नारदादि के समान हो जाता है। केवल इसी स्नेह के ऊपर समस्त विश्व का उदय और आनन्द निर्भर है। यदि यह स्नेह समस्त भूमण्डल में फैल जाये तो यही भूलोक स्वर्गलोक बन जायें। यही भक्ति योग का संकल्प है।

भक्ति योग का अर्थ

भक्ति (प्रेम) योगिनी मीरा

''भक्ति'' शब्द 'भज' धातु से बना है, जिसका अर्थ होता है भजन करना या सेवा करना। इस प्रकार भक्ति या सेवा के द्वारा भगवान से संबंध स्थापित करने का नाम भक्ति योग है। महर्षि नारद के अनुसार 'भग वान' के प्रति उत्कृष्ट प्रेम ही भक्ति है। महर्षि शाण्डिल्य के अनुसार ''यह परमात्मा के प्रति सर्वोच्च अभिलाषा है।'' ईश्वर के प्रति तीव्र प्रेम होने पर भक्त भगवान के रंग में रंग जाता है। यह बात भगवान कृष्ण गीता में कहते है:-

नाहं व सामि बैकुण्ठे योगिनां हद्रये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्णामि नारद।।

अर्थात् मैं योगियों के हद्रय में नहीं रहता , न तो स्वर्ग में रहता हूँ। बल्कि मैं वहां निवास करता हूँ जहां मेरे भक्त मेरा गुणगान करते हैं।

ईश्वर और भक्त जीव के मिलन (योग) के लिए उपाय स्वरूप गीता में भक्तियोग बतलाया गया है। भक्त द्वारा किया गया प्रत्येक कर्म ईश्वर के प्रति स्नेह या प्रेम के कारण किया जाता है इसी कारण भक्ति योग को प्रेमयोग भी कहा जाता है। भगवान श्री कृष्ण ने गीता में अर्जुन को शरणागति (भक्तियोग) का ज्ञान दिया है। श्री रामानुजाचार्य ने भक्ति योग की श्रेष्ठता स्थापित करते हुये बतलाया है कि गीता का उपक्रम (प्रारंभ) और उपसंहार (समापन) दोनों शरणागति (भक्तियोग) से है। भक्ति योग ज्ञान और कर्म से अनुप्राणित है। परम भक्त के लिए ज्ञान और निष्काम कर्म वस्तुतः एक ही है। क्योंकि तीनों का अर्थ है - निर्विकल्प, अपरोक्ष (अप्रत्यक्ष) अनुभूति भक्ति, ज्ञान और कर्म में अन्तर केवल लौकिक व्यवहार जगत् में ही है। क्योंकि अपनी परम अवस्था में वे सभी प्रत्यक्ष अनुभूति में परिणित हो जाते है। लौकिक ज्ञान बुद्धि विकल्प जन्य (त्रिगुणात्मक) है , और ज्ञाता इसके श्रेय के संबंध पर टिका हुआ है पर ज्ञान अद्वैत , निर्विकल्प अनुभूति है। भक्ति का अर्थ केवल भजन करना नहीं है अपितु अखण्ड ज्ञानानंद रूप भगवद् स्वरूप में भक्त और भगवान एकाकार हो जाते है। लौकिक कर्म में कामना बनी रहती है, जबकि निष्काम कर्म कामना रहित और कर्त्ताकपन के अभिमान से रहित होने के कारण जीवन मुक्ति की अद्वैत स्थिति का सूचक है।

भक्तियोग के साधनः- श्रीमद्भगवद्गीता में भक्ति योग के निम्नलिखित साधन बताये गये हैं -

1. भगवान की प्राप्ति हेतु निरन्तर प्रयत्नशील रहना।
2. भगवान की अनन्य शरण में जाना।
3. भगवान का निरन्तर जप करना।

भक्तों के प्रकारः- भक्ति योग के संबंध में भक्तों के चार प्रकार निम्नानुसार बतलाये गये हैं -

1. अर्थार्थोः- जो भक्त धन की कामना से भक्ति करता है , उसे अर्थार्थों भक्त कहा जाता है।
2. आर्त्त्ः- जो भक्त सांसारिक दुःखों से मुक्ति के लिए भगवान का भजन करता है , उसे आर्त्तअ भक्त कहा जाता है।
3. जिज्ञासुः- जो भक्त भक्ति के स्परूप को ही समझने के लिए भक्ति करता है , उसे जिज्ञासु भक्त कहा जाता है।
4. ज्ञानीभक्तः- जो भक्त अनन्य भाव से भगवान की प्राप्ति हेतु भक्ति करता है , उसे ज्ञानी कहा जाता है। भगवान कृष्ण ने ज्ञानी भक्त को ही सर्वोत्त्म भक्त बताया है। भगवान श्री कृष्ण कहते है कि ज्ञानी मुझे अत्यन्त प्रिय है, ज्ञानी तो साक्षात् मेरा स्वरूप है।

भक्ति के प्रकारः- भक्त प्रहलाद ने भक्ति के नौ प्रकार बतलाये है। विधि से साधन होने वाली भक्ति को ''वैधी'' भक्ति कहते है यह नौ प्रकार की है अतः इसे नवधा भक्ति भी कहते है। नवधा भक्ति को निम्नलिखित तालिका (क्रमांक 02) में स्पष्ट किया गया है।

क्र.	भक्ति का प्रकार	भक्तों के उदाहरण
1.	श्रवणम्	परीक्षित, गार्गि जनमेजय इत्यादि
2.	कीर्तनम	सनत्कुमार, नारद, शुक्राचार्य इत्यादि
3.	स्मरणम्	गजेन्द्र, अजामिल, गोपिका (काम), कंस (भय), शिशुपाल (द्वेष)

4. पादसेवनम हनुमानजी , बलि, विभीषण इत्यादि

5. अर्चनम् रूक्मणी (पत्रम्) , द्रौपदी (पत्रम्), गजेन्द्र (पुष्पम्), शबरी (फलम्), बलि (तोयम्) , इत्यादि

6. वन्दनम् राहूगण , नलकूबर, मणिग्रीव इत्यादि

7. दास्यम् लक्ष्मण , हनुमानजी, सात्यकि इत्यादि

8. सख्यम् अर्जुन , सुग्रीव इत्यादि

9. आत्मनिवेदनम् द्रौपदी , कुन्ती, उद्धव इत्यादि

2.6 **ज्ञानयोग का स्परूप** (Nature of the path of Real Knowledge)

भौतिक पदार्थों एवं उनके कार्य व्यापारों को जान लेना अर्थात् सांसारिक ज्ञान और विज्ञान ज्ञानयोग नहीं है। बल्कि तीनों गुणों (मूल प्रकृति) और उनसे उत्पन्न हुए सारे पदार्थों से परे अर्थात् स्थूल-सूक्ष्म और कारण-शरीर तथा स्थूल , सूक्ष्म और कारण जगत् अथवा अन्नमय , प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय कोष अथवा शरीर , इन्द्रियों, मन अहंकार और चित्तु से परे गुणातीत शुद्ध परमात्मतत्व को जिसके द्वारा इन सब में ज्ञान , नियम और व्यवस्थापूर्वक क्रिया हो रही है , संशय, विपर्ययरहित पूर्णरूप से जान लेना ज्ञानयोग

इस विश्व में अविष्कृत तथा अन्वेषित समस्त विद्याओं में केवल ब्रह्मविद्या (ज्ञानयोग) ही सर्वोपरि है और उसी की सहायता से मनुष्य मनुष्यत्व से देवत्व और देवत्व से ईशत्व में प्रवेश कर सकता है।

ज्ञान योग ईश्वर से संबंध स्थापित करने का आध्यत्मिक मार्ग है। ज्ञानमार्ग के द्वारा भी जीव और शिव का, आत्मा और परमात्मा का संबंध हो सकता है। यह संबंध परमात्मा से तादात्म्य या एकीकरण है। ज्ञान योगी आत्म रूप को परमात्मा का स्परूप समझता है, वह परमात्मा से अभिन्न है। ज्ञानयोगी के लिए जगत् ईश्वरमय है, ईश्वर ही है, सृष्टि और सृष्टा में कोई भेद नहीं। जगत् परमात्मा का ही स्वरूप है। परमात्मा से भिन्न किसी भी वस्तु की सत्ताव नहीं। भेद मिथ्यादृष्टि है, अभेद यथार्थदृष्टि है। भेद देखने वाला अज्ञानी और अभेद देखने वाला ज्ञानी है। गीता को अनेक विद्वान ज्ञानयोग का मुख्य ग्रंथ मानते है।

आदिशंकराचार्य ने गीता को ज्ञानयोग का ग्रंथ माना है तथा गीता की निवृति मूलक व्याख्या की है। उनके अनुसार निवृतिमार्ग ही यथार्थ मार्ग है। निवृति मार्ग का दूसरा नाम ‘‘कर्मसन्यास’’ है। तात्पर्य यह है कि निवृत्तिमूलक ज्ञानमार्ग के द्वारा कर्म का त्याग ही आदर्श माना गया है। अपने सभी कार्यो , इच्छाओं और अपने आपको परमात्मा में मिला देना ही ज्ञानयोग है।

ज्ञानयोग की विशेषताएँ - ज्ञानयोग की निम्नांकित विशेषताएँ है

1. यह संपूर्ण दृश्यमान जगत् परमात्मा का स्परूप है , परमात्मा से भिन्न कुछ भी नहीं है।
2. दृश्यमान जगत् मिथ्या है। यह कार्य है-विकार है। इस कारण ब्रम्ह ही सत् है।
3. इस मिथ्या जगत् में ज्ञानी के लिए कोई भी कार्य नहीं। ब्रम्ह ज्ञान में सभी कार्यों का पर्यवसान है। ब्रह्मज्ञानी को कुछ पाना नहीं रहता। अतः वह कोई कार्य नहीं करता है।

4. ज्ञानी की दृष्टि में ''समता'' होती है वह सबको ब्रह्मरूप या एकरूप समझता है। प्राणिमात्र में वह अभेददर्शन करता हैं।

श्री शकुदेवमुनि जी द्वारा ज्ञान योग की शिक्षा

ज्ञान योग में समत्व का स्परूप:- ज्ञानयोग की सबसे बड़ी विशेषता समत्वयोग है। श्री कृष्ण ने इस समत्व को अनेक स्थान पर उपदेशित किया है। समत्व योग के तीन स्वरूप निम्नांकित है

1. आत्मगत समत्व:- आत्मगत समत्व का गीता में स्वरूप ''स्थित प्रज्ञ'' के रूप में है। स्थित प्रज्ञ गीता का अपना पारिभाषिक शब्द है। यह वेदों उपनिषदों में प्रयुक्त नहीं हुआ है। स्थितप्रक्ष का अर्थ है जिसकी बुद्धि स्थिर हो गयी है। स्थितप्रज्ञ के तीन लक्षण गीता में बतलाये गये हैं।

   (i) वह मन की सभी कामनाओं और वासनाओं को सब प्रकार से छोड़ देता है।

   (ii) वह सदैव परमात्म चिंतन में ही डूबा रहता है।

   (iii) वह न तो दुःखों से उद्विग्न होता और न ही सुख की लालसा करता है। ऐसा समत्व बुद्धि सम्पन्न ही कर सकने में सक्षम है सामान्य व्यक्ति नहीं।

2. वस्तुगत समत्व:- वस्तुगत समत्व से आशय अच्छे-बुरे , मित्र-शत्रु में समभाव रखना ही वस्तुगत समत्व है जिसकी दृष्टि में समता है, उसका कोई शत्रु नहीं है। सम्पूर्ण पृथ्वी उसका परिवार है। वह तृष्णा क्रोधादि से मुक्त होता है।

3. गुणातीत समत्व:- यह सुख-दुःख के परे की अवस्था है। भगवान ने स्वयं कहा है जो सुख-दुःख में एक सा रहता है वही धीर है। शीत और उष्ण जिसे विचलित नहीं करते , वही अमरत्व का अधिकारी है।

इसी आशय से अर्जुन को सुख-दुःख , लाभ-हानि, जय-पराजय, को समान समझकर युद्ध करने हेतु पे्ररित करते है। सच्चा ज्ञान योगी उपलब्धि और अनुपलब्धि में समभाव रहता है। उसके लिए मृत्तिका और सोना, अनुकूल और प्रतिकूल, निन्दा और स्तुति, मान और अपमान सब समान होते है यही ''गुणातीत समत्व'' है।

ज्ञानयोग का उपदेश:-

1. संसार को असार तथा आत्मा को परमात्मा का अंश समझना ज्ञानयोग है।

2. यह दृश्य जगत् माया है , मृगतृष्णा है, स्वप्न की सृष्टि है। यथार्थ में सच्चिदानन्द ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है , जो कुछ है वह ब्रह्म ही है।

3. ब्रह्म एक ही है , शुद्ध ज्ञान स्वरूप है, संसार का नानात्व मिथ्या है। एक तत्व ही सत् है। ब्रह्म ही आत्मा है या आत्मा ही ब्रह्म है (तत्वमसि)।

4. संसार में सब कुछ आत्म रूप है , ब्रह्मस्वरूप है। यह एकतत्व दर्शन ही ज्ञानयोग का स्वरूप है। जो योगी यह ज्ञान प्राप्त कर लेता है उसे योग युक्तत्मा या ब्रह्मयोग युक्तात्मा कहते है।

5. ज्ञान योगी ''समदर्शो'' होता है। ज्ञान योगी का विषय भाव नष्ट हो जाता है तथा वह भूतों को परमात्मा में तथा परमात्मा का भूतों में विस्तार देखता है।

गुरू द्वारा परम ज्ञान तत्वमसि की शिक्षा

ज्ञानयोग के भेद - गीता के अनुसार ज्ञान योग के तीन प्रमुख स्वरूप है -

1. ब्रह्ममयी दृष्टि:- सारी सृष्टि ब्रह्ममय है , चराचर जगत का प्रत्येक पदार्थ परमात्मा स्वरूप है। समस्त चराचर भूतों के बाहर भीतर एकमात्र परमात्मा ही है। ऐसा ज्ञान होना ज्ञानयोग है।
2. मायात्मक जगत:- जो कुछ दृश्यमान है वह माया है , क्षणिक है, विनाशी है। यर्थाथ में केवल एकमात्र ब्रह्म की ही सत्ता है। इस प्रकार के भाव से परमात्मा में तद्रूप हो जाना ही एकीभाव की स्थिति है तथा यही ज्ञानयोग है।
3. प्रतीयमान विश्व ब्रह्म:- प्रतीयमान विश्व ब्रह्म है। ब्रह्म ही आत्मा है। अतः संपूर्ण विश्व आत्मरूप है। चराचर सब ब्रह्म है और वह ब्रह्म मैं हूँ इसलिए सब मेरा ही स्वरूप है। इस भाव के उदय होने से मनुष्य आत्मद्रष्टा हो जाता है। वह आत्मा में ही ब्रह्म के प्रकाश पुन्ज का अनुभव करता है। ऐसा योगी ज्ञानयोगी होता है।

सारांश रूप में राजयोग कर्मयोग , भक्तियोग एवं ज्ञानयोग के संदर्भ में प्रमुख प्रयोजन अन्तिमलक्ष्य को लेकर है। राजयोग का जहाँ अन्तिम लक्ष्य समाधि अर्थात स्वरूप स्थिति में प्रतिष्ठा है तो वही कर्मयोग की साधना के द्वारा साध्य के सायुज्य हो जाता है। वह भक्ति योग में भक्त का लक्ष्य अन्तिम तत्व में अपना समर्पण करना है तो ज्ञान योग का लक्ष्य समस्त दृश्य जगत् का तात्विक अध्ययन कर गुणों से परे र्निविकार गुणातीत तत्व का ज्ञान प्राप्त करना है। इस प्रकार राजयोग जिसे अष्टांग योग के साधनों द्वारा प्राप्त किया जा सकता है अन्य तीनों योग कर्म, भक्ति और ज्ञान भी अन्र्तभूत ही है। महर्षि पंतजलि ने इन तीनों योगों को व्यवहारिक दार्शनिक पृष्ठभूमि देकर एक व्यवस्थित क्रम में साधना की प्रक्रिया वर्तमान युग के अनुरूप प्रस्तुत कर दी थी। इस प्रकार राजयोग में कर्म भक्ति एवं ज्ञान तीनों का सम्यक् समन्वयन परिलक्षित होता है।

2.7 सारांश

इस इकाई में राजयोग, कर्मयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग असाक्ति का अभाव, फल की इच्छा का अभाव, समत्व बुद्धि भक्ति योग के साधन, भक्तों के प्रकार, भक्ति का प्रकार का वर्णन किया गया है।

2.8 बोधात्मक प्रश्न

1. राजयोग का स्वरूप का वर्णन कीजिए।
2. कर्म योग का स्वरूप को समझाइये।
3. भक्ति योग का स्वरूप का वर्णन कीजिए।
4. ज्ञान योग का स्वरूप को समझाइये।
5. भक्त के प्रकार लिखिये।
6. ज्ञान योग की विषेशताओं का वर्णन कीजिए।

2.9 **संदर्भ ग्रंथ सूची**

- योग का परिचयात्मक - डॉ ओमनारायण तिवारी स्वरूपप्रकाशक पं. सुन्दरलाल शर्मा (मुक्त) विश्वविद्यालय छत्तीसगढ़, बिलासपुर (छ.ग.)
- Secrets of Hatha Vidya - Dr. Vijayendra pratap SKY FoundationPhiladelphia Pennsylvania U.S.A.
- योगासन एवं हठयोग विज्ञान - डॉ. ओम नारायण तिवारी, विलासपुर (छत्तीसगढ़)
- पतनजल योग दर्शन - डॉ. नित्यानन्द शर्मा, कोटा (राजस्थान - 324005)
- योग और अनुसंधान स्वामी कुवलयानन्द, कैवल्यधाम लोनावाला पूना 410403
- साधना स्वामी शिवान्द , दिव्य जीवन संघ , पत्रालय शिवानन्द नगर 249192 , जिला टिहरी गढ़वाल हिमालय (उ.प्र.)
- राजयोग स्वामी विवेकानंद, अद्धैत आश्रम, 5-देही एन्टाली रोड, कलकत्ता - 700014
- लाईट ऑनयोग महर्षि अरविंद, अरविंद आश्रम पाण्डिचेरी
- अष्टांग योग -चरणदास अनुवादक , श्री ओ. पी. तिवारी , प्रकाशक कैवल्यधाम-एस. एम. वाई. एम. समिति , कैवल्यधाम लोनावाला पूना
- योग परिचय - डॉ पीताम्बर झा , प्रका. गुप्ता प्रकाशन डी- 35 साउथ एकसटैंशन भाग I नई दिल्ली - 49

इकाई -3

हठ योग का वैज्ञानिक स्वरूप

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य
3.2 प्रस्तावना
3.3 हठयोग का ऐतिहासिक स्वरूप
3.4 हठयोग का सिद्धान्त
3.5 हठयोग की अवधारणा
3.6 हठयोग साधना के अंग
3.7 सारांश
3.8 बोधात्मक प्रश्न
3.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

3.0 **उद्देश्य**

इस इकाई के अध्ययन के पष्चात आप जानेगे कि -

- हठयोग का ऐतिहासिक स्वरूप
- हठयोग का सिद्धान्त
- हठयोग की अवधारणा
- हठयोग साधना के अंग

3.2 **प्रस्तावना**

हठयोग के आदि उपदेश का योगेश्वर भगवान शिव से प्रारंभ हुई है। हठयोग के बिना राजयोग राजयोग के बिना हठ योग सिद्ध नहीं होता है। हठयोग की वैदिक परम्परा एवं तांत्रिक परम्परा के अंतर्गत शारीरिक स्वास्थ्य लाभ की दष्टि से साधना के विभिन्न अंगों का वर्णन किया गया है। शिव संहिता हठ प्रदीप्तिका, घेरण्ड संहिता एवं अष्टांग योग में हठयोग तथा राजयोग समाधि का वर्णन किया गया है।

3.3 **हठयोग साधना की परम्परा और ऐतिहासिक विकास**

हठयोग साधना की परम्परा

हठयोग साधना का अन्तिम लक्ष्य महाबोध समाधि है। हठयोग साधना की परम्परा में हठयोग के आदि उपदेष्टा योगीश्वर भगवान शिव से प्रारम्भ होती है। अन्य योगों की परम्परा की तरह ही योग विज्ञान

का ऐतिहासिक विकास तभी से शुरू हो जाता है जब से मनुष्य का अस्तित्व शुरू होता हैं। भारतीय संस्कृति में ज्ञान के सभी स्त्रोतों का उदगम् ईश्वर से शुरू होता है। जिस प्रकार ईश्वर अनादि और अजन्मा है, उसी प्रकार हठयोग विज्ञान भी सृष्टि के आरम्भ काल से प्रवाहमान है। आदिनाथ भगवान शिव का कथन शिवसंहिता में प्राप्त होता है कि-

शिवविधा महाविद्या गुप्ता गुप्ता चाग्रे महेश्वरी।
मदभाषितमिदं शास्त्रं गोवनीय मतो बुधौः।
हठविधा परं गोप्या योगिना सिद्धिमिच्छता।।

(शिवसंहिता 5/249)

अर्थात् यह हमारी कही हुई महाविधा को ही शिव विद्या कहते है यह विद्या सभी प्रकार से गोपनीय है। यह विधा हठयोग से शुरू होती है ऐसा आगे भगवान शिव का मत इस परम्परा और इसके महत्व एवं उपयोगिता को निम्नश्लोक द्वारा स्पष्ट करता

त्रैलोकये यानि भूतानि तानि सर्वाणि देहतः।
मेरू संवेष्टय सर्वत्र व्यवहारः प्रवर्तते।
जनाति यः सर्वमिदं स योगी मात्र संशयः।।

(शिव संहिता 2/4)

अर्थात जो त्रैलाकय में चराचर वस्तु हैं सो सब इसी शरीर में मेरू के आश्रय हो के सर्वत्र अपने अपने व्यवहार को वर्तते हैं , जो मनुष्य यह सब जानता है सो योगी है। इसमें संशय नहीं हठयोग के अभ्यास की महत्तता पर भी आदि देव भगवान शिव का बड़ा स्पष्ट उपदेश है।

हठं बिना राजयोगो राजयोगं बिना हठः।
तस्मात् प्रवर्तते योगी हठे सदगुरूमार्गतः।। (5/217)

अर्थात् हठयोग के बिना राजयोग और राजयोग के बिना हठयोग सिद्ध नहीं होता इस हेतु से योगी को उचित है कि योगवेत्ता सद्गुरू द्वारा हठयोग में प्रवृत हो। परिवर्तो समय में भगवान शिव द्वारा उपदेशित योग की परम्परा ने दो स्वरूप ले लिए एक परम्परा वैदिक परम्परा और दूसरी तांत्रिक परम्परा है। योग की तांत्रिक परम्परा हमारी आधुनिक जीवन (i)ति के अधिक समीप है फिर भी वैदिक और औपनिषदिक अवधारणा किसी भी दृष्टि से कम प्रासंगिक नहीं है। वेद ऋषियों-मनीषियों के मौलिक आध्यात्मिक , तात्विक, नैतिक, सामाजिक एवं व्यावहारिक विचारों के संग्रह हैं। इस परम्परा नें सृष्टि के प्रत्येक पहलू का अनुभव ईश्वरीय स्वरूप या प्रकृति की एक अभिव्यक्ति के रूप में किया है। वेद वस्तुतः चेतना के साक्षात्कार है जो चिन्तक विशेषों के कारण भिन्नता लिए प्रतीत होते है किन्तु अन्तिम सार सभी में एक समान ही है। ज्ञान और बुद्धि के स्तर पर वैदिक विचार धारा या तांत्रिक विचार धारा जो भी हो किन्तु

हठयोग की सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि के मूल में उपरोक्त सभी धारायें एक हो जाती है ये सिद्धांत निम्नलिखित है-

(1) शरीर और मन दोनों एक दूसरे को प्रभावित करते है।

(2) प्राण और मन में दोनों परस्पराश्रित हैं।

इन दोनों हठयोग के सिद्धांतों में मंत्र , लय एवं तारक योग की भी सैद्धांतिक आवश्यकता की पूर्ति हो जाती है। क्योंकि स्थूल शरीर सूक्ष्म शरीर का ही परिणाम है इस कारण स्थूल शरीर का प्रभाव सूक्ष्म शरीर पर समानरूप से पड़ता है। अतः स्थूल शरीर के अवलम्बन से सूक्ष्म शरीर पर प्रभाव डालकर चित्त वृत्तिनिरोध करने की जितनी भी शैलियां है उन सबको हठयोग के अर्न्तनभूत ही समझा जाता है।

हठयोग परम्परा के प्रमुख ऋषि:- हमने योग विज्ञान के परिचायात्मक स्वरूप के अंर्तगत हठ्योग परम्परा के प्रमुख ऋषियों महर्षि भृगु और महर्षि विश्वमित्र के नामों का उल्लेख किया था। इसी श्रृखला में नौ नाथों एवं चैरासी सिद्धों की भी गणना होती है।

हठयोग के दो प्रमुख भेद है जो निम्नानुसार हैः-

(1) मार्कण्डेय हठयोग और

(2) नाथपंथी हठयोग।

(1) **मार्कण्डेय हठयोगः-** प्राचीन नालन्दा विश्वविद्यालय बिहार राज्य में स्थित था। ई0 सन् 750 के आसपास अन्तिम गुप्त राजा के समय बिहार में बौद्ध मतावलंबी पालवंशीय राजाओं का प्रभुत्व बढ़ गया इनका राज्य कामरूप (असम) तक फैला था। इन्होंने भगलपुर के पास उदन्तपुरी में एक विशाल पुस्तकालय स्थापित किया और उसी के पास विक्रमशिला नामक वौद्ध विश्वविद्यालय 800 ई0 में स्थापित किया इन्ही दो संस्थाओं के प्रभाव के कारण नालन्दा विश्वविद्यालय का पतन हो गया था। इस विश्वविद्यालय में बड़े स्तर पर मंत्रायान , तंत्रयान तथा वज्रयान का अध्ययन होने लगा। वाममार्गीय तांत्रिक उपासना जिसे सहजयान भी कहते है। यह सहजयान के साधक लोग 84 सिद्धों के नाम से विख्यात हुऐ। इन 84 सिद्धों में प्रमुख सिद्ध सरहपा , शबरपा, लूहिपा, तिलोपा, भुसुक, जालन्धरपा, मीनपा, कव्हपा, नारोपा, तथा शन्तिपा विशेष रूप से प्रसिद्ध सिद्धों में जाने जाते है। इन सिद्धो में सिद्ध नरोपा सुप्रसिद्ध दीपंकर श्रीज्ञान के गुरू थे। और नरोपा के गुरू सिद्ध तिलोपा थे। गोरखनाथजी के गुरू मत्स्येन्द्रनाथ के सिद्ध मीनपा के पुत्र थे। और सिद्ध जालन्धरपा मत्स्येन्द्रनाथ के गुरू थे।

(2) **नाथपंथी हठयोगः** - नाथ सम्प्रदाय का उदय लगभग 1000 ई 0 के आसपास हुआ। इस साधना धारा के नौ नाथों का वर्णन निम्नानुसार है-

नौ नाथः-

1. गोरक्ष नाथ 2. ज्वालेन्द्रनाथ 3. कारिणनाथ 4. गहिनीनाथ

5. चर्पटनाथ 6. रेवणनाथ 7. नागनाथ 8. भर्तृनाथ तथा 9. गोपीचन्द्रनाथ।

नाथ सम्प्रदाय के साधक कनफट योगी भी कहलाते है। इनकी विशेषता उनके कान में बड़े बड़े सींग के कुण्डल होना है। इसका तात्पर्य अत्यन्त गूढ़ है। कान छेदने से साधारणतया अन्त्रवृद्धि तथा अण्डवृद्धि रोग नहीं होते। और कुछ साधकों का मत है कि इस प्रक्रिया से योगसाधना में भी सहायता मिलती है इन योगियों के गले में काले ऊन का एक बटा हुआ धागा होता है जिसे सेली कहते है। और इस सेली में सींग की एक छोटी सी सीटी बँधी रहती है जिसे नाद (श्रृगीनाद) के प्रतीक अर्थ से लिया जाता है।यह नादानुसंधान अथवा प्रणवाभ्यास का धोतक है। इनके हाथ में नारियल का खप्पर होता है।

हठयोग साधना का ऐतिहासिक विकास

योग विज्ञान के ऐतिहासिक विकास के अनुरूप ही हठ्योग साधना का ऐतिहासिक विकास हुआ। योग विज्ञान के अंगों में हठयोग का उल्लेख सभी में निहित है। हमने अध्ययन किया है कि भारतीय संस्कृति में ज्ञान के सभी स्त्रोतों का उदगम् ईश्वर से शुरू होता है। जिस प्रकार ईश्वर अनादि और अजन्मा है उसी प्रकार योग विज्ञान भी सृष्टि के आरम्भ काल से प्रवाहमान है। इसी क्रम में हठयोग भी अपना स्थान रखता आया है, यह अंग सबसे ज्यादा व्यवहारिक है।

हठयोग साधना के ऐतिहासिक विकास को हम दो परम्पराओं में बाँट सकतें हैः-

(1) परम्परानुसार विकास

(2) ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक विकास।

(1) परम्परानुसार विकास

परम्परानुसार हठ्योग साधना के विकास में ऐसी मान्यता चली आ रही है कि समस्त साधनों का मूल योग है, तप, जप, संन्यास, उपनिषद् ज्ञान आदि मोक्ष हेतु अनेक हैं किन्तु सर्वोत्कृष्ट योग मार्ग ही है और योगमार्ग में प्राथमिक योग हठयोग ही है। इसी योग के प्रभाव से शिव सर्वसामाथ्र्य, ब्रह्यकत्र्ता, विष्णु पालक हैं। योग के मुख्य उपदेष्टा भगवान शिव नें पार्वती जी से कहा कि ब्रह्य जी की कथा से योगी याज्ञवलक्यस्मृति बनी है। विष्णु (भगवान श्री कृष्ण जिनके अवतार मान जाते है।) ने गीता एवं भागवत् के ग्यारहवें स्कंध में कहा है कि इसके मुख्य आचार्य आदिनाथ (शिवजी) हैं। इन्हीं से नाथ संप्रदाय शुरू हुआ। ऐसी श्रुति है कि एक समय आदिनाथ किसी द्वीप में योगेश्वरी, जगत्जननी, भगवती आदिशक्ति, माँ पार्वती को योग साधना को समझा रहे थे तभी एक मछली ने यह दिव्य ज्ञान एवं दिव्य साधना से दिव्य मनुष्य देह प्राप्त किया एवं मत्स्येन्द्रनाथ के नाम से जाने गये। इन्हीं मत्स्येन्द्रनाथ नें हठयोग साधना का प्रचार प्रसार किया इनके अनुयायियों में शाबरनाथ (जिन्होंने शाबरतंत्र का प्रार्दुभाव किया) इसी श्रृंखला में आनंदभैरव नाथ, चैरंगीनाथ, आदि हुऐ। ऐसी मान्यता प्रचलित है कि ये योगी इच्छाअनुसार कही भी विचरण कर सकते थे। एक समय भ्रमण के दौरान एक चोर को हाथ पैर कटे हुऐ इन्होंने देखा इनकी कृपा दृष्टि से उस चोर के हाथ-पाँव ऊग आये तथा उसे सत्यज्ञान भी हो गया। मत्स्येन्द्रनाथ जी से योग पाकर चैरंगिया नाम योगी सिद्ध विख्यात हुआ। मत्सयेन्द्रनाथ से योग पाकर मीननाथ , गोरखनाथ, विरूपाक्ष बिलेशय, मंथानभैरव, सिद्धवृद्ध, कंथड़ी कोरंटक, सुरानंद, सिद्धपाद, चर्पटी, कानेरी, पूज्यवाद, नित्यानंद, निरंजन, कपाली, विंदुनाथ, काकचंडीश्वर, अल्लाम, प्रभुदेव, धोडाचोली, टिंटिणी, भानुकी, नारदेव, चण्डकापालिक तारानाथ इत्यादि योगसिद्धि पाकर योगाचार्य हुए हैं।

(2) ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक विकास

ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक ज्ञान के आधार पर हठयोग साधना का विकास क्रम अनुमान लगाया जा सकता है। आप जानते है कि विश्व की सर्वाधिक प्राचीन सभ्यता सिन्धुघाटी की सभ्यता है। इस काल से शुरू कर हठयोग के विकास को समझने हेतु पुरातात्विक धरोहरों एवं प्राचीन साहित्य का आधार बनाया गया है। इस प्रकार काल क्रमानुसार हठयोग विज्ञान का ऐतिहासिक विकास निम्नानुसार है:-

(i) पूर्व वैदिक काल।

(ii) वैदिक काल।

(iii) उपनिषदों का काल।

(iv) महाकाव्य काल।

(v) सूत्र काल।

(vi) स्मृति काल।

(vii) पौराणिक काल।

(viii) मध्यकाल।

(ix) पूर्व-आधुनिक काल।

(x) 21वीं शताब्दी का प्रारंभ काल।

(i) पूर्व वैदिक काल:- पुरातात्विक साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि वैदिक काल के पूर्व 3000 ईसवीं पूर्व में सिन्धु घाटी नामक एक ऐसी सभ्यता थी जिसमें मातृ शक्ति की पूजा की जाती थी। यही से पुरावशेष के रूप में प्राप्त पशुपतिनाथ की मुद्रा पद्यमासन में अर्धनिमिलित नेत्र जो नासिका के अग्रभाग पर स्थिर है। हठयोग साधना के अंग आसन का साक्ष्य प्रदान करता है। इससे हठयोग साधना की परम्परा का ऐतिहासिक कालानुक्रम पूर्व वैदिक काल तक पहुँचता है।

(ii) वैदिक काल:- हठयोग साधना का ज्ञान वैदिक समय में था क्योंकि वैदिक साहित्य से ज्ञात होता है कि प्राणापनादि वायु, सत्यधर्म की महत्ता, ध्यान, आचारशुद्धि ध्यानात्मक आसन की स्थिति आदि हठयौगिक क्रिया-प्रक्रियाओं का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है। हठयोग को प्राणयोग भी कहते है। शथपथ ब्राम्हण, एतरेय ब्राम्हण, कौशीतिकी ब्राम्हण, जैमनीय एवं गोपथ ब्राम्हण आदि में प्राणविद्या के बारे में विस्तार से वर्णन है। प्रणव विद्या का विकसित रूप इस काल में आ चुका था।

(iii) उपनिषदों का काल:- उपनिषदों के काल में हठ्योग साधना चरम उत्कर्ष पर थी। इस काल के साहित्य में प्राणयोग पर असाधारण साहित्य प्राप्त होता है। वृहदारण्यकोपनिषद् (1.5.3) एवं छांदोग्य उपनिषद् (1.3.3) में प्राण अपान आदि पाँच वायुओं के महत्व का वर्णन किया गया है। हद्रय तथा उससे निकलने वाली नाड़ियो का वर्णन कठोपनिषद (2:3:16) तथा छांदोग्य

उपनिषद (8.6.1) में पाया जाता है। हठ्योग में सबसे आधिक महत्वपूर्ण समझी जाने वाली सुषुम्नानाड़ी का अप्रत्यक्ष उल्लेख भी इन दोनों उपनिषदों में तथा तैतरीय उपनिषद् (6.1) में मिलता है। श्वेताश्वतर उपनिषद में हठयोग के अभ्यासों का क्रमवार विवरण प्राप्त होता है। तथा उनका शरीर क्रियात्मक प्रभाव का वर्णन भी प्राप्त होता है। जिसकी परम्परा परिवर्ती हठयोग साहित्य में प्राप्त होती है।

(iv) महाकाव्य कालः - रामायण एवं महाभारत काल में हठयोग साधना का पर्याप्त प्रयोग मिलता है। इस काल के अतुलनीय ग्रंथ श्रीमद्भगवत गीता में भी कई जगह हठयोग साधना के तत्व प्राप्त होते है।

(v) सूत्र कालः - यह काल योग दर्शन की महान कृति पांतजल योग सूत्र के संकलन का काल रहा इसी समय के पहिले भगवान बुद्ध एवं भगवान महावीर का समय रहा। इस तीनों धाराओं में हठयोग साधना के पर्याप्त तत्व प्राप्त होते है।

(vi) स्मृति कालः- स्मृति काल में हठयोग साधना का स्वरूप कुछ विशेष अर्थो के प्रार्दुभाव के साथ हुआ। इस काल से रचित याज्ञवलक्य स्मृति, मनुस्मृति, दक्षस्मृति आदि में पर्याप्त हठयोग साधना के सिद्धांत समाहित है।

(vii) पौराणिक कालः- पौराणिक काल में हठयोग साधना पर पर्याप्त साहित्य उपलब्ध होता है। प्रथम ईसवी सदी के आसपास से पौराणिक काल की शुरूआत हो जाती है। इस काल में 18 पुराणों की परम्परा है साथ ही इनके 18 उपपुराण भी है हंलाकि इनकी संख्या सैकड़ों में भी हो सकती है। इन पुराणों में हठयोग साधना के कई संदर्भ जगह-जगह पर प्राप्त होते है।

(viii) मध्य कालः- मध्यकाल में हठयोग साधना की गहरी परम्परा रही है। इन परम्पराओं को चार प्रकारों में पृथक-पृथक अध्ययन की सुविधा हेतु बाँटा जा सकता है। ये निम्नलिखित प्रकार से है-

(i) तन्त्र धारा (ब) नाथ धारा (स) भक्तिधारा (द) शंकराचार्य धारा।

इस काल में हठयोग साधना का उद्भव अपने चरमोत्कर्ष पर था। तन्त्रों में हिन्दू और बौद्ध दोनों तन्त्रों में हठयोग की साधनाओं के स्त्रोत भरे पड़े है। नाथों तथा सिद्धों की साधना (i)ति तो शुद्ध हठयोग साधना विधान ही है। भक्ति काल में भी हठयोग साधना के तत्व शण्डिल्य सूत्र, नारद भक्ति सूत्र इत्यादि में प्राप्त होते हैं। शंकराचार्य धारा भी प्राण साधना द्वारा हठयोग से ओत-प्रोत है।

(ix) पूर्व आधुनिक कालः- इस काल में स्वामी शिवानंद , स्वामी विवेकानंद , स्वामी कुवल्यानंद आदि योग साधकों ने हठयोग के अंगोपर पर्याप्त बल दिया है। एवं हठयोग साधना पर वैज्ञानिक प्रयोग भी इस समय में किये गये है। इस काल हठयोग साधना के कई ग्रंथों का प्रणायन हुआ।

(x) 21 वीं शताब्दी का प्रारम्भ कालः- इस काल में विशेष धार्मिक सामाजिक आंदोलनो के रूप में योग का जो स्वरूप विकसित हो रहा है उसमें सर्वाधिक प्रयोग हठयोग साधना के अंगों का

हो रहा है। इस काल में हठयोग साधना के आश्रमों संस्थाओं विद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों के स्तर पर भी हठ्योग साधना के अभ्यास को महत्व दिया जा रहा है। इस साधना (i)ति पर शोध की संभावनाएं बढ़ी है मेडिकल कॉलेजों में हठयोग के शरीर क्रियात्मक प्रभाव पर अनेक शोध परियोजनाएँ संचालित हो रही है। शसकीय स्तर पर भी इस साधना (i)ति को समर्थन एवं अनुदान प्राप्त हो रहा है।

6.6 **सारांश**

केवल मनुष्य ऐसा प्राणी है जो अपनी इंद्रियों में नियत्रंण कर सकने का विवेक रखता है। यह तत्व उसे अन्य प्राणियों से श्रेष्ठ बनाता है। इंद्रियों पर नियंत्रण तभी किया जा सकता है जब मन को नियंत्रित किया जा सकेगा। मन मनुष्य के पूर्व संस्कारों की वृत्तियों के अनुरूप चंचल एवं सतत् परिणामशील है। चित्त की वृत्तियों के निरोध से मन का नाश संभव है। इस प्रकार मन का नाश इंद्रियों के नियंत्रण के लिये अतिआवश्यक है। मन चूकिं पूर्व संस्कारों के एवं वर्तमान परिस्थितियों के प्रभाव से अत्यंत चंचल बना रहता है उसकी चंचल वृत्ति से व्यक्तित्व में विघटन का कारक या बंधन का कारण होता है। बंधन से मुक्त होने हेतु मन पर नियत्रंण पहली शर्त है। इसी मन को नियत्रित करने की विद्या या विज्ञान हठयोग विज्ञान के नाम से जाना जाता है।

हठयोग विज्ञान दो मूल सिद्धांतों को लेकर कार्य करता हैः-

(1) शरीर और मन दोनों एक दूसरे को प्रभावित करते है।

(2) प्राण और मन ये दोनों परस्पराश्रित है।

अतः मन पर नियंत्रण हेतु प्राणों का श्वास तकतीक के द्वारा नियमन एवं नियंत्रण द्वारा मन को वश में कर (अपने नियंत्रण में लेकर) चित्त को शांत कर अर्थात मन की चंचलता से उठनेवाली वृत्तियों का निरोध कर इंद्रियों पर विजय प्राप्त की जा सकती हैं। यही हठयोग साधना का फल राजयोग हेतु आधार भूमि तैयार करता है। इस हेतु हठयोग साधना के निम्नलिखित सात सोपानों में पूर्णता प्राप्त करना होता है।

(1) **षट्कर्मः-** दूषित शरीर के शोधन हेतु क्रियायें।

(2) **आसनः-** शरीर को स्थिरता एवं सुखपूर्वक लम्बे समय तक रख सकने की योग्यता। अर्थात् शरीरिक दृढ़ता प्राप्त करना।

(3) **मुद्रा एवं बन्धः-** कुछ विशिष्ट शरीरिक भाव भगिमाये (मुद्रा) एवं प्राणों को अंग विशेष में रोके रखना (बन्ध) इन मुद्रा एवं बन्ध से शारीरिक एवं मानसिक स्थैर्य प्राप्त किया जा सकता है।

(4) **प्रत्याहारः-** मन जब इन्द्रियों के साथ मिलकर कार्य करता है तो कर्म का सम्पादन होता है। अतः मिथ्या इन्द्रिय जन्य कर्मों को त्यागकर मन को इन्द्रियों से खींचकर अपने चित्त में स्थिर रहना प्रत्याहार है तथा इससे धैर्य की प्राप्ति होती है।

(5) **प्राणायाम:-**प्राणों को सम्पूर्ण अंग विशेष के सूक्ष्मतम भागों में प्रवेश करा देना प्राणों को आयाम या विस्तार देना है। इससे शरीर में लाघव या हल्कापन एवं निरोगता आती है।

(6) **ध्यान:-** प्राणों को आयाम देकर मन को वश में कर किसी स्थान , वस्तु , या लक्ष्य विशेष पर प्राणों को एकाग्र करना ध्यान कहलाता है। ध्यान से समाधि की उपलब्धि होती है। तथा चिन्तन की विषय वस्तु का प्रत्यक्ष हो जाता है।

(7) **समाधि**:- ध्यान की एकाग्रता का लगातार बने रहना समाधि है समाधि की अवस्था ही हठयोग से राजयोग में प्रवेश का द्वार है।

इस प्रकार से सात अंग हठयोग साधना की क्रमशः सीढ़ियाँ है। इस प्रकार हठयोग साधना की परम् गोप्य प्रणाली का ज्ञान हठयोगी साधक की शरण से ही प्राप्त हो सकता है ऐसा स्वयं भगवान शिव का कथन है। अतः इस जगत् के कर्म बन्धनों को काटकर मुक्ति का व्यवहारिक एवं श्रेष्ट मार्ग हठयोग साधना (i)ति है जिससे शरीर के स्तर से लेकर इंन्द्रियों मन चित तथा आत्मा के बोध तक जाया जा सकता है।

हठयोग

विभिन्न यौगिक उपनिषदो में मुख्य रूप से छह प्रकार के योगों का वर्णन मिलता है , जो क्रमशः कर्मयोग, ज्ञानयोग, हठयोग, राजयोग, मंत्रयोग तथा लययोग है। इनमें राजयोग को , जैसा कि नाम से विदित है, सभी योगों का राजा या श्रेष्ठतम योग माना गया है। इसकी अन्तिम अवस्था प्राप्त करने में हठयोग की साधना सहायक होती है।

साधारणतः 'हठ शब्द का अर्थ बल , जिद, दुराग्रह होता है। शाब्दिक दृष्टि से हठ ह एवं ठ से मिलकर बना है। यौगिक दृष्टि से ह (हं) का प्रतिनिधत्व करता है , जिसका सांकेतिक अर्थ है चन्द्र अर्थात इड़ा नाड़ी तथा ढ ढम् का धोतक है जिसका अर्थ है सूर्य अर्थात् पिंगला नाड़ी, और योग का अर्थ होता है मिलन। अतः हठ योग का अर्थ हुआ - हमारे जीवन के सूर्य व चन्द्र नाड़ियों के बीच संतुलन या मिलन कराने वाली विद्या या योग साधना (i)ति।

हठयोग का महत्व

- योग साधना के चार सम्प्रदाय उपनिषदों में बताये गये है। ये है राजयोग , लययोग, हठयोग एवं मंत्र योग। क्लेश आदि के रहने पर योग की स्थिति नहीं बन सकती इस हेतु क्लेशादि को हटाना आवश्यक हो जाता है। कर्मो के अनुरूप व्यक्ति शरीर ग्रहण कर भावना भाषित होता है। ये भावनाएँसात्विक, राजसिक एवं तामसिक प्रकार की होती है। इन अलग अलग स्वरूपों की भवनाओं के सामंजस्य हेतु योग के प्रकार भी अलग अलग हो जाते है। तथा कर्म का स्वरूप एक समान होने पर भी भावना अनुरूप उसके परिणाम में भिन्नता हो जाती है।

उपनिषद मन को बन्धन एवं मोक्ष का कारण मानते है। क्योंकि कर्मो की उत्पत्ति कत्र्ता एवं चालक कर्म ही है। उनके नियंत्रण हेतु हठयोग साधना निम्न दो सिद्धांतों पर अवधारित है।

(1) शरीर और मन दोनों एक दूसरे को प्रभावित करते है।

(2) प्राण और मन ये दोनों परस्पराश्रित है।

अतः मन पर नियंत्रण हेतु प्राणों का श्वास तकनीक के द्वारा नियमन एवं नियंत्रण द्वारा मन को शांत कर चित्त के अनुरूप अपने को स्वरूप में प्राप्त करना इस अवस्था में सूर्य एवं चन्द्र स्वर मिलकर सुषुम्ना से प्रवाहित होने लगते है। प्राणों को नियत्रंण में कर राजयोग की साधना (i)ति, शरीरशुद्धि से शुरू होकर सप्तअंगों द्वारा समाधि की अवस्था की ओर बढ़ती है। यही हठयोग का सिद्धांत है।

प्राण एवं विविध प्राणों के कार्य

योग विज्ञान के अनुसार प्राण एक अन्तर्निहित तेजस्वी शक्ति है। यह जगत् के तत्वों के स्तर पर आकाश से लेकर पृथ्वी तक पदार्थ जगत् के समस्त भावों में व्याप्त है। जगत् का हर एक तत्व विविध रूपों में प्राणिक शक्ति के संयोजन और संघटन का ही परिणाम है। पदार्थ प्राणिक शक्ति के सर्वाधिक सघन रूप है। जगत् के समस्त् अस्तित्वान् (व्यक्त) रूपों में जो संपीडित या धनीभूत शक्ति है वह प्राणिक शक्ति की ही अभिव्यक्ति है।

हठयोग-साधना के मूल आधार प्राण है। ये व्यक्त प्राण दो है। (1) इड़ा (2) पिंगला। पिंगला से पांच उप प्राण निकलते है ये है-

(1) प्राण, (2) अपान ,(3) समान, (4) ब्यान, (5) उदान इन प्राणों के कार्य निम्नलिखित हैः-

प्रधान प्राण अपने को इन उप विभागों में विभक्त कर शरीर की विभिन्न क्रियाओं तथा इन्द्रियों और मन बुद्धि को सक्रिय बनाये रखता है। प्राण , अपान, समान, व्यान और उदान ये मुख्य प्राण है। नाग कूर्म , कृकल, देवदत्त ओर धनंजय सूक्ष्म प्राण कहलाते हैं। इनके कार्य निम्नलिखित हैः-

(1) प्राण- यह मानव जीवन का आधार है इसका मुख्य स्थान हृदय है। श्वास को लेना और बाहर निकालना, खासना, खाये अन्न का पाचन करना , रसादि धातुओं का निर्माण करना प्राण के कार्य हैं। नाभि से ऊपर के सभी कार्य और इन्द्रियां प्राण द्वारा ही संचालित होती है।

(2) अपान- नाभिप्रदेश के नीचे गुदा, उपस्थ, जंघा, घुटने और कटि प्रदेश में अपान स्थित है। मल , मूत्र, शुक्र और गर्भ को नीचे की ओर ले जाना और बाहर निकालना इस कार्य है।

(3) समान- नाभि प्रदेश में स्थित समान प्राण बचे हुये रस आदि को शरीर के सब अंगो और नाड़ियों में बांटने का कार्य करता है।

(4) व्यान- सारी स्थूल और सूक्ष्म नाड़ियों में गति करना हुआ शरीर के सब अंगो में रूधिर (रक्त) का संचार करता है।

(5) उदान- कण्ठ में स्थित है। शरीर को उठाये रखना इसका कार्य है। मृत्यु के समय उदार ही सूक्ष्म शरीर को बाहर निकाल कर ले जाता है।

हठयोग साधना की परम्परा

महावोध समाधि की आकांक्षा रखने वाले हठयोग साधना की परम्परा के साधक इस परम्परा के साधक होते है। इस परम्परा की शुरूआत आदिनाथ योगीश्वर भगवान शिव से हुई ऐसा शिवसंहिता में स्वयं भगवान शिव का उपदेश है।

भारतीय संस्कृति में ज्ञान के सभी स्त्रोतों का उद्गम् ईश्वर से शुरू होता है। जिस प्रकार ईश्वर अनादि और अजन्मा है उसी प्रकार हठयोग विज्ञान भी सृष्टि के आरभ्भ काल से ही प्रवाहमान है। भगवान शंकर ने शिवसंहिता में कहा है कि जो त्रैलोक्य में चराचर वस्तु है जो सब इसी शरीर में मेरू के आश्रय हो के सर्वत्र आपने-आपने व्यवहार को वर्तते हैं। इस प्रकार साधना का क्षेत्र यही मनुष्य शरीर है। शिव द्वारा प्रदत्त हठयोग का ज्ञान बाद में दो परम्पराओं में बट गया। ये निम्न हैः-

(1) वैदिक परम्परा

(2) तान्त्रिक परम्परा

इन परम्पराओं के भी बाद में दो साधना सम्प्रदाय हो गये ये निम्नलिखित हैः-

(1) मार्कण्डेय सम्प्रदाय

(2) नाथ सम्प्रदाय

नाथ सम्प्रदाय (कनफटे योगी) की हठयोग साधना (i)ति आज ज्यादा लोकप्रिय बनी हुई है।

नौ नाथों

नौ नाथ सम्प्रदाय का उदय लगभग 1000 ई0 के आसपास हुआ। इस साधना धारा के नौ नाथों का वर्णन निम्नानुसार है-

नौ नाथः-

1. गोरक्ष नाथ।
2. ज्वालेन्द्रनाथ।
3. कारिणनाथ।
4. गहिनीनाथ।
5. चर्पटनाथ।
6. रेवण्नाथ।
7. नागनाथ।
8. भर्तृनाथ तथा।
9. गोपीचन्द्रनाथ।

नाथ सम्प्रदाय के साधक कनफटे योगी भी कहलाते है। इनकी विशेषता उनके कान में बड़े बड़े सीगं के कुण्डल हाना है। इसका तात्पर्य अत्यंन्त गूढ़ है। कान छेदने से साधारणतया अन्त्रवृद्धि तथा अण्दवृद्धि रोग नहीं होते। और कुछ साधकों का मत है कि इस प्रक्रिया से योगसाधना में भी सहायता मिलती है इन योगियों के गले में काले ऊन का एक बटा हुआ धागा होता है जिसे सेली कहते है। और इस सेली में सींग की एक छोटी सी सीटी बँधी रहती है जिसे नाद (श्रृगीनांद) के प्रतीक अर्थ से लिया जाता है।यह नादानुसंधान अथवा प्रणवाभ्यास का धोतक है। इनके हाथ में नारियल का खप्पर होता है।

योग के चार प्रकार

दत्तात्रेय योग शास्त्र नामक ग्रंथ में योग के प्रकारों का वर्णन मिलता है । इस ग्रंथ के निम्नलिखित सूत्र में योग के प्रमुख प्रकारों का वर्णन इस प्रकार है-

मन्त्रोयोगो लयश्चैव हठयोगस्तथैवच।

राजयोगश्चतुर्थः स्याद्योगानामुत्तमस्तुसः।।

(दता. योग. 18. 19)

इसी प्रकार योगराज् नामक उपनिषद् में मन्त्रयोग, लययोग, हठयोग तथा राजयोग के रूप में चार प्रकार माने गये हैं । योगतत्वोपनिषद् नामक उपनिषद में इन चार प्रकार के ऊपर वर्णित योगों का उल्लेख करते हुये उनके लक्षण दिये गये हैं इनमें हठयोग का लक्षण बतलाया गया है कि विभिन्न मुद्राओं एवं बन्ध आदि जिस योग में किये जाते हैं वह हठयोग है ।

योगशिखोपनिषद् में स्पष्ट कहा गया है कि ये योग साधना में एक क्रम से उत्तरोत्तर सिद्ध होते हैं । इनका क्रम निम्नांकित प्रकार से है -

(1) मन्त्र योग

(2) लययोग

(3) हठयोग

(4) राजयोग

इस उपनिषद में हठ के हकार द्वारा सूर्य का ग्रहण तथा ठकार के द्वारा चन्द्रमा का ग्रहण किया गया है। सूर्य तथा चन्द्रमा के ऐक्य को ही यहाँ पर हठयोग माना गया है।

योग सम्बन्धी अन्य ग्रन्थों में सूर्य तथा चन्द्रमा के द्वारा इड़ा तथा पिंगला नाड़ियों का ग्रहण भी किया जाता है। इनमें चलने वाले श्वांस की एकता ही संभवतः इस उपनिषदकार को मान्य रही है इसी कारण हठयोग का लाभ बतलाते हुऐ यहॅा पर सभी प्रकार की जड़ता दूर करने के उपाय रूप में हठयोग को साधन माना गया है।

हठयोग का अर्थ

हठयोग के बारे में लोगों की धारणा है कि हठ शब्द के हठ् + अच् प्रत्यय के साथ प्रचण्डता या बल अर्थ में प्रयुक्त होता है । हठेन या हठात् क्रिया विशेषण के रूप में प्रयुक्त करने पर इसका अर्थ

बलपूर्वक या प्रचंडता पूर्वक अचानक या दुराग्रहपूर्वक अर्थ में लिया जाता है। हठ विद्या स्त्रींलिंग अर्थ में बलपूर्वक मनन करने के विज्ञान के अर्थ में ग्रहण किया जाता है। इस प्रकार सामान्यतः लोग हठयोग को एक ऐसे योग के रूप में जानते हैं जिसमें हठ पूर्वक कुछ शारीरिक एवं मानसिक क्रियाओं को किया जाता है। इसी कारण सामान्य शरीर शोधन की प्रक्रियाओं से हटकर की जाने वाली शरीर शोधन की षट् क्रियाओं (नेती, धौती, कुंजल वस्ति, नौली, त्राटक, कपालभाति) को हठयोग मान लिया जाता है। जबकि ऐसा नहीं है। षटकर्म तो केवल शरीर शोधन के साधन है वास्तव में हठयोग तो शरीर एवं मन के संतुलन द्वारा राजयोग प्राप्त करने का पूर्व सोपान के रूप में विस्तृत योग विज्ञान की चार शाखाओं में से एक शाखा है।

साधना के क्षेत्र में हठयोग शब्द का यह अर्थ बीज वर्ण ''ह'' और ''ठ'' को मिलाकर बनाया हुआ शब्द के अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। जिसमें ह या हं तथा ठ या ठं (ज्ञ) के अनेको अर्थ किये जाते हैं उदाहराणार्थ ह से पिंगला नाड़ी दहिनी नासिका (सूर्य स्वर) तथा ठ से इड़ा नाडी बॉयी नासिका (चन्द्रस्वर) इड़ा ऋणात्मक (-) उर्जा शक्ति एवं पिगंला धनात्मक (+) उर्जा शक्ति का संतुलन एवं इत्यादि इत्यादि। इन दोनों नासिकाओं के योग या समानता से चलने वाले स्वर या मध्यस्वर या सुषुम्ना नाड़ी में चल रहे प्राण के अर्थ में लिया जाता है। इस प्रकार ह और ठ का योग प्राणों के आयाम से अर्थ रखता है। इस प्रकार की प्राणायाम प्रक्रिया ही ह और ठ का योग अर्थात हठयोग है, जो कि सम्पूर्ण शरीर की जड़ता को सप्रयास दूर करता है प्राण की अधिकता नाड़ी चक्रों को सबल एवं चैतन्य युक्त बनाती है ओर व्यक्ति विभिन्न शारीरिक, बौद्धिक एवं आत्मिक शक्तियों का विकास करता है। स्थूल रूप से हठ योग अथवा प्राणायाम क्रिया तीन भागों में पूरी की जाती है -

(1) रेचक - अर्थात श्वास को सप्रयास बाहर छोड़ना।

(2) पूरक - अर्थात श्वास को सप्रयास अन्दर खींचना।

(3) कुम्भक - अर्थात श्वास को सप्रयास रोके रखना कुम्भक दो प्रकार से संभव है -

(1) बर्हिःकुम्भक - अर्थात श्वास को बाहर निकालकर बाहर ही रोके रखना।

(2) अन्तःकुम्भक -अर्थात श्वास को अन्दर खींचकर श्वास को अन्दर ही रोके रखना।

इस प्रकार सप्रयास प्राणों को अपने नियंत्रण से गति देना हठयोग है। यह हठयोग राजयोग की सिद्धि के लिए आधारभूमि बनाता है। अतः यहॉं स्पष्ट तौर पर समझ लेना चाहिए कि बिना हठयोग की साधना के राजयोग (समाधि) की प्राप्ति बड़ा कठिन कार्य है। अतः हठयोग की साधना सिद्ध होने पर राजयोग की ओर आगे बढ़ने में सहजता होती है।

3.4 **हठयोग का सिद्धांत**

आप प्रथम प्रश्नपत्र में योग के विभिन्न प्रकारों की अच्छी तरह जानकारी हासिल कर चुके है। हठयोग के स्वरूप में आपने हठयोग के सिद्धांत का परिचय प्राप्त किया था , यहाँ हठयोग के सिद्धांत को

विस्तार से अध्ययन करेंगे। आपको ज्ञात हो चुका है है कि उपनिषद चार प्रकार के योगों का वर्णन चार प्रकार के साधना सम्प्रदायों के अनुरूप करते है , ये है (1) राजयोग, (2) लययोग, (3) हठयोग, एवं (4) मंत्र योग। आपने देखा कि महर्षि पतंजलि का योग दर्शन राजयोग के अन्तर्रगत आता है। इस मत में चित्त वृत्ति के निरोध को ही योग माना गया है। उपासना -मार्ग भी राजयोग का ही रूपान्तर है , जिसे ईश्वर प्रणिधाना द्वा सूत्र में ईश्वर प्रणिधान पद से बताया गया है। वर्तमान समय में प्रचलित शाक , शैव, वैष्णव आदि सम्प्रदाय ईश्वर प्रणिधान नाम के योग से गृहीत होते है। इसी पातंजल योग सूत्र के भाष्य कर्ता श्रीवेदव्यास जी ने इसे निम्नलिखित प्रकार से स्पष्ट करने की कोशिश की है ''प्रणिधानाद् भक्ति विशेषाद आवर्जित ईश्वरस्तमनु गृण्हाति , अभिध्यान मात्रेण तद् अभिध्यानादपि योगिन आसन समाधि लाभः फलंच भवति।'' (यो.सू.2/23) भोज ने भोज वृत्ति में इसकी व्याख्या निम्नलिखित प्रकार से की है-

'' प्रणिधानं भक्ति विशेषः विशिष्ट मुपासनम्''

अर्थात कलेशादि (अविद्या, अस्मिता, राग द्वैष, अभिनिवेश)से रहित ईश्वर तत्व को अनेक नामों से शास्त्रों में कहा गया हैं इसलिए उसको कोई एक संज्ञा नहीं दी जा सकती। इसलिए व्यास भाष्य में कहा गया हैः-

तस्य संज्ञादि विशेषत्तति पत्तिरागमतः पर्यन्वेष्या (यो.सू.व्या.भा. 2/25) इसलिए शिव , विष्णु, महाशक्ति आदि नाम तथा इनके नामों से पुराणादि ग्रथों की रचना करके तत्तद्भावना भावति-भक्ति योग की प्रवृत्ति महर्षि व्यास द्वारा की गई हैं। जीव ईश्वर का ही अंश है तथा अंश में कलेशादि के रहने पर योग की स्थिति नहीं बन सकती है इस हेतु क्लेशादि को हटाना आवश्यक हो जाता है। कर्मो के अनुरूप व्यक्ति शरीर ग्रहण कर भावना भाषित होता है। ये भावनाएॅं सात्विक, राजसिक एवं तामसिक प्रकार की होती है। इन अलग-अलग स्वरूपों की भावनाओं के सांमजस्य हेतु योगों के प्रकार भी पृथक-पृथक हो जाते हैं।

मानसिक भावना ही क्रियाओं के कर्म, अकर्म तथा विकर्म बनाने में मूल हेतु है। कर्म का स्वरूप एक दिखाई देने पर भी मानसिक भावना में अन्तर होने के कारण उनके स्वरूप तथा परिणामों में भी अन्तर आ जाता है। मैत्रायष्युपनिषद (4/11) में इस तथ्य को निम्नांकित प्रकार से कहा गया है -

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोंः।

बन्धाय विषयासत्कं मुकत्यै र्निविषयं स्मृतम्।।

अर्थात मनुष्य का मन ही बंधन एवं मोक्ष दोनो का ही कारण बनता है। विषयों में आसक्त होने से बंधन हो जाता है तथा विषयों में आसक्त न होने पर मोक्ष हो जाता है। श्रीमद्भागवत् गीता में भी पांचवे अध्याय के ग्यारहवें तथा अठारहवें अध्याय के पन्द्रहवें सूत्र में उक्त तथ्य को निम्नलिखित प्रकार से स्पष्ट किया गया है-

कायेन मनसा बुद्धया केवलैरिन्द्रियैरपि।

योगिनः कर्म कुर्वन्ति सगं त्यक्तात्मशुद्धये।।

अर्थात कर्मयोगी (ममत्वबुद्धि रहित) केवल इन्द्रिय, मन, बुद्धि और शरीर द्वारा भी आसक्ति को त्यागकर अन्तःकरण की शुद्धि के लिये कर्म करते हैं।

शरीरपाड़ मनोभिर्यत्कर्म प्रारभते नरः ।

न्याय्यं वा विपरीतं वा पच्चैते तस्य हेतवः ।।

मनुष्य मन, वाणी और शरीर से शास्त्रानुकूल अथवा विपरीत जो कुछ भी कर्म करता है उनके ये पांचों कारण (अधिष्ठान, कत्र्ता, करण, विविध चेष्टाएॅं एवं दैव) हैं। इस प्रकार कर्मो का उत्पन्न करना एवं संचालक मन के नियंत्रण की साधना प्राण है और प्राणों को नियंत्रित कर मन पर नियंत्रण प्राप्त करके का जो कौशल है वह हठयोग है। हठयोग ''शारीरिक और मानसिक शुद्धि तथा संतुलन प्राप्त करने का साधन है'' योग विज्ञान से सन्दर्भित आगम , निगम, उपनिषदों एवं अन्य ग्रंथों के अनुसार हठ शब्द दो मन्त्रों हं और ठं के संयोग से बना है। इसका आशय मनुष्य शरीर में स्थित प्राणवाही नाड़ियॉं इड़ा एवं पिंगला के सम्बन्ध से लिया जाता है। इड़ा एवं पिंगला के प्रवाह में मन बर्हिगति वाला ही रहता है। अतः मन को अन्तःमुखी (स्वानियत्रण) करने हेतु प्राण को सम अर्थात न तो इड़ा और न ही पिंगला में प्रवाहित होने देना है, बल्कि इन दोनों के मध्य स्थित नाड़ी जिसे सुषुम्ना कहते हैं प्राणों का प्रवाह होने पर मन शांत एवं स्वानियंत्रण में हो जाता है।

उपरोक्त सन्दर्भ में हठयोग का तात्पर्य ऐसे योग से है जिसके द्वारा इन दो शक्तियों (इड़ा + पिंगला) के बीच सन्तुलन की स्थापना हो सके। इड़ा नाडी हमारे शरीर की एक प्रमुख प्राणिक वाहिका है। यह प्राण के निष्क्रिय पहलू का प्रतीक है जो मनःशक्ति या चित्तशक्ति के रूप में अभिव्यक्त और अनुभूत होती है। पिंगला का सम्बन्ध और शक्ति , तेजस्वी शक्ति या सक्रियता से है। जो शारीरिक , आयाम में प्राणशक्ति के रूप में अभिव्यक्त और अनुभूत होती है। इस प्रकार हठयोग का सम्बन्ध शरीर के प्राणिक प्रवाह से है। प्राणों को नियंत्रण की साधना (i)ति से है। इस कारण हठयोग को प्राणयोग भी वेदों में कहा गया है।

3.5 हठयोग साधना की अवधारणा

हठयोग साधना प्राणो के नियंत्रित आयाम को साधना है इस योग को प्राणयोग भी कहते हैं। प्राण शब्द सामान्यतः दो रूपो में प्रयुक्त होता है।

(1) जन सामान्य में एक सामान्य धारणा है कि प्राण अर्थात श्वांस का लेना छोड़ना और जब हमारा श्वांस का लेना और छोड़ना बंद हो जाता है तो मान लेते हैं की व्यक्ति की मृत्यु हो गई।

(2) योग विज्ञान के अनुसार प्राण एक अन्तर्निहित तेजस्वी शक्ति है। यह जगत् के तत्वों के स्तर पर आकाश से लेकर पृथ्वी तक पदार्थ जगत के समस्त भावों में व्याप्त है। जगत् का हर एक तत्व विविध रूपों में प्राणिक शक्ति के संयोजन और संघटन का ही परिणाम है। पदार्थ प्राणिक शक्ति का सर्वाधिक सघन रूप है इसमें संपीडित प्राणिक उर्जा ठोस वस्तु के स्वरूप में होती है। यही संपीड़ित प्राणिक उर्जा जैविक रूप में जीवित शरीर के रूप में होती है तो भौतिक रूप में पदार्थो का एक टुकड़ा जगत के समस्त अस्तित्ववान् (व्यक्त) रूपों में जो संपीड़ित या धनीभूत शक्ति है

वह प्राणिक शक्ति की ही अभिव्यक्ति है। यह जीवनी शक्ति ही व्यक्त रूप में सतत् रूप से विकास परिपक्कवता और क्षय में क्रियाशील रहती है।

इस प्राण का सम्बन्ध मन , मस्तिष्क या शारीरिक सक्रियता से नहीं है। योग विज्ञान प्राण की चेतना से भिन्न एक अलग पहचान , एक अलग अस्तित्व के रूप में लिया गया है। प्राण के अतिन्द्रिय-अलौकिक -अव्यक्त पहलू को महाप्राण कहाँ गया है। इस अन्त्रिर्नहित शक्ति के अभिव्यक्त रूपों को उपप्राण कहा जाता है। महाप्राण जब अव्यक्त स्वरूप में होता है तो उसका संबंध शक्ति या प्रकृति के साथ होता है। शक्ति के साथ महाप्राण के विलय के कारण प्राण एक अन्य स्वरूप में प्रस्फुटित होता है जिसे व्यक्त जीवनी शक्ति कहते हैं। यह व्यक्त प्राण या व्यक्त जीवनी शक्ति ही सृष्टि के तात्विक कारण और सूक्ष्म स्वरों के संचालन तथा नियमन के लिए मुख्य रूप से जिम्मेवार होते हैं। व्यक्त प्राण ही हठयोग साधना के मूल आधार है। यह व्यक्त प्राण निम्नलिखित हैः-

(i) इड़ा (ब) पिंगला।

(i) इड़ा - इड़ा चन्द्रशक्ति का प्रतीक है। यह जगत् में व्यक्त्त सूक्ष्म आयाम का संचालन करती है। व्यक्त सूक्ष्म आयाम या इड़ा समष्टि मन के अनुभवों का प्रतीक है।

(ब) पिंगला - पिंगला सूर्यशक्ति का धोतक है और व्यक्त स्थूल आयाम का निर्देशन करती है। स्थूल आयाम या पिंगला भौतिक या पदार्थ जगत की अभिव्यक्ति का प्रतीक है। पिंगला से पाँच उपप्राण निकलते हैं जो सृष्टि के भौतिक आयामों को संचालित करते हैं ये उपप्राण निम्नलिखित है:-

(i) प्राण

(ii) अपान

(iii) समान

(iv) उदान

(v) व्यान

उपरोक्त प्राणों की शरीर में स्थिति चित्र क्र. 1 एवं 2 के अनुसार निम्नलिखित है।

प्राणों के कार्य

प्रधान प्राण अपने को दस (10) उप विभागों में विभक्त कर शरीर की विभिन्न क्रियाओं तथा इन्द्रियों और मन बुद्धि को सक्रिय बनाये रखता है। प्राण , अपान, समान, व्यान और उदान ये मुख्य प्राण है। नाग कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनंजय सूक्ष्म प्राण कहलाते हैं। इनके कार्य निम्नलिखित है:-

(1) **प्राण -** यह मानव जीवन का आधार है इसका मुख्य स्थान ह्रदय है। श्वास को लेना और बाहर निकालना, खांसना, खाये अन्न का पाचन करना , रसादि धातुओं का निर्माण करना प्राण के कार्य हैं। नाभि से ऊपर के सभी कार्य और इन्द्रियॉं प्राण द्वारा ही संचालित होती है।

(2) **अपान -** नाभिप्रदेश के नीचे गुदा, उपस्थ, जंघा, घुटने और कटि प्रदेश में अपान स्थित है। मल, मूत्र, शुक्र और गर्भ को नीचे की ओर ले जाना और बाहर निकालना इसका कार्य है।

(3) **समान -** नाभि प्रदेश में स्थित समान प्राण पचे हुये रस आदि को शरीर के सब अंगो और नाड़ियों में बाटना इसका कार्य है।

(4) **व्यान -** सारी स्थूल और सूक्ष्म नाड़ियों में गति करता हुआ शरीर के सब अगों में रूधिर (रक्त) का संचार होता है।

(5) **उदान -** कण्ठ में स्थित है। शरीर को उठाये रखना इसका कार्य है। मृत्यु के समय उदान ही सूक्ष्म शरीर को बाहर निकाल कर ले जाता है।

इन पाँच प्राणों के अलावा (6) नाग का कार्य उद्गार, वमन, छींकना आदि है। (7) कूर्म का कार्य आंखों का झपकाना, निमेष, उन्मेष आदि है। (8) कृंकल का कार्य भूख व्यास की अनुभूति कराना। (9) देवदत्त का कार्य तन्द्रा , जम्भाई और निद्रा के कार्य को सम्पन्न करना है। (10) धनंजय प्राण का कार्य श्लेष्मादि का उत्सर्जन करना है यह प्राण मृत्यु के पश्चात् भी शरीर में रहता है।

प्राण शक्ति की विशेषताएँ-

प्राण शक्ति की निम्नलिखित प्रमुख विशेषताएँ है-

(1) प्राण की अनेक विशेषता है जिससे सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषताएँ प्राण का विश्वव्यापी जीवन पोषक तत्व है। यह गति बल और शक्ति का वाहक है। इसी शक्ति के बल पर जीवात्मा तत्क्षण अनन्य लोगों में गमन कर सकता है। इसी के द्वारा भाव और विचारों के परमाणुओं तथा प्रकम्पनों का वहन तथा विकिरण होता है। यह जल, थल, और नभ में सर्वत्र व्याप्त है। यह अग्नि और वायु में भी ओत-प्रोत है। यह अति सूक्ष्म अनोखा तेजस (गैसीय) तत्व है। दूसरे के मन की बात जान लेना। मीलों दूर संदेश प्रेषित कर देना। सम्मोहित करना आदि क्रियाएं इसी सर्वव्यापकता और विकिरणशीलता को ही प्रमाणित करती है। नक्षत्रों की आकर्षण शक्ति , विद्युत शक्ति और ग्रह-उपग्रहों की चाल में प्राण शक्ति ही अभिव्यक्त हो रही है।

(2) प्राण सर्वत्र संचरणशील है। अतः मनुष्य वायु के अतिरिक्त जल, सूर्य का प्रकाश, भोजन, ध्यान आदि से भी उसे ग्रहण कर सकता है। त्रुटि पूर्ण आहार-विहार के द्वारा इसका क्षय भी किया जा सकता है। उमंग उत्साह , शांन्ति, समझ-बूझ, सूझ, स्फूर्ति, सुमति सद्भावना, आरोग्य आदि के लक्षण इस बात के घोतक हैं कि मस्तिष्क और नाड़ी केन्द्रों में प्राण विपुल मात्रा में संचित है। इसके विपरीत निराशा अशान्ति, दुर्बुद्धि और दुर्भावना, रोग और दौर्बल्य प्राणी की क्षीणता के सूचक है। जिस प्रकार बिजली के तारों में विद्युत प्रवाहित होती है, उसी प्रकार हमारी शारीरिक और मानसिक क्रियाओं में प्राण निहित रहता है। जैसे विद्युत का वोल्टेज कम हो तो उच्च शक्ति का बल्व भी कम प्रकाश देने लगता है, उसी प्रकार शारीरिक दृष्टि से हट्टा-कट्टा व्यक्ति भी प्राणों की मात्रा कम होने से अपने को दीन-हीन-मलीन सा अनुभव करता है।

(3) प्राणों की गति के प्रकार- प्राण निम्नलिखित दो प्रकार से गति करते है-

(i) अर्न्तमुखी।

(ब) बर्हिमुखी।

बाह्य प्राण का प्राणमय शरीर द्वारा आकर्षण और फिर उसका कर्मेन्द्रियों के मार्ग से बाहर चला जाना ही प्राण की अर्न्तशमुखी और बर्हिमुखी गति अथवा प्रवाह कहलाता है। ज्ञानेन्द्रिय के द्वारा प्राण का अन्तर्मुखी प्रवाह और कर्मेन्द्रियों के द्वारा बर्हिमुखी प्रवाह सम्पादित होता है। अर्न्त मुखी प्रवाह पहले सुषुम्ना में जाता है वहीं से वह नाड़ी केन्द्रों में संचरित होता है और क्रियावाही नाड़ियों द्वारा खर्च किया जाता है। उदाहरणार्थ-खाये हुऐ अन्न का सार अंश (पुष्टि कर-भाग) शरीर में रक्षित रह जाता है। उसी प्रकार श्वासादि के द्वारा ग्रहण किये गये प्राण का सार भाग प्राणमय शरीर में संचित हुआ करता है और शेष भाग निःश्वासादि के द्वारा बाहर निकाल दिया जाता है। इसे और स्पष्ट समझने के लिऐ किसी कारखाने के यंत्र को केन्द्रिय डायनामों से विद्युत की धारा मिलती है और उसके द्वारा सभी कलपुर्जे उर्जावान् होकर चलते है। इसी प्रकार मानव शरीर की समस्त क्रियाओं में प्राणमय शरीर से निकलने वाली प्राणधारा से ही संचालित होती है।

इन्हीं प्राणिक क्रियाओं को पूर्णतः अपने वश में कर शरीर रूपी क्षेत्र में आत्मा का राज्य स्थापित करना हठयोग का परम लक्ष्य है। यही हठयोग साधना हैं जो राजयोग की ओर प्रेषित करती है। हठयोग के विविध अंगो के द्वारा हठयोग साधना के स्त्रोत निर्धारित होते हैं।

3.6 **हठयोग साधना के अंग**

हठ्योग के बिना राजयोग या राजयोग के बिना हठ्योग की साधना पूर्ण नहीं हो सकती है इसलिये योग के साधक को दोनों योगों की सम्यक् साधना करना चाहिये। इस हेतु आवश्यक है कि दोनों योगों की सम्यक् साधना करना चाहिये। इस हेतु आवश्यक है कि दोनों योगों का अभ्यास एक साथ ही करना चाहिये। षठकर्म आसन, प्राणायाम (कुंभक) मुद्रा व नादानुसंधान इस क्रम से हठ्योग की साधना की जानी चाहिये। षटकर्म और आसनों के अभ्यास द्वारा शरीर को लम्बे समय तक स्थिर एवं सुख पूर्वक रख सकने की योग्यता

अर्जित करने के उपरांत हठ्योग अर्थात प्राणयो की साधना प्रारम्भ की जा सकती है हम जानते हैं कि हठ् शब्द ''ह'' और ''ठ'' शब्दों से बना है। ''ह'' से तात्पर्य शरीर के दाहिने नासिका के स्वर से सम्बन्ध रखना है तथा ''ठ'' से तात्पर्य शरीर के बॉये नासिका के स्वर से सम्बन्ध रखना है।

इन दो स्वरों दांये एवं बायें से क्रमशः पिंगला एवं इड़ा नाड़ी का सम्बन्ध होता है। क्योंकि श्वास को इन स्वरों से चलाने पर स्वास इन नाड़ियों को स्पर्श कर उसके माध्यम से आने वाले प्राण-तत्व की शरीर में उपस्थिति बढ़ाते हैं। ये दोनो तत्व सूर्य (+) तथा चन्द्रमा (-) हमारे शरीर की सारी क्रियायें नियंत्रित करती है। हठयोग का ध्येय ही है कि इन दो तत्वों में सन्तुलन बना रहे। इन दो तत्वों के सन्तुलन में बने रहने से शरीर की सभी शारीरिक कार्यो में सुसंगति व संतुलन बना रहेगा। शरीर की समस्त क्रिया प्रक्रियाओं में उष्ण-शीत , अनुकम्पी-परानुकम्पी इस तरह के दो विरूद्ध गुणों का योग चलता रहता है।शरीर और मन का आपसी मेलजोल व सन्तुलन तथा सामंजस्य सम्यक् (ठीक) रहता है तो स्वास्थ्य

बना रहता है तथा उच्चतम यौगिक साधना हेतु हमारा शरीर और मन (नाड़ी संस्थान) पूरी तरह तैयार हो सकता है।

हठयोग जिस प्राण तत्व पर नियंत्रण प्राप्त करना चाहता है उसके सम्बन्ध में हमें थोड़ी जानकाकरी अवश्य होना चाहिये। प्राण वह वायवीय शक्ति है जो समस्त ब्रम्हाण्ड में व्याप्त है। वह सजीव या निर्जीव सभी वस्तुओं में समाविष्ट है। अधिकतम जड़ पदार्थ पत्थरों से लेकर वनस्पति, जीव-जन्तुओं, प्राणी या चेतना का उच्चतम विकसित रूप मानव शरीर भी इस प्राण तत्व से अपना अस्तित्व रख पाता है। श्वास के द्वारा ग्रहण की जाने वाल वायु के माध्यम से यह प्राण तत्व जो की उसे ली जाने वाली श्वसन वायु से भी अत्याधिक सूक्ष्म है तथा एक ऐसी मूलशक्ति है जो समस्त बराबर जगत में व्याप्त रहती है। इस शक्ति का मानवीय चेतना के माध्यम से समन्वयन करते हुऐ अपने नियंत्रण में लेना प्राणों को विस्तार (आयाम) देकर किया जा सकता है।

यहाँ आयाम का अर्थ है विस्तार देना या साधना। अर्थात प्राणायाम प्रक्रियाओं की वह श्रृखला है जिसका उद्देश्य शरीर की प्राण-शक्ति को उत्प्रेरणा देना , बढ़ाना तथा उसे विशेष अभिप्राय से विशिष्ट क्षेत्रों से संचालित करना है। प्राणायाम की साधना का अन्तिम उद्देश्य सम्पूर्ण शरीर में प्रवाहित ''प्राण'' को नियंत्रित करना भी है। प्राणायाम केवल आक्सीजन प्रदान करने वाला व्यायाम मात्र नहीं है यह सूक्ष्म रूप से प्राण के प्रवाह पर भी प्रभाव डालता है। परिणामतः नाड़ियों का शुद्धिकरण होता है तथा भौतिक और मानसिक स्थिरता प्राप्त होती है। इस प्रकार हठयोग साध्ना का स्त्रोत प्राणायाम (कुम्भक) के द्वारा श्वास पर नियंत्रण तथा नियंत्रित श्वास द्वारा प्राण पर नियंत्रण प्राप्त होना है तथा प्राण पर नियंत्रण होने से मन पर अधिकार प्राप्त किया जा सकता है। मन पर नियंत्रण हो जानेपर साधक चित्त पर उठनेवाली वृत्तियों को अपनी इच्छा अनुसार नियंत्रिण एवं निर्देशित कर सकता है एवं उनका विरोध भी कर सकता है। यही हठयोग साधना द्वारा राजयोग की प्राप्ति है।

हठयोग साधना के अंग

हठयोग साधना मानवीय जीवन को सहज और नैसर्गिक-प्राकृतिक वातावरण के अनुकूल सहयोजित करने का शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक प्रयोग है।

शरीर की शुद्धि के लिए सात साधन हठयोग ग्रंथों में बतलाये जाते हैं ये साधन निम्नलिखित तालिका क्र. 1 के अनुसार हैं –

क्र.	**हठयोग के सप्तसाधन**	**साधना के अंग**
1.	शोधन	षटकर्म
2.	दृढ़ता	आसन
3.	स्थैर्य	मुद्रा एवं बन्ध
4.	धैर्य	प्रत्याहार
5.	लाधव	प्राणायाम
6.	प्रत्यक्ष	ध्यान

7. निर्लिप्त समाधि

उपरोक्त हठयोग के सप्त साधनों को प्राप्त करने हेतु हठयोग साधना के सात अंग निम्नलिखित प्रकार से हैं-

(1) षटकर्म (शोधन) - मनुष्य का शारीरिक स्वास्थ्य प्रकृति के अनुरूप जीवन चर्या पर आधारित होता है। उत्तम स्वास्थ्य प्रकृति के साथ ही प्राप्त हो सकता है। मूल प्रकृति के त्रिगुणात्मक होने से प्राणिमात्र के शरीर भी वात , पित्त और कफ इन त्रिधातुओं के नाना प्रकार के रूपान्तरों के सम्मिश्रण हैं। आयुर्वेद दर्शन भी इन तीनों के सन्तुलन की स्थिति को स्वास्थ्य मानता है।

समदोषः समाग्निश्च समधातु मलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते।।

अर्थात् जब वात , पित्त और कफ सन्तुलित हों , शरीरगत अग्नि सम हों , सप्त धातु और मल निष्कासन क्रिया सम अवस्था में हों तथा पांचो ज्ञानेन्द्रियां मन और आत्मा प्रसन्न हों तब ही मनुष्य स्वस्थ कहलाता है। कुछ शरीर वातप्रधान, कुछ पित्तप्रधान और कुछ कफप्रधान होते हैं। वातप्रधान शरीरों में आहार-विहार के दोष से तथा देश-कालादि हेतु से प्रायः वातवृद्धि हो जाती है। पित्तप्रधान शरीरों में पित्त विकृति और कफप्रधान शरीरों में प्रायः कफ-प्रकोप हो जाता है जिससे दूषित श्लेष्मा, आमवृद्धि या मेद का संग्रह हो जाता है। जबकि शरीर में वात , पित्त और कफ क्रमशः 4: 2: 1 के अनुपात में हो तभी सम अवस्था मानी जाती है।

उपरोक्त अनुपात में जब असन्तुलन होता है तब शरीर में विकास उत्पन्न हो जाता है। इन विकारों के लिए तथा देह को पूर्ववत् स्वस्थ बनाने के लिए जैसे आर्युवेद में स्नेहन , स्वेदन के अतिरिक्त वमन, विरेचन, वस्ति, नस्य और अनुवासन ये पंचकर्म बताये गये हैं ठीक उसी प्रकार इन आयुर्वेद के पंचकर्मो से मृदु तकनीकों के साथ हठयोग में षटकर्म शरीर के शोधन हेतु बतलाये गये हैं। यह षटकर्म निम्नलिखित हैं:-

(1) धौती (	4) नौली
(2) वस्ति (	5) त्राटक
(3) नेति (	6) कपालभाति

षटकर्म की इन क्रियाओं द्वारा विभिन्न प्रकार के कफ , वात और पित्त-जनित दोषों को कण्ठ , प्लीहा, फेफड़े तथा उदर आदि के आन्तरिक विकारों को दूर कर शरीर को पूर्ण रूप से निरोग रखा जा सकता है इस शरीर शोधन से शरीर को निरोग एवं सभी नस नाड़ियों को मलरहित रखा जा सकता है। इस शरीर शोधन से शरीर को निरोग एवं सभी नस नाड़ियों को मलरहित रखा जा सकता है। इस प्रकार षटकर्मो की उपयोगिता न केवल शरीर शोधन में बल्कि शोधित शरीर द्वारा योगाभ्यास से हठयोग के लक्ष्य कुण्डलिनीजागरण तथा षट्चक्रभेदन कर हं और ठं का समरसीकरण (एकत्व) को सिद्ध करना भी है। उपरोक्त सभी षटकर्मो का विशद अध्ययन आप आगामी इकाईयों में करेंगे।

2. **आसन (दृढ़ता) -** हठयोग साधना का द्वितीय साधन आसन है। मन और शरीर को पुष्ट , दृढ़ और आरोग्य प्रदान करने की विशेष शारीरिक स्थितियॉं आसन कहलाती है। गोरक्षनाथ जी ने आसन को स्वरूप चेतन आत्मा में स्थित हो जाना कहा है। मत्सयेन्द्रनाथ जी ने संतोष को आसन कहा है। इसका अर्थ यह है कि शरीर को जो स्थिति साधना के लिए साधक को सन्तुष्ट करती हो वही आसन है। महर्षि पंतजलि आसन को स्थित एवं सुख की स्थिर मानते हैं। महर्षि घेरण्ड आसनों को शरीर की दृढ़ता से सम्बन्ध बतलाते हैं। योगीगोरखनाथ जीविता को आत्मा से और मूवता को जड़ शरीर के अर्थ में शरीर को वश में रखने का साधन मानते हैं आसनों केअभ्यास से शरीर में स्वैर्य आरोग्य और अंगस्फूर्ति की प्राप्ति होती है।

योग आसनों के नियमित अभ्यास से शरीर पर पूर्ण नियंत्रण स्थापित किया जा सकता है तथा शरीर के अंग प्रत्यंग के क्रियाशील होने से आरोग्यता बढ़ती है। आसनों से मांसपेशियों के तन्तु और सेल सक्रिय होते हैं, जिससे उनकी ग्रहणशीलता मे वृद्धि होती है, तथा जठराग्नि प्रदीप्त होने से पाचन क्रिया भी तेज होती है जिससे शरीर की अनावश्यक चर्बी कम होती है तथा मोटापा दूर होता है। रीढ़ की हड्डी जो पूरे शरीर का आधार तथा जिससे होकर सुषुम्ना का प्रवाह है वह योगासन से सीधे प्रभावित होती है। शरीर की हड्डियों को लचीला तथा स्वस्थ करने में आसनों की महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। आसनों के नियमित अभ्यास से रीढ़ की हड्डी से होने वाले दुष्प्रभाव जेसे कूबड़ निकलना, लकवा ग्रस्त होना, स्लिप डिस्क, आर्थराइटिस, स्पोंडला, इटिस, कम्पन आदि रोगो से बचा जा सकता है। आसनों से शरीर में स्थित विभिन्नअतःस्रावी ग्रंथियॉं जैसे- पीयूष-ग्रन्थि, पीनियल ग्रन्थि, चुल्लिका ग्रन्थि, थाइमस और यौन ग्रन्थि आदि सक्रिय होती है जो इन ग्रन्थियों से होने वाले हार्मोन आदि के स्राव को नियंत्रित रखती है जिनका प्रभाव शारीरिक व मानसिक स्थिति पर पड़ता है। योग आसनों के प्रकार या तरीकों में मतभिन्नता देखी जाती है जो कि अनावश्यक है । क्योंकि उपरोक्त विवेचन एवं योग के आदि प्रवर्तक आदिनाथ भगवान शिव ने जीव जगत की चैरासी लाख योनियों के अनुसार आसनों की संख्या भी चोरासी लाख बतायी है। जीवन अपनी जीवन यात्रा में इन चैरासी लाख योनियों में भटकता हुआ अन्त में मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। चूंकि चैरासी लाख की संख्या बहुत ही अधिक है अतः चैरासी प्रमुख आसनों का उल्लेख मिलता है। इन चैरासी प्रमुख आसनों में भी बत्तीस आसन प्रमुख हैं। जिनका वर्णन घेरण्ड संहिता में मिलता है। हठ्प्रदीपिका में आसनों की संख्या और कम कर दी गई है तथा पन्द्रह

आसनों को हि प्रमुखतः दी गई है। हठ्प्रदीपिका के ये पन्द्रह आसन निम्नलिखित हैः-सिद्धासन, पद्यमासन, स्वास्तिकासन, शवासन, धर्नुआसन, मयूर आसन , पश्चिमोत्तान आसन , मत्सयेन्द्रासन, गोमुखासन, सिंहासन, भद्रासन, वीरासन, कुकुटासन, कुर्मासन, उत्तानकूर्मासन।

इन आसनों का निरंतर सम्यक् अभ्यास मृत्युलोक में सिद्धि प्रदान करने वाला है। अतः शुद्ध शरीर से मन को आकाश में रखकर आसनों का ऋतु एवं कालानुरूप अभ्यास करना चाहिये।

(3) **मुद्रा एवं बन्ध (स्थैर्य) -** हठ्योग की साधना के लिये पूर्व वर्णित जो सात साधन बतलाये गये हैं उनमें मुद्रा एवं बन्ध तीसरे स्थान पर आते हैं । शरीर की वह विशिष्ट क्रिया जिससे शरीर के

किसी अवयव विशेष को स्थिति विशेष में रखा जाता है , मुद्रा कहलाती है। यह शरीर को स्वस्थ रखने के साथ-साथ आत्मिक बल में भी वृद्धि करता है , जो चित्त को एकाग्र करने तथा कुण्डलिनी शक्ति के जागरण में भी सहायक है। मुद्राओं के अभ्यास से इन्द्रियॉ वाह्यय्रर जगत् से सम्बन्ध विच्छेद कर अन्र्तगमुखी होकर प्रत्याहार की स्थिति निर्मित करती है। यद्यपि मुद्राओं का उद्देश्य आध्यात्मिक है तथापि मानसिक एवं शरीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से भी इनका उपयोग नकारा नहीं जा सकता है। हठ्योग के ग्रन्थों में मुद्रा और बन्ध का संयुक्त विवरण एक साथ प्राप्त होता है। बन्ध का शाब्दिक अर्थ है बाँधना अर्थात शरीर के अंग विशेष को धीरे-धीरे शक्तिपूर्वक संकुचित कर बांधना ही बन्ध है। यह अन्तः शारीरिक प्रक्रिया है। इसके द्वारा शरीर के विभिन्न अंगो तथा नाड़ियों को नियंत्रित किया जा सकता है। विभिन्न ग्रंथो में वर्णित मुद्रा एव बंधो के नाम एवं संख्या निम्नलिखित तालिका क्र.2 द्वारा वर्णित है।

क्र.	**ग्रंथ का नाम**	**मुद्रा एवं बन्धों के नाम**
1	शिवसंहिता विपरीतकरणी	महामुद्रा, महाबन्ध, महावेध, खेचरीमुद्रा, जालंधरबन्ध मुद्रा, उड्डियानबन्ध बज्रोलीमुद्रा, शक्तिचालनी मुद्रा, योनिमुद्रा।
2	हठप्रदीपिका	महामुद्रा, महाबन्ध, महावेध, खेचरी, मूलबन्ध, उड्डियानबन्ध, जालन्धरबन्ध, विपरीतकरणी, बज्रोली, शक्तिचालनी।
3	घेरण्ड संहिता	(1) चारबन्ध: मूलबन्ध , उड्डियानबन्ध, जालंधरबन्ध, महाबन्ध। (2) पाँच धारणाएँ: अधोधारणा , आम्भासीधारण। वैश्वानरीधारणा, वायवीधारणा, नभोधारणा। (3) मुद्रायें: महामुद्रा , नभोमुद्रा, महावेधमुद्रा, खेचरीमुद्रा, विपरीतकरणीमुद्रा, योनिमुद्रा, वज्रोलीमुद्रा, शक्तिचालनीमुद्रा, ताडागीमुद्रा, माण्डुकीमुद्रा, शाम्भवीमुद्रा, अविश्वनीमुद्रा, पाशिनीमुद्रा, काकीमुद्रा, मातंगी मुद्रा, भुजंगीमुद्रा।
4	अष्टांग योग	खेचरी मुद्रा , भूचरी मुद्रा , चाँचरीमुद्रा, अगोचरीमुद्रा, उन्मनी मुद्रा।

(4) **प्रत्याहार (धैर्य):-** हठ्योग की साधना के लिए चैथा साधन प्रत्याहार है। मन की बहिर्मुखी वृत्ति को अन्तर्मुखी करने के साधन को प्रत्याहार कहते हैं। मनुष्य के बन्धन और मोक्ष का कारण मन ही है। मन की स्थिति हमेशा एक जैसी नहीं रहती वरन् देशकाल और परिस्थिति तथा व्यक्ति की प्रकृति का प्रभाव भी मन की स्थिति पर पड़ता है। योगसाधना के अंगो के अभ्यास से मन की स्थिति को साध कर उच्च स्थिति में ले जाया जा सकता है। इन्द्रियों को नियंत्रित कर शांत मन से

चित्त की प्रशांत अवस्था में स्व की स्थिति सभी सिद्धियों की दात्री है। मन को नियंत्रित करने हेतु मन की अवस्थाओं का ज्ञान होना भी आवश्यक है। मन की पाँच विभिन्न अवस्थाएँ इस प्रकार है-

(i) मूढ़ावस्था - यह मन की वह स्थिति है जब शरीर में तमोगुण प्रधान होता है जिससे मनोकायिक रूप से व्यक्ति आलस्य , प्रमाद, निद्रा आदि के प्रभाव में रहता है जिसका प्रभाव मन की क्रियाशीलता पर पड़ता है। इस अवस्था में व्यक्ति की सोचने-समझने एवं निर्णय लेने की शक्ति नहीं के बराबर होती है।

(ii) क्षिप्तावस्था - यह मन की वह स्थिति है जो तमोगुण , रजोगुण एवं सत्वगुण के मध्य रहती है। इस स्थिति में व्यक्ति का मन कभी शान्त एवं स्थिर रहता है तो कभी अशान्त एवं अस्थिर हो जाता है।

(iii) विक्षिप्तावस्था - यह मन की वह स्थिति है जो तमोगुण, रजोगुण एवं सत्वगुण के मध्य रहती है। मन आकस्मिक रूप से स्थिर हुआ करता देवत्व सम्पन्न व्यक्ति इसके उदाहरण है।

(iv) एकाग्रताः- यह मन की वह स्थिति है जो सत्वगुण प्रधान होती है। इस स्थिति में मन एकाग्र एवं शान्त रहता है। व्यक्ति प्रबल धार्मिक बनता है और मानसिक चेतना सक्रिय होकर अर्न्तशमुखी होती है।

(v) निरूद्धताः- यह मन की वह स्थिति है जिसमें मन की वृत्तियों का निरोध हो जाता है। मन एवं प्राण शान्त एवं सौम्य हो जाता है। योग साधना की उच्चतम स्थिति ही निरूद्धता है । काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद एवं मत्सर यह छः विकार मन की चंचलता के प्रमुख कारण हैं। यदि मन को इनकी ओर से निरूद्ध कर दिया जाए तो फिर ऐसा कारण नहीं जो मन की निश्चलता में बाधा उत्पन्न कर सकें । जब इन्द्रियां अपने विषयों से सम्बन्ध रखती है तब मन स्थिर हो चित्त के स्वरूपाकार या तदाकार हो जाती है यही प्रत्याहार है।

इन्द्रियाँ सदैव अपने-अपने विषयों में लीन होने के लिए तत्पर रहती है। जिस इन्द्रिय का जो विषय है उसका उस विषय में तदाकार हो जाना स्वाभाविक है। परन्तु उस इन्द्रिय के स्वभाव को नियंत्रित करके उसे उसके विषय में लीन न होने देना और ध्येय के आकार में उसे विलीन कर देना ही प्रत्याहार का स्वरूप है । मन (चित्त) पर नियंत्रण के दो उपाय योग वशिष्ट में बताये गये है। यह उपाय निम्नांकित है-

(1) योग

(2) ज्ञान

इन्द्रियों का अपने विषयों से रहित हो जाना ही इन्द्रियों को जीतना है। यह तभी सम्भव है जब चित्त एकाग्र हो जाता है और चित्त के निरोध होने पर इन्द्रियों का भी निरोध हो जाता है। यही इन्द्रियों का निग्रह योग की परम आवश्यकता है। प्रत्याहार की स्थिति में साधक का अपनी इन्द्रियों पर पूर्ण नियंत्रण

रहता है तथा मन पवित्र होता है। प्रत्याहार एक मानसिक क्रिया है तथा ध्यान की प्रारम्भिक अवस्था है। मन की उपर्युक्त पांच अवस्थायें योग (हठयोग) साधना में सफलता के क्रमिक विकास की अवस्थायें हैं यह वह अवस्था है जो साधक के चित्त की चंचल वृत्तियों को जो बर्हिमुखी थी अन्र्तकमुखी करने की ओर प्रेरित करती है। हठ्योग साधना में षट्कर्म , आसन, मुद्रा से शरीर को मल रहित , व्याधि रहित करके शक्ति संम्पन्न किया जाता है। इस प्रकार शरीर को व्यवस्थित करके प्रत्याहार द्वारा इंन्द्रियों और मन को संयमित किया जाता है जिससे साधक प्राणायाम् ध्यान और समाधि की ओर अग्रसर हो सके।

विविध हठयोग ग्रंथो में प्रणायाम के प्रकार निम्नलिखित तालिका क्र.3 के अनुसार दिये गये हैं-

क्र.	ग्रंथ का नाम	प्रत्याहार
1	शिवसंहिता	(1) भोगरूप विघ्नों से , (2) ज्ञानरूप विघ्नों से , (3) धर्मरूप विघ्नों से प्रत्याहार।
2	घेरण्ड संहिता	(1) चक्षुरिन्द्रिय का (2) श्रवणेन्द्रिय का (3) त्वगिन्द्रियका (4) ध्राणेन्द्रिय का (5) रसनेन्द्रिय आदि तन्मात्राओं का प्रत्याहार।
3	अष्टांग योग	(1) रूप (2) रस (3) गंध (4) स्पर्श (5) शब्द इन तन्मात्राओं से इन्द्रियों को लौटाना।

5. प्राणायाम (लाधव):- श्वास-प्रश्वास की स्वाभाविक गति को रोककर शास्त्रीय विधि से श्वसन की क्रिया प्राणायाम कहलाती है। प्राणायाम के अर्थ से हठयोग साधन के स्वरूप इकाई 1 में हम परिचित हो चुके हैं। प्राणायाम प्राण + आयाम अर्थात प्राण का आयाम अथवा विस्तार से है। प्राणयाम वह क्रिया है जिसमें प्राणिक ऊर्जा का शरीर में अधिक से अधिक विस्तार हो सके। प्राण वायु का सूक्ष्म रूप है। जो सूक्ष्म तथा स्थूल शरीर के बीच सम्बन्ध स्थापित करता है। प्राण ही मन और आत्मा के बीच सम्बन्ध स्थापित करता है। मन स्थूल शरीर का अंग है तो आत्मा सूक्ष्म शरीर का जब प्राण शरीर से अलग हो जाता है तब सूक्ष्म शरीर (आत्मा) भी शरीर से अलग हो जाती है और जीव की मृत्यु हो जाती है। प्राणशक्ति ही शरीर की सभी प्रकार की क्रियाओं का संचालन करती है। शरीर के अन्दर अलग-अलग स्थान एवं कार्य की दृष्टि से यही विभिन्न नामों से जाना जाता है जिन्हें पंच प्राण कहते हैं। इनके अलावा भी उपप्राणों में इनका वर्गीकरण किया गया है। विभिन्न हठयोग के ग्रंथो में इनका स्वरूप निम्नलिखित तालिका क्र.-4 के अनुरूप है –

क्र. सं.	ग्रंथ का नाम	प्राणायाम
1	हठप्रदीपिका	(1) सूर्यभेदन (2) उज्जायी (3) सीत्कारी (4) शीतली (5) भस्त्रिका (6) भ्रामरी (7) मूर्च्छा (8) प्लाविनी।
2	घेरण्ड संहिता	1) सहित (2) सगर्भ (बीज मंत्र से) (3) निगर्भ (बिना मंत्र के) (4) सूर्य भेदन (5) उज्जायी (6) शीतली (7) भस्त्रिका (8) भ्रामरी (9)मूर्छा (10) केवली।
3	अष्टांग योग	(1) सूर्य भेदन (2) उज्जायी (3) सीत्कारी (4) शीतली (5) भस्त्रिका (6) भ्रामरी (7) मूर्छा (8) केवली।

(6) ध्यान (प्रत्यक्ष) - हठयोग-साधना का छठाँ साधन ध्यान है। ध्येय विषय पर चित्त की प्रवृति को एकाग्र करके मन का निर्विषय होना ध्यान है। ध्यान की स्थिति में ध्याता , ध्यान और ध्येय रूपी त्रिकुटी के सिवाय और कुछ नहीं रहता। मनुष्य के मन का एक छोटा सा भाग ही सक्रिय है। यदि मानव मन के अधिकतम भाग को सक्रिय और चैतन्य बना दिया जाय तो मानव समाज अपनी सभ्यता और संस्कृति के सर्वोच्च शिखर पर प्रतिष्ठित हो सकता है। ध्यान की विभिन्न क्रियायें मानव को समग्र रूप से सक्रिय और चैतन्य बनाने में सहायक है। सामान्य रूप से मनुष्य के मन के तीन भाग हैं-

(1) चेतन मन

(2) अवचेतन मन

(3) अचेतन मन

(i) चेतन मन - मन का जो भाग चेतन, सजग और सक्रिय प्रतीत होता है उसे ही हम चेतन मन कहते हैं। चेतन मन सम्पूर्ण मन का एक छोटा सा हिस्सा है कि जिसकी शक्ति और सीमा शेष हिस्से की तुलना में बहुत कम है।

(ii) अवचेतनमन - मन का वह हिस्सा जो पूरी तरह से चेतन , सजग व सक्रिय तो नहीं रहता परन्तु प्रयास करने पर कुछ-कुछ सजग और सक्रिय हो सकता है अवचेतन कहा जाता है। हमारी स्मृति का सम्बन्ध इस अवचेतन मन से ही है।

(iii) अचेतन-मन - मन का यह हिस्सा प्रसुप्त और निष्क्रिय सा रहता है । यह मन का सबसे विराट भाग है। प्रयास करने पर भी उसके संचित रहस्य चेतन मन पर नहीं उभरते। चेतन मन और अवचेतन मन के आधार रूप में यह हिस्सा व्यक्ति के समग्र अस्तित्व के तल में निष्क्रिय सा रहते हुये भी सक्रिय रहता है पर इसकी सक्रियता का कोई आभास तक नहीं मिलता। पूर्व जन्म के संस्कार इसी अचेतन मन से जुड़े रहते हैं जो यदा-कदा अनजाने में परिचालित होते रहते हैं।

योग साधना के द्वारा जब मन का अवचेतन तथा अचेतन भाग विभिन्न यौगिक क्रियाओं के द्वारा सजग, सक्रिय एवं चैतन्य होता है तब वह स्थिति अवचेतन मन कहलाती है और इस स्थिति में साधक के लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं होता है। मन की वह स्थति निर्विषय होते हुये भी चैतन्य रहती है। सांख्य सूत्र ने भी ध्यान के सम्बन्ध में कहा है कि-

''ध्यानं निर्विषयं मनः'' अर्थात् चेतना का ध्येय के अतिरिक्त किसी अन्य विषय-वस्तु से रहित होना ही ध्यान है। मन का निर्विचार होना साथ ही चैतन्य रहना ध्यान है।

सामान्य रूप से हमारे मन में अनचाहे विचारों की तरंगे सतत् चलती रहती है जिनकी आवृत्ति और वेग बदलते रहने से हमारी मनः स्थिति ही नहीं शरीर की आन्तरिक संरचना में होने वाली प्रक्रियाये भी अव्यवस्थित होती हैं। मन की तरंगो का रूप, रंग, आवृत्ति, वेग, और धनत्व प्रतिक्षण परिवर्तित होता रहता है जिसके कारण मनुष्य का व्यक्तित्व अव्यस्थित और असंतुलित होता है जिसका प्रभाव मन और शरीर पर विभिन्न रोगो के माध्यम से दिखाई भी पड़ता है। इसलिये शारीरिक स्वास्थ्य के लिये मन का सन्तुलित, एवं एकाग्र होना आवश्यक है जो ध्यान से ही सम्भव हैं। हमारी मानसिक चेतना के विविध आयाम हैं। योग साधना से चेतना को स्वतः नैसर्गिक विकास के क्रम से उच्च स्तर पर प्रतिष्ठित किया जा सकता है। योग साधना में चेतना के विविध आयाम इस प्रकार हैं-

(i) जागृतावस्था - चेतना की यह सामान्य स्थिति है जिसमें हमें जीव एवं जगत् का बोध होता है। इस स्थिति में शारीरिक एवं मानसिक सक्रियता के बावजूद सजगता और चेतनता का स्तर हर व्यक्ति में उसकी प्रकृति के अनुसार भिन्न-भिन्न होता है।

(ii) स्वप्नावस्था - चेतना की यह स्थिति जिसमें शरीर तो निश्चेष्ट सा पड़ा रहता है परन्तु शरीर की आन्तरिक सभी क्रियाएँ स्वाभाविक पर धीमी गति से चलती रहती है। इस स्थिति के जहां चेतन मन का नियंत्रण समाप्त सा हो जाता है वहीं अवचेतन और अचेतन मन में प्रछन्न रूप से वहीं इच्छायें, आकांक्षायें और वासनायें स्वप्न के रूप में सक्रिय हो जाती है।

(iii) सुषुप्ति अवस्था - स्वप्न रहित निद्रा ही सुषुप्ति अवस्था है। इस स्थिति में चेतनाकाविस्तार अन्य दोनों अवस्थाओं से ज्यादा होता है। सुषुप्ति अवस्था में हमारी चेतना का एक सूक्ष्म अंश प्रछन्न रूप से साक्षी भाव के रूप में उपस्थित रहता है। इसी से जागने पर हमें पता चलता है कि हम गहरी नींद में सोये थे।

(iv) तुरीयावस्था - यह चेतना की सबसे महत्वपूर्ण स्थिति है। चेतना का जो अंश अत्यन्त सूक्ष्म और प्रछन्न रूप से साक्षी भाव के रूप में जाग्रत , स्वप्न और सुषुप्ति की अवस्था में रहता है वह तुरीयावस्था में वराट् बन जाता है। ध्यान की स्थिति इसी अवस्था को प्राप्त करने का चरम पुरूषार्थ है। यह अवस्था चित्त की वृत्ति को एकाग्र व लययुक्त बनाती है। महर्षि पंतजलि ने भी योग-सूत्र में ध्यान के स्वरूप के सम्बन्ध में बताया है कि-

तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् अर्थात् जहाँ चित्त ठहराया जाय उस स्थान पर वृत्ति का एक सा बना रहना ही ध्यान है। मुख्य रूप से ध्यान के तीन प्रकार हैं-

(1) स्थूल ध्यान

(2) ज्योति ध्यान

(3) सूक्ष्म ध्यान

(1) स्थूल ध्यान - वह ध्यान जिसमें मूर्तिमय इष्टदेव का ध्यान किया जाता है , दृश्य अथवा अदृश्य पदार्थो की ज्ञान प्राप्ति के लिये जो ध्यान जाता है , वही स्थूल ध्यान है। जैसे- राम , कृष्ण, शिव अन्यान्य देवी-देवता आदि अथवा किसी इष्टदेव या गुरू आदि को आन्तरिक चक्षुओ से देखने का अभ्यास करना । यह ध्यान प्रायः सभी प्रकार के साधनों के लिये सुगम होता है। नये साधकों के लिये तो यह सबसे उपयुक्त विधि है क्योंकि आरम्भ में ध्यान का अभ्यास करने के लिये किसी प्रकार की आकृति अथवा वस्तु आवश्यक है।

(i) स्थूल ध्यान की विधि - ध्यान के किसी आसन में बैठकर नेत्रों को बन्द करके हृदय में, नासिका के अग्र भाग में अथवा दोनों भौहों के मध्य में दृष्टि को स्थित करें और अपने इष्टदेव की मूर्ति के रूप का ध्यान करें, मूर्ति की नखशिख पर्यन्त आकृति, धारण किये वस्त्र, माला, रत्न, आभूषण, किरीट, कुण्डल एवं विराजमान होने के सिंहासन अथवा मूर्ति के चारों ओर रखी हुई साज सामग्री आदि का भी ध्यान करना चाहिये जिससे धीरे- धीरे उस मूर्ति-विशेष पर मन एकाग्र होने लगेगा। किसी ध्येय विषय पर मन का तन्मय हो जाना ही ध्यान है।

(ii) साकार उपासकों के लिये शेषनाग रूपी शय्या पर शान्त आकार से शयन करते हुये भगवान विष्णु केसगुण ध्यान को शान्ताकारं भुजगशयनम् इत्यादि मंत्र के जप तथा आकृति को अन्तः चक्षुओं से देखने का अभ्यास करें। धीरे-धीरे अभ्यास से मन की बाह्य वृत्तियॉ एकाग्र होकर अन्तः मुख हो जायेगी। इससे मन की चंचलता समाप्त होकर मन शान्त एवं स्थित हो जायेगा।

किसी साकार रूप का ध्यान करना ही स्थूल ध्यान है और यह ध्यान ही परिपक्व होकर साधक को ज्योर्तिमय ध्यान और सूक्ष्म ध्यान के योग्य बनाता है।

(2) ज्योतिर्ध्याधन तेजोमय ज्योति रूप ब्रम्हा का ध्यान ही ज्योतिर्ध्यावन कहलाता है। घेरण्ड संहिता में इसका विवेचन ''मूलाधारे कुण्डलिनी भुजंगाकाररूपिणी'' इत्यादि से किया गया है। इसके अनुसार मूलाधार में सर्पाकार से कुण्डलिनी शक्ति रहती है , वहीं दीपकलिका के आकार में जीवात्मा की विद्यमानता है। इसके अतिरिक्त भौहों के मध्य और मन के उर्ध्व भाग में जो प्रणवात्मक ज्योति है उसका ध्यान ही तेजोध्यान है। श्वेताश्वतरोपनिषद् में ज्योति ध्यान के सम्बन्ध में बताया गया है कि हृद्य में अर्न्तनयोगी रूप से अंगुष्ठ परिमाण वाली ज्योति विद्यमान रहती है। पवित्र मन एवं हृदय वाले साधक ध्यान के माध्यम से उसकी अनुभूति कर सकता है। इस प्रकार आत्मा का ध्यान ही ज्योतिर्ध्यायन है। स्थूल ध्यान के परिपक्व होने पर ही ज्योतिर्ध्यामन का अभ्यास करना चाहिये।

(3) सूक्ष्मध्यान - बिन्दुमय ब्रह्यकुण्डलिनी शक्ति का ध्यान ही सूक्ष्म ध्यान कहलाता है। सूक्ष्म ध्यान के सम्बन्ध में महर्षि घेरण्ड ने कहा है कि कुण्डलिनी शक्ति आत्मा के साथ संयुक्त होकर नेत्र

रन्ध्रों से निकलती और उर्ध्व भाग में स्थित राजमार्ग में विचरण करती है , परन्तु वह अपने सूक्ष्मत्व और चंचलत्व के कारण दिखाई नहीं देती। इसीलिये कुण्डलिनी शक्ति का ध्यान शाम्भवी मुद्रा के साथ करना चाहिये। सूक्ष्म ध्यान के अभ्यास के लिये शरीर में स्थित षट्चक्रों और सहस्रार पर क्रमशः ध्यान का अभ्यास करना चाहिये।

कुण्डलिनी शक्ति नाभिकन्द के उर्ध्वा भाग में साढ़े तीन कुण्डल मारे हुये सुप्तावस्था में रहती है। इससे सुषुम्ना नाड़ी का मार्ग बन्द रहता है। योग-साधना से जब कुण्डलिनी-शक्ति जाग्रत होती है तो वह सुषुम्ना के मार्ग से सुई के समान षट्चक्र भेदन करती हुई सहस्रार रूपी शिव के साथ सामंजस्य प्राप्त करती है। हमारे शरीर में षट्चक्रों की स्थिति इस प्रकार है-

1. **मूलाधारचक्र -** स्थूल शरीर में गुदा की स्थिति गानाड्स ग्रन्थि में ही सूक्ष्म शरीर में चार दल वाले मूलाधार चक्र की स्थिति है। अग्नि के समान रक्त वर्ण वाला यह बीजाक्षर ल से युक्त त्रिकोणाकार है। इसके अधिष्ठाता ब्रम्हा हैं। ये मूलाधारचक्र निम्न चित्र द्वारा स्पष्ट किया गया है-

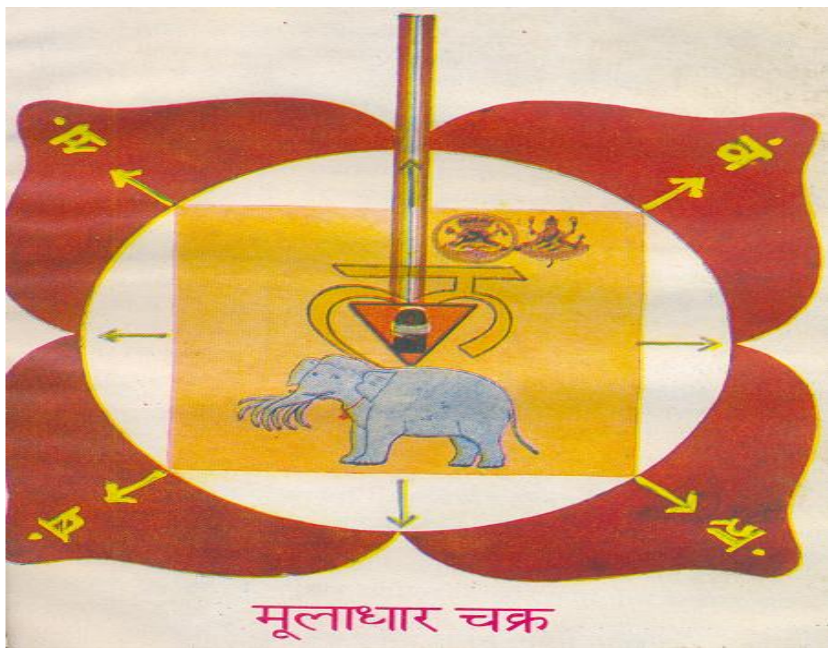

2. **स्वाधिष्ठान चक्र -** स्थूल शरीर में लिंग अथवा योनि के मूल में स्थित प्रोस्टेट ग्रन्थि में ही सूक्ष्म शरीर में छः दल वाले स्वाधिष्ठान चक्र की स्थिति है। यह सूर्य के प्रकार की तरह सिन्दूर वर्ण तथा बीजाक्षर वं से युक्त अंकुर के समान है। इसके अधिष्ठाता विष्णु हैं। यह स्वाधिष्ठान चक्र निम्नांकित चित्र द्वारा स्पष्ट किया गया है-

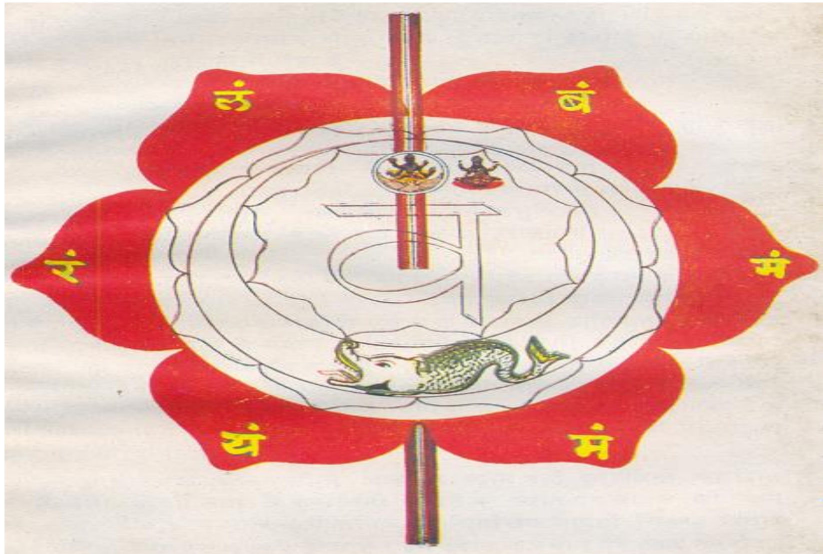

स्वाधिष्ठान चक्र

3. **मणिपूरकचक्र -** स्थूल शरीर में नाभि स्थान में स्थित सुप्रारेनल ग्रन्थि में ही सूक्ष्म शरीर में दश दल का नील वर्ण तथा बीजाक्षर रं से युक्त मणिपूरक चक्र है । इसके अधिष्ठाता विष्णु है। यह मणिपूरचक्र निम्नांकित चित्र द्वारा स्पष्ट किया गया है-

मणिपूरक चक्र

4. **अनाहतचक्र -** स्थूल शरीर में हृद्य में स्थित थाइमस ग्रन्थि में ही सूक्ष्म शरीर में बारह दल युक्त अनाहत चक्र की स्थिति है। यह चक्र स्वर्ण के समान कान्ति वाला बीजाक्षर मं से युक्त एवं वर्तुलाकार है। इसके अधिष्ठाता शिव हैं। यह अनाहतचक्र निम्न चित्र द्वारा स्पष्ट किया गया है-

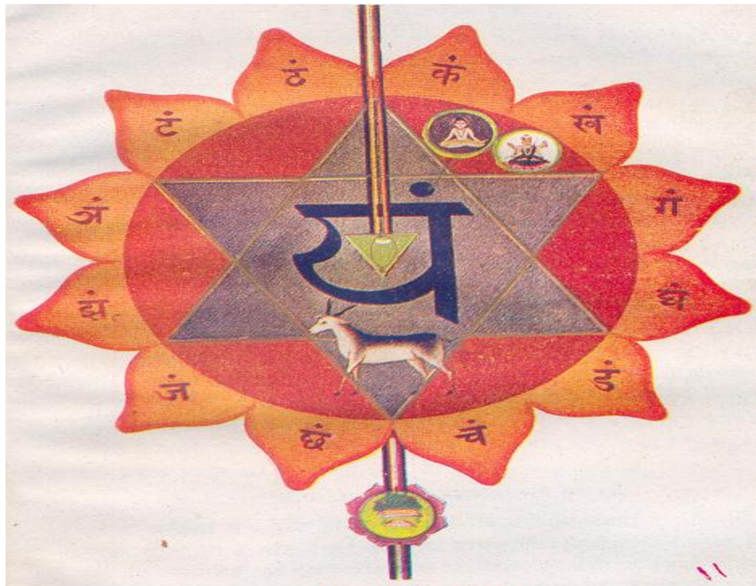

अनाहत चक्र

5. **विशुद्धचक्र -** स्थूल शरीर में कंठ में स्थित थायराइड ग्रन्थि में ही सूक्ष्म शरीर में सोलह दल युक्त विशुद्ध चक्र स्थित है। यह धूमवर्ण का वर्तुलाकार एवं बीजाक्षर हं ये युक्त हैं। इसके अधिष्ठाता रूद्र हैं। यह विशुद्धचक्र निम्नांकित चित्र द्वारा स्पष्ट किया गया है-

विशुद्ध चक्र

6. **आज्ञाचक्र**- स्थूल शरीर में दोनों भौहो के मध्य पीनियल ग्रन्थि में ही सूक्ष्म शरीर में दो दल युक्त श्वेत वर्ण का आज्ञा चक्र स्थित है। इसका बीजाक्षर ऊँ है। इसके अधिष्ठा महेश्वर है। यह आज्ञाचक्र निम्नांकित चित्र द्वारा स्पष्ट किया गया है-

7. **सहस्त्रार -** स्थूल शरीर में मस्तिष्क में पिट्यूटरी ग्रन्थि का स्थान सूक्ष्म शरीर में सहस्रार चक्र का है। यह हजार दल युक्त श्वेत वर्ण का है। इसके अधिष्ठाता श्री गुरू माने जाते हैं। यह सहस्त्रार निम्नांकित चित्र द्वारा स्पष्ट किया गया है-

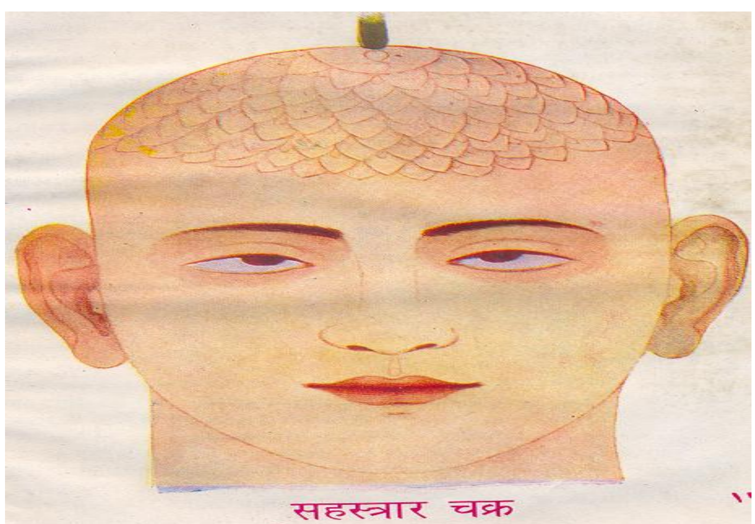

उपर्युक्त छः चक्रों पर क्रमशः ध्यान का अभ्यास करने से कुण्डलिनी जाग्रत होकर षट्चक्र भेदन का अभ्यास सिद्ध होने पर सातवें चक्र सहस्राह का अभ्यास स्वतः सिद्ध होता है। विभिन्न हठ्योग के ग्रंथों में ध्यान के विविध प्रकार बतलाये गये हैं जो निम्नांकित तालिका क्र.- 5 में वर्णित है-

क्र.	**ग्रंथ का नाम**	**ध्यान का प्रकार**
1.	शिव संहिता	1. शून्य का ध्यान
2.	घेरण्ड संहिता	1. स्थूल ध्यान 2. ज्योर्तिध्यान या तेजो ध्यान 3. सूक्ष्म ध्यान
3.	अष्टांग योग	1. पदस्थ ध्यान 2. पिण्डस्थ ध्यान 3. रूपस्थ ध्यान 4. रूपातीत ध्यान

(7) समाधि (र्निलिप्त) - हठयोग साधना का अन्तिम एवं सातवाँ साधन समाधि है। इस स्तर पर जब ध्याता, ध्यान से ध्येय विषय में मिलकर लय हो जाता है तब उस द्वैतभावरहित वृत्ति निरोध की अन्तिम अवस्था को समाधि कहते हैं। समाधि की अवस्था में ध्येय मात्र की प्रतीति होती है और चित्त का अपना रूप शून्य हो जाता है। हठयोग साधना में प्राप्त होने वाली समाधि महाबोध समाधि कहलाती है।

ध्यान की अवस्था में साधक को यह बोध रहता है कि मैं ध्येय का ध्यान कर रहा हुँ किन्तु जब ध्यान करते-करते चित्त ध्येय के रूप में बदलने लगता है और उसमें अपने रूप का अभाव सा हो जाता है तब साधना की वह अवस्था जिसमें ध्येय मात्र की प्रतीति हो समाधि कहलाती है। समाधि की दो अवस्थायें हैं -

(1) सविकल्प समाधि - यह समाधि की प्रारम्भिक अवस्था है। इसमें ध्याता, ध्येय और ध्यान की त्रिकुटी के लय की नियमित काल पर्यन्त चित्त की वृत्तियों की एक तदाकार स्थिति होती है। यद्यपि इस अवस्था में द्वैतभाव रहता है , तथापि अद्वैत भाव की इस प्रकार प्रतीति होती है जैसे मिट्टी से बनी किसी वस्तु में मिट्टी का ही भान हो उसी प्रकार द्वैत में अद्वैत का भान होता है। समाधि की इस अवस्था में किसी न किसी अवलम्बन की आवश्यकता रहती है। इस स्थिति में प्रज्ञा के संस्कार शेष रहते हैं। यह समाधि चित्त की एकाग्र अवस्था में होती है।

(2) निर्विकल्पसमाधि - जब ध्याता , ध्येय और ध्यान भेद की अपेक्षा से रहित चित्त की वृत्तियों की स्थिति एक अद्वितीय ध्येय वस्तु में अत्यन्त ऐक्यभाव से तदाकार रूप में चिर काल पर्यन्त होती है तब निर्विकल्प समाधि होती है। समाधि की इस अवस्था में द्वैत भाव का सर्वथा अभाव रहता है। इस स्थिति में किसी अवलम्बन की भी आवश्यकता नहीं रहती तथा प्रज्ञा के संस्कार भी शेष नहीं रहते। सब वृत्तियां विलीन हो जाती है। यह स्थिति चित्त की निरूद्धावस्था में होती है। यह समाधि दुख की अत्यन्त निवृति ओर आत्यन्तिक सुख की पूर्ण रूप से प्राप्ति कराने वाली है।

समाधि की उपर्युक्त क्रमशः प्रारम्भिक और अन्तिम अवस्थायें हैं। विभिन्न साधनों से समाधि की स्थिति प्राप्त होने से समाधि के भी अनेक प्रकार है-

1. ध्यान-योग-समाधि 2. नाद-योग-समाधि 3. मंत्रयोग-समाधि

4. लययोग-समाधि 5. भक्तियोग-समाधि 6. राजयोग-समाधि।

(1) ध्यानयोग समाधि - यह समाधि की प्रारम्भिक अवस्था है। ध्यान की परिपक्वता के बिना समाधि नहीं हो सकती। इसीलिये इस साधना में मन को ध्येय विशेष पर केन्द्रित कर ध्यान की सिद्धि प्राप्त करनी चाहिये। ध्यान की सिद्धि से मन दोष-रहित होता है जो साधक को पापों से मुक्त करता है। घेरण्ड संहिता में इस सम्बन्ध में बताया है कि-

शाम्भवीं मुद्रिकां कृत्वा आत्मप्रत्यक्षमानयेत्।

बिन्दुब्रह्म सकृद्दृष्टवा मनस्तत्रनियोजयेत्।।

खमध्ये कुरूचात्मानं आत्मध्ये च खं कुरू।

आत्मानं खमयं दृष्टवा न किंचदपि बाध्यते।।

सदानन्दमयो भूत्वा समाधिस्थो भवेन्नरः।

अर्थात शाम्भवी मुद्रा करके प्रथम आत्मा का प्रत्यक्ष करें और बिन्दुमय ब्रह्म का साक्षात्कार करते हुए मन को बिन्दु में लगा दें। तत्पश्चात् मस्तक में विद्यमान ब्रह्मलोकमय आकाश (सहस्रार) के मध्य में आत्मा को ले जायें , जीवात्मा में आकाश (सहस्त्रार) को लय करें और परमात्मा में जीवात्मा का लय करें इससे योगी सदानन्दमय एवं समाधि की स्थिति को प्राप्त करता है।

(2) नादयोगसमाधि - हठ्योग समाधि को ही नादयोग समाधि कहते हैं। मन को शरीर में स्थित अनाहत शब्द से पूरे नाद में लीन कर लेना ही नादयोग समाधि है। मन जब नाद के अक्षर में लीन होता है तब उस स्थिति में निःशब्द समाधि रूप परमपद की प्राप्ति हो जाती है। नादयोग-समाधि के सम्बन्ध में घेरण्ड संहिता में कहा है -

साधनात् खेचरीमुद्रा रसनोध्र्वगतासदा।

तदा समाधि सिद्धिःस्याद् हित्वा साधारण क्रियाम्।।

अर्थात् खेचरी मुद्रा का अभ्यास करते हुये जिह्वा को उध्र्वा की ओर (ब्रह्मरन्ध्र में) स्थित करें। इससे साधारण क्रियाओं के हटने पर जो समाधि सिद्ध होती है , वही नादयोग समाधि है। इस प्रकार हठयोग साधना से प्राप्त हुई समाधि को महाबोध समाधि भी कहते हैं।

(3) मंत्रयोगसमाधि - मन को श्वास-प्रश्वास के साथ लय कर लेना मंत्रयोग समाधि कहलाती है। नित्य प्रति प्रत्येक मनुष्य इक्कीस हजार छः सौ बार श्वास लेता है। श्वास सकार ध्वनि के साथ बाहर निकलती है तथा हकार ध्वनि के साथ अन्दर आती हैं। इस

प्रकार सकार और हकार का क्रम चलते-चलते सोहं और हंस दोनों के ही श्रवण का भान होता है। दोनों में कोई भी भेद नहीं। जो साधक नित्य प्रति इक्कीस हजार छः सौ संख्या में हंस का जाप करता है वह सो हम रूप ही होता है। इस प्रकार मंत्रयोग की माधि को महाभाव समाधि भी कहते हैं। वाल्मीकी के पूर्व जन्म की कथा इसी प्रसंग से जुड़ी है जब नारद मुनि ने रत्नाकर डाकू को राम शब्द का उच्चारण न कर पाने पर उसकी प्रवृति तथा उसके पेशे को देखते हुए मरा का लगातार जप करने की सलाह दी। वही रत्नाकर आगे चलकर मरा-मरा से राम-राम कहने वाला महामुनि वाल्मीकि बना।

(4) **लययोगसमाधि -** नाभि कन्द में कुण्डलिनी सुषुम्णा नाड़ी का मार्ग बन्द करके साढ़े तीन कुण्डल मारे सुप्तावस्था में रहती है। शरीर में स्थित कुण्डलिनी शक्ति का प्रतीत है । यौगिक साधना से कुण्डुलिनी-शक्ति को जाग्रत कर षट्चक्रो का भेदन करते हुये सहस्त्रार में स्थित शिव से उसका लय होना ही लययोग-समाधि का स्वरूप है। घेरण्ड-संहिता में लययोग समाधि के सम्बन्ध में कहा है-

योनिमुद्रां समासाद्य स्वयंशक्तिमयोभवेत्।
सुश्रृंगाररसेनैव बिहरेत् परमात्मनि।।
आनन्दमयः सम्भूय ऐक्यं ब्रह्मणि संभवेत्।
अहं ब्रह्मेति वाद्वैतं समाधिस्तेन जायते।।

अर्थात् योनिमुद्रा का साधन करके योगी स्वयं में शक्ति की भावना और परमात्मा में पुरूष की भावना करे। फिर यह भावना करें कि मुझ में और परमात्मा में शक्ति और पुरूष रूप में बिहार हो रहा है। फिर आनन्दमय ऐक्य स्थापित करता हुआ यह चिन्तन करें कि मैं अद्वैत ब्रह्म हुँ। इससे जो समाधि होती है उसे लय योग समाधि कहते हैं। लययोग से प्राप्त समाधि को महालय समाधि भी कहते हैं।

(5) **भक्तियोगसमाधि -** जब साधक इष्टदेव की भक्ति में अपने चित्त को लगा देता है उस स्थिति में उसे अपने शरीर का भी कोई ज्ञान नहीं रहता। अर्थात् वह बाह्य विषयों से सर्वथा पृथक संज्ञाशून्य हो जाता है। शरीर पुलकित हो जाता है और आनन्द के आँसू बहने लगते हैं। वह स्थिति भक्तियोग समाधि की है। घेरण्ड संहिता में भी इस समाधि के सम्बन्ध में कहा है -

स्वकीय हृदये ध्यायेदिष्टदेव स्वरूपकम्।
चिन्तयेद् भक्तियोगेन परमाह्लाद पूर्वकम्।।
आनन्दाश्रु पुलकेन दशाभावः प्रजायते।
समाधिः सम्भवेत्तेन सम्भवेच्चमनोन्मनि।।

अर्थात् अपने हृदय में परम् आह्लाद सहित भक्तियोग के द्वारा इष्टदेव के स्वरूप का चिन्तन करना चाहिये। इससे आनन्द के आंसू बहने लगते हैं और शरीर पुलकायमान

होता है तथा मन में उन्मनी भाव और एकाग्रता आकर ब्रह्म से साक्षात्कार होता है यह भक्तियोग समाधि कहलाती है।

(6) **राजयोगसमाधि -** मन बड़ा चंचल। यौगिक क्रियाओं से मन की चंचल वृत्तियों पर नियंत्रण स्थापित कर उसे निरूद्ध करके आत्मा में लय करें तथा आत्मा को परमात्मा में लय कर दें। निरूद्ध मन का आत्मा के साथ तथा आत्मा का अखण्ड रूप से परमात्मा के साथ मिलन ही राजयोग समाधि है। घेरण्ड संहिता में इस समाधि का वर्णन इस रूप में मिलता है -

मनोमूर्च्छां समासाद्य मन आत्मनियोजयेत्।
परात्मनः समायोगात् समाधिः समवाप्नुयात्।।

अर्थात् मनोमूर्च्छास कुम्भक करता हुआ साधक मन को एकग्र करके ब्रह्म में लगावें। इस प्रकार परमात्मा के साथ समायोग सम्मिलित होने को राजयोग-समाधि कहते हैं। हठ्योग साधना में समाधि के स्वरूप को विविध हठयोग ग्रंथो में विभिन्न प्रकारों में बतलाया गया है , जो निम्नांकित तालिका क्र.-6 द्वारा वर्णित है-

क्र.	**ग्रंथ का नाम**	**समाधि के प्रकार**
1	शिव संहिता	1. लय समाधि नाद के द्वारा
2	हठ्प्रदीपिका	1. नदान्द संधान द्वारा लय समाधि
3	घेरण्ड संहिता	1. शाम्भवी समाधि 2. भ्रामरी समाधि 3. खेचरी समाधि 4. योनिमुद्रा समाधि (ध्यान , नाद, रसानन्द एवं लय की वाचक) 5. भक्तियोग समाधि 6. मनोमूर्च्छा समाधि
4	अष्टांगयोग	1. भक्ति समाधि 2. योग समाधि 3. ज्ञान समाधि।

3.7 **सारांश**

प्रस्तुत इकाई में हठयोग का परम्परागत वैज्ञानिक एवं ऐतिहासिक स्वरूप नौ नाथ हठयोग का सिद्धान्त, हठयोग की अवधारणा पंच प्राणों के कार्य, प्राणषक्ति की विषेशताएं, हठयोग योग के सप्त साधन तथा हठयोग साधना के सात अंगों का संक्षेप में वर्णन किया गया है।

3.8 बोधात्मक प्रश्न

1- हठयोग का वैज्ञानिक स्वरूप बताइये।

2- हठयोग की ऐतिहासिक अवधारणा एवं परम्परा का उल्लेख कीजिए।

3- नौ नाथों का नाम लिखिये।

4- प्राणों के कार्य एवं प्राण शक्ति की विषेशताएं लिखिए।

5- हठ योग का सिद्धान्त को समझाये।

6- हठ योग की अवधारणा की व्याख्या कीजिए।

7- हठ योग के सप्त साधनों एवं सात अंगों का वर्णन कीजिए।

8- ध्यान एवं ध्यान विधि का वर्णन कीजिए।

9- समाधि का वर्णन कीजिए।

3.9 **संदर्भ ग्रंथ सूची**

- योग परिचय - डॉ पीताम्बर झा , प्रका. गुप्ता प्रकाशन डी- 35 साउथ एकसटैंशन भाग I नई दिल्ली - 49
- योग का परिचयात्मक - डॉ ओमनारायण तिवारी स्वरूपप्रकाशक पं. सुन्दरलाल शर्मा (मुक्त) विश्वविद्यालय छत्तीसगढ़, बिलासपुर (छ.ग.)
- साधना स्वामी शिवान्द , दिव्य जीवन संघ , पत्रालय शिवानन्द नगर 249192 , जिला टिहरी गढ़वाल हिमालय (उ.प्र.)
- राजयोग स्वामी विवेकानंद, अद्धैत आश्रम, 5-देही एन्टाली रोड, कलकत्ता - 700014
- लाईट ऑनयोग महर्षि अरविंद, अरविंद आश्रम पाण्डिचेरी
- अष्टांग योग -चरणदास अनुवादक , श्री ओ. पी. तिवारी , प्रकाशक कैवल्यधाम-एस. एम. वाई. एम. समिति , कैवल्यधाम लोनावाला पूना
- Secrets of Hatha Vidya - Dr. Vijayendra pratap SKY FoundationPhiladelphia Pennsylvania U.S.A.
- योगासन एवं हठयोग विज्ञान - डॉ. ओम नारायण तिवारी, विलासपुर (छत्तीसगढ़)
- पतनजल योग दर्शन - डॉ. नित्यानन्द शर्मा, कोटा (राजस्थान - 324005)

इकाई 4

हठयोग प्रदीपका ग्रंथ परिचय

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.2 प्रस्तावना

4.3 हठ योग प्रदीपका का रचनाकार प्रकाषित संस्करण

4.4 हठयोग साधना की तैयारी

4.5 योगाभ्यास में बाधाक कारक

4.6 योगाभ्यास में सहायक कारक

4.7 महर्षि स्वात्माराम के अनुसार यम नियम

4.8 महर्षि स्वात्माराम के अनुसार योग सिद्धी हठयोग सिद्धी एवं यौगिक आहार

4.9 सारांश

4.10 बोधात्मक प्रश्न

4.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

4.0 **उद्देश्य**

- हठ योग प्रदीपका का रचनाकार प्रकाषित संस्करण
- हठयोग साधना की तैयारी
- योगाभ्यास में बाधाक कारक
- योगाभ्यास में सहायक कारक
- महर्षि स्वात्माराम के अनुसार यम नियम
- महर्षि स्वात्माराम के अनुसार योग सिद्धी हठयोग सिद्धी एवं यौगिक आहार

4.2 **प्रस्तावना**

योगीन्द्र स्वात्मा राम जी के इस ग्रंथ हठयोगप्रदीपिका को अनेकों योगसम्प्रदायों एवं साधकों तथा जनसाधारण द्वारा स्वास्थ्य साधना हेतु एक मार्ग निर्देशिका के रूप में इसे स्वीकार किया गया है।

हठ्योग प्राण साधना की विद्या है। हठयोग प्रदीपिका के रचनाकार ने इस ग्रंथ का प्रणयन ही प्राणविद्या के उपदेश के लिये ही इस रचना में योग प्राप्ति हेतु सैद्धांतिक और व्यवहारिक प्रयोगात्मक पक्षों का समन्वयात्मक दृष्टिकोण अपनाया है। इस समन्वय की आधारशिला है राजयोग की सिद्धि प्राप्त करना। आप जान चुके है कि महर्षि पंतजलि के योगानुशासन के धरातल पर चित्तवृत्ति निरोध

मन और प्राण के सयंम से ही सम्भव हो सकता है , और यह सयंम ही हठयोग है। ह प्राण का वाचक है और ठ अपान का वाचक है। प्राण और अपान का नाभिस्थान में अपकर्षण कर उनका उर्ध्वहमुखीकरण करना ही प्राण और मन का संयम है प्राण और मन के संयमित होने पर चित्तवृति-निरोध स्वरूप योग ही योगी की समाधि-अवस्था में राजयोग की सिद्धि करवाता है। इस प्रकार यह बड़ा ही स्पष्ट तथ्य है कि मन और प्राण के संयम से ही स्वरूपावस्था की उपलब्धि (प्राप्ती) होती है।

हठयोग साधना के सोपानों से हमारा भौतिक (स्थूल) शरीर भी शुद्ध एवं व्याधियों से रहित हो जाता है। सूक्ष्म शरीर (मन), निर्मल हो जाता है एवं ह्रद्रय की गति संतुलित हो जाती है, कारण शरीर चित्त की चंचलता के क्षय हो जाने की स्थति में साधक स्वस्थ होकर अपनी योग साधना का लक्ष्य हासिल कर लेता है। साधना करते-करते योगी क्रमशः सामथ्र्यवान् होते जाता है और जीवन्मुक्ति का आनंद करते हुए मृत्यु को टाल देता है।

4.3 हठ योग प्रदीपका का रचनाकार प्रकाषित संस्करण

हठयोग प्रदीपिका का रचना काल

हमने हठयोग साधना के ऐतिहासिक विवेचन में पूर्व में जान लिया है कि हठयोगशास्त्र का उद्देश्य इस दुःख मय जगत से मुक्ति या मोक्ष के अर्थ तथा सभी मनोगत अभीष्ट सिद्धियों की प्रप्ति है। इस शास्त्र के अदि उपदेश योगिराज शिवाजी ने पार्वती को इस महाकाल योगशास्त्र का सर्वप्रथम रहस्य प्रकाशन किया। इसी हठविद्या का प्रणयन करके ब्रम्हा जी ब्रम्ह पद को प्राप्त हुए। इस हठविद्या का उपदेश भगवान श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवदगीता में अर्जुन को तथा श्रीमद्भागवतगीता में उद्धव को दिया। ऐसा भी माना जाता है कि इसी प्राणविद्या को ब्रहा्र, विष्णु, महेश, नारद, याज्ञवलक्य आदि ने भी साधन किया था। मत्स्येन्द्र नाथ और गोरखनाथ जी ने इसी शिवप्रोक्त हठयोग की परम्परा को आगे बढ़ाया। गोरखनाथ जी की कृपा प्रसाद स्वरूप प्रेरणा ने ही स्वात्मारामयोगीन्द्र से जनकल्याणार्थ इस मोक्षप्राप्तार्थ हठयोग प्रदीपिका नामक चार उपदेशों युक्त महनीय ग्रंथ का प्रणायन करवाया।

हठयोगप्रदीपिका योग साधनों का एक लोकप्रिय एवं महनीय ग्रंथ है। इसकी रचना का ठीक-ठीक समय ज्ञात नहीं है। इसका रचना काल विभिन्न स्त्रोतों से उपलब्ध तथ्यों के आधार पर किया जाता है। ऐसा माना जाता है कि योगी स्वात्माराम का काल ऐतिहासिक दृष्टि से मध्यकाल के पहले चरण से दूसरे चरण के बीच का काल हो सकता है। इस हेतु कई विद्वान अपने अपने पृथक मंत्त प्रस्तुत करते है इनमें से कुछ विद्धवानों के मत्त हठयोगप्रदीपिका के रचना काल के संबंध में निम्नानुसार है-

(1) यह सामान्यतः स्वीकार किया जा सकता है कि योगी स्वात्माराम मध्यकाल के पहले चरण से दूसरे चरण की अवधि में ही किसी समय विद्यमान थे।

(2) पी.के. गोड महोदय ने हठयोग प्रदीपिका की रचना का समय सन् 1360 ई0 से 1650 ई0 के मध्य में निश्चित किया है।

कैवल्यधाम लोनावाला (पूना) से 1970 ई0 के प्रकाशित हठयोग प्रदीपिका के प्रथम संस्करण की भूमिका में ऐसा उल्लेख उपलब्ध होता है।

(3) स्ट्डीज इन इण्डियन लिटररी हिस्ट्री के प्रथम भाग में हठयोगप्रदीपिका की रचना का समय सन् 1631 ई0 निश्चित किया गया है।

इस सन्दर्भ में डॉक्टर पी.के. गोडे का मत अधिक युक्ति युक्त लगता है क्योकि शिवानंद सरस्वती द्वारा रचित ग्रंथ योगचिन्तामणि में हठयोग प्रदीपिका के श्लोक उद्धृत हैं तथा यह रचना 1500 ई0 से 1860 ई0 के बीच किसी समय की गयी थी। स्वात्माराम ने नित्यनाथ को (हठ्योग प्रं. 1/7) महासिद्धों में से एक माना है। नित्यनाथ को रत्नसमुच्चय नामक एक ग्रंथ का रचनाकार माना जाता है। हिस्ट्री आफ हिन्दु केमिस्ट्री में श्री पी.सी.राय से पी.के. गोडे द्वारा प्रस्तुत मत कि हठयोग प्रदीपिका का रचनाकाल सन् 1600 ई0 होना चाहिये, अधिक तर्कसंगत बैठता है। इसी प्रकार ब्रिग्स महोदय ने अपनी पुस्तक 'गोरखनाथ एण्ड दि कनफटा योगीज में' हठयोग प्रदीपिका एक तांत्रिक हठयोग परक रचना का अनुमानित समय ईसा की पन्द्रहवी शताब्दी माना है। उनका कथन है कि हठ्योगप्रदीपिका एक तांत्रिक हठयोग परक रचना है, जिसके रचयिता चिन्तामणि जिनका दूसरा नाम स्वात्माराम योगीन्द्र हैं। इस ग्रंथ में कुल 382 श्लोक और 4 अध्याय हैं। हठ्योग के अनेक श्लोक गोरक्षशतक में भी उपलब्ध होते हैं। गोरक्षपद्वति में भी वे किसी न किसी अंश में उपलब्ध है। इस प्रकार हठयोग प्रदीपिका हठयोग की पूर्व की रचनाओं का एक विवेचनात्मक संकलन मात्र है।

हठयोग प्रदीपिका के प्रकाशित संस्करण

आपने हठयोग प्रदीपिका के अनुमानतः रचनाकाल के संबंध में ज्ञान प्राप्त किया। इस रचना के बाद में प्रकाशित संस्करणों के संबंध में हम यहां अध्ययन करेगें। हठयोग प्रदीपिका के अनेकों मुद्रित संस्करण प्राप्त होते है। इन मुद्रित संस्करणों में प्रायः सभी के नाम हठयोगप्रदीपिका ही हैं , कुल प्रमुख संस्करण निम्नलिखित है -

(1) थियोसोफिकल सोसाइटी अडियार (मद्रास) के अडियार लाइब्रेरी एण्ड रिसर्च सेन्टर द्वारा अड्यार लाइब्रेरी जनरल सीरिज के चैथे वाल्यूम के सामान्य सम्पादक के. कुन्जुनी राजा द्वारा 1972 ई0 में ब्रम्हा्रनंद की संस्कृत में ज्योत्सना टीका सहित मूल के अंगे्रजी अनुवाद के 'हठयोग प्रदीपिका' संस्करण की भूमिका में राधा बरनियर में लिखा है कि 'ब्रहा्रनंद की ज्योत्सना' संस्कृत टीका सहित मूल ग्रंथ और उसके श्रीनिवास आयंग की कृत को अंगे्रजी भाषान्तर से युक्त 'हठयोग प्रदीपिका ग्रंथ का प्रथम प्रकाशन बम्बई थ्योसोफिकल फन्ड के द्वारा 1893 ई0 में तुकाराम तत्या द्वारा कराया गया था।

(2) थियोसोफिकल पब्लिशिंग हाऊस अडियार (मद्रास) द्वारा 1983 ई0 में उपर्युक्त प्रकाशन का द्वितीय संस्करण मुद्रित किया गया। इस संस्करण में आयगंर कृति अंगेजी अनुवाद का ए.ए. रामनाथन तथा राधा बरनियर द्वारा पुनः संशोधन और संवर्धन किया गया।

(3) लक्ष्मीवेंकटेश्वर पे्रस बुम्बई द्वारा सवत् 1981 वि0 में ज्योत्सना संस्कृति टीकायुक्त मूलपाद का प्रकाशन किया गया।

(4) सन् 1931 ई0 में हठ्योगप्रदीपिका का पंचम सिंह द्वारा रचित अंग्रजी अनुवादसहित एक ग्रंथ का प्रकाशन श्री ललित मोहन बसु ने इलाहाबाद से करवाया।

(5) सन् 1949 ई 0 में ब्रम्हानन्द द्वारा रचित ज्योत्सना टीका और अंग्रेजी अनुवाद सहित थियोसोफिकल पब्लिशिंगहाउस, अडियार (मद्रास) ने एक प्रकाशन करवाया।

(6) सन् 1977 ई 0 में हठयोगप्रदीपिका का हठप्रदीपिका नाम से एक संस्करण अंग्रजी व्याख्या सहित स्वामी दिगम्बर जी और पण्डित आर.जी. कोकाजे द्वारा कैवल्यधाम (एस.एम.वाई.एम. समिति) लोनावाला पूना द्वारा प्रकाशित किया गया।

(7) मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन वाराणसी ने 1973 ई 0 ब्रम्हचारी याज्ञावल्कय कृत हिन्दी व्याख्या सहित योगप्रदीपका के नाम से एक ग्रंथ प्रकाशित करवाया।

(8) 1973 ई0 में ही संस्कृत संस्थान बरेली द्वारा डॉक्टर चमनलाल गौतम ने हिन्दी व्याख्या सहित ‘हठयोगप्रदीपिका’’ ग्रंथ का प्रकाशन करवाया।

(9) बिहार स्कूल ऑफ मुंगेर द्वारा स्वामी सत्यानंद के निर्देशन में भी हठयोग प्रदीपिका नाम से अंग्रजी में एक ग्रंथ प्रकाशित किया गया है जिसमें स्वामी मुक्ति बोधानन्द सरस्वती की व्याख्या दी गई है।

(10) सन् 1977 में गोरखनाथ-मंदिर गोरखपुर द्वारा श्री रामलाल श्रीवास्तव द्वारा की गई टीका एवं सम्पादन में हठयोगप्रदीपका ग्रंथ का प्रकाशन किया गया। जिसके अभी तक कई संस्करण प्रकाशित हो चुके है।

उपर्युक्त सभी संस्करणों में हठ्योगप्रदीपिका को चार उपदेशों (अध्यायों) में ही बांटकर हठयोगप्रदीपिका का समापन किया गया है। केवल कैवल्यधाम लोनावाला द्वारा प्रकाशित ग्रंथ में ही एक अन्य उपदेश जो 24 श्लोकों का है, जिसमें विभिन्न रोगों की चिकित्सा जो साधन व्यतिक्रम से साधक के शरीर में उत्पन्न होते है के सम्बंध में समावेशित किया गया है। यहाँ-यह भी स्पष्ट समझ लेना आवश्यक है कि केवल कैवल्यधाम द्वारा प्रकाशित ग्रंथ में ही पांचवें अध्याय का जिक्र है ऐसा नही है। इसके अलावा भी अनेक हस्तलिखित पाण्डुलिपियों मे हठयोगप्रदीपिका के अनेक नाम और चार से अधिक अध्यायों का विवरण प्राप्त होता है। इनमें मुख्यत ये हैः-

(i) बी. ओ. आर. आई. लाइब्रेरी पूना की हस्तलिखित पुस्तक सं. 631 (1886 ई0 से 1892 ई0) के अन्त में समापन है इति श्री आत्माराम विरचितायां हठप्रदीपिकां पंचमोपदेशः। इसी प्रकार हस्तलिखित पुस्तक सं. 263 (सन् 1879 ई0से 1880 ई0) में चार अध्याय हैं और श्लोकानुक्रम प्रत्येक अध्यय के क्रम से 67, 82, 130, और 141 है। इसी प्रकार हस्तलिखित पुस्तक संख्या 665(1883 ई0) में चार अध्याय और उनमें 69, 81, 133, और 134 श्लोक है।

(ब) बी.ओ.आर. आर्ट लाइब्रेरी पूना की ही हस्तलिखित पुस्तक संख्या 615 (1887 से 1891) में ज्योत्सना टीकासहित 4 अध्याय, 67, 79, 132, 113 श्लोक के क्रम से उपलब्ध हैं। लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई तथा अन्य प्रतिष्ठित प्रकाशन संस्थाओं नें इसी हस्तलिखित प्रति को अपने प्रकाशन का आधार माना है।

(स) ऐशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल , कलकत्ता (जी-1052) की हस्तलिखित पुस्तक-संख्या में अन्त समापन-क्रम है इति हठ्प्रदीपिकायां पंचमोपदेशः। इस पांचवे अध्याय को छायापुरूष दर्शन कहा गया है। भारतीय इतिहास संशोधक मंडल पूना की एक हस्तलिखित पुस्तक में छायापुरूष लक्षणम् पंचम पटल का उल्लेख है।

आप इस खण्ड के अन्र्तचगत पंचम उपदेश का भी अध्ययन करेगें, जिससे हठयोग चिकित्सा का स्वरूप भी स्पष्ट हो सकें।

4.4 हठयोग प्रदीपिका में योग साधना की तैयारी

स्वात्माराम योगीन्द्र द्वारा रचित हठयोग प्रदीपिका के प्रथम उपदेश में कुल 69 श्लोक दिये गये है। आपने पूर्व में अध्ययन किया है कि योगी स्वात्माराम की हठयोग के अंगों के विभाजन को लेकर एक मौलिक देन यह है कि उन्होंने हठयोग के चार अंग बतलाये है। ये अंग है- (1) आसन (2) प्राणायाम (3) मुद्रा एवं (4) नादानुसंधान।

योगी स्वात्माराम जी ने हठयोग प्रदीपिका के प्रथम उपदेश में आसनों को सिद्ध करने हेतु कुछ मूलभूत नियम बतलायें है जिनके बिना व्यावहारिक रूप से योग साधना संभव नहीं है। हठयोग साधना की ये आवश्यकताएँ निम्नलिखित हैं।

(1) योग साधना हेतु मठ (कुटी) या आदर्श स्थान

स्वात्माराम योगीन्द्र ने हठयोग के साधक के लिए, सर्वप्रथम आवश्यकता योग मठ या कुटी की बतलाई है। जहां निवास कर साधक हठयोग साधना को पूर्ण कर सके तथा राजयोग के मार्ग की ओर बढ़ सके। स्वात्मारामजी के संसार के दैहिक , दैविक और भौतिक तापों (कष्टों या दुःखों) से आकुल मनुष्यों का एक मात्र आधार हठयोग को ही बतलाया है। इस हेतु सर्वप्रथम साधक को स्थान का चयन सावधानी पूर्वक करना चाहिये।

हठयोग के साधक को सात्विक और पुण्यमयी प्रवृत्ति से सम्पन्न शासक के सुशासित राज्य में जो धार्मिक देश हो (जिसमें पुण्यात्मा और सत्कर्म निवास करते हों) , जहां फल तथा अन्नादि की सहज प्राप्ति हो सके, जो उपद्रव (आशान्ति और असामयिक द्वन्दों और कलहों से उत्पन्न) उपद्रव से रहित हो , ऐसे शिला (खण्ड या भाग या क्षेत्र) में अग्नि और जल (के सरोवर , कूप, गर्त) से चार हाथ दूर एकान्त स्थान में (जो योग साधना की दृष्टि से अनुकूल हो) एक मठ मे निवास कर योगाभ्यास में तत्पर रहना चाहिये।

(2) यौगिक मठ (कुटी) का स्परूप

यौगिक कुआं एवं कुटी

मठ या कुटी का स्वरूप बतलाते हुए स्वात्मारामजी ने कहा है कि मठ या कुटी का द्वार छोटा होना चाहिये जिसमें गवाक्ष आदि रंध्र (छिद्र) न हो और गर्त (गढ़ा) न हो और जिसमें चूहें आदि का विवर (बिल) न हो। स्थान न अत्यन्त ऊंचा हो और न अत्यन्त नीचा हो और न अन्यन्त विस्तार से युक्त

हो-क्योंकि अत्यंत ऊंचे पर चढ़ने में अत्यन्त नीचे स्थान से उतरने में अधिक श्रम होता है। और अत्यन्त विस्तार संयुक्त में दूर दृष्टि जाती है इस कारण इस प्रकार के स्थानों का निषेध किया गया है। यह मठ की दीवार में छिद्र न रखने का कारण यह है कि शीतकाल में अधिक ठंड और ग्रीष्मकाल में गर्म हवा तथा वर्षा में जल की बूंदों का प्रवेश न हों। कुटी के अन्दर साधना का स्थान समतल हो न ऊंचा न ही नीचा तथा कीट पंतगों मच्छर मक्खी से रहित होना चाहिये, जिससे ध्यान में व्यावधान न हो। देखे चित्र क्र.-10।

कुटी गोबर से चिकनी तथा अच्छी तरह लिपी पुती हो (क्योंकि गोबर की कृमि-नाशक शक्ति के प्रभाव से वातावरण स्वच्छ रहें) कुटी के बाहर मण्डपयुक्त वेदी हो जिस पर आसनस्थ होकर ध्यान किया जा सकें। कुटी के पास स्वच्छ जल से युक्त कुआँ हो कुटी चारों ओर से परकोटे से घिरीं हो जिससे हिंसक पशु तथा साधना में विध्नकारी तत्व अन्दर न आ सकें। यही हठयोग साधक के लिये आदर्श कुटी अथवा योगमठ होता है।

इस प्रकार निर्मित मठ में निवास करते हुए समस्त चिन्ताओं से रहित होकर (मन को मुक्त कर) गुरू द्वारा निर्दिष्ट (साधना प्रक्रिया) मार्ग से योगी को केवल योग मार्ग के अनुरूप करते हुऐ योग्य गुरू के ज्ञान प्रदेश में स्थिर होकर साधना (योगाभ्यास) करना चाहिये। साधना के दौरान आने वाले बाधक एवं साधक कारणों का भी योगाभ्यासी को ज्ञान होना चाहिये।

4.5 **योगाभ्यास में बाधक कारण**

योगाभ्यास में बाधक कारण

योग साधना करने वाले साधक को निम्नलिखित पाँच कारण बाधा उन्पन्न करते है-

(i) अधिक भोजन (आहार):- योगाभ्यास के प्रारभ्भ में स्वाभाविक रूप से जठराग्नि बढ़ती है , जिससे अधिक खाने की इच्छा होती है। अतः यह ध्यान में रखना चाहिये कि अधिक (भरपेट डटकर भोजन) न करें। वैसे तो सामान्य अवस्था में भी अधिक भोजन उचित नहीं कहा गया है क्योंकि अधिक भोजन से आलस्य , निद्रा, एवं स्थूलता (मोटापा) आदि उत्पन्न होते है जो बड़े ही विघ्नकारक तत्व हैं। अधिक भोजन जठराग्नि को मंद कर देता है जिससे अनेक शरीरिक रोग शुरू हो जाते है।

(ii) प्रयास (श्रम):- अभ्यास करते समय प्रारम्भ में कुछ अभ्यास ठीक से नही हो पाते। तब साधक जोर लगाकर अधिक प्रयास से उस अभ्यास को जल्दी से जल्दी कर लेना चाहता है। यह प्रवृत्ति घातक होती है। इस कारण शरीर की क्षमता को ध्यान में रखते हुए अपनी ओर से कभी अधिक प्रयास (जोर अजमाईश) नहीं करना चाहिये। सामथ्र्य के अनुसार साधना करना चाहिये।

(iii) प्रजल्प (निरर्थक वर्तालाप):- कुछ साधकों की प्रवृति होती है कि अपने अभ्यासों के सम्बन्ध में लोगों को बढ़ा-चढ़ाकर बताने में आत्मसुख महसूस करना। इसे योगाभ्यास में विघ्न माना गया है। क्योंकि इससे अभ्यास से प्राप्त होने वाली सफलता सन्दिग्ध हो जाती है और दिखावेपन की मात्रा बढ़ने लगती है। अतः जो भी अभ्यास किया जावें उसे गुप्त रखा जावे तथा अनाधिकारी

व्यक्ति से इस सम्बंध में कभी चर्चा भी नहीं करना चाहिये। इससे मन में क्रोध, लोभ, मोह आदि अनावश्यक प्रवृत्तियाँ उत्पन्न होती हैं तथा मनोविकार पैदा होते है।

(iv) नियमाग्रहः- किसी भी प्रकार के नियमाग्रह से बचना चाहिये। बहुत से साधक कुछ खास नियम बना लेतो हैं और आग्रह रखते हैं कि उसी के अनुसार चलेंगें। एक अर्थ में यह ठीक हो सकता है लेकिन बहुधा होता है कि ये नियम कठिनाई उत्पन्न करने लगते है उदाहरणार्थ मान ले कि यहां नियम बना लिया गया कि स्नान के बाद ही अभ्यास किया जायेगा या सुबह-सुबह ब्रम्ह मुहर्त में ही करेगें। तथा किसी निश्चित स्थान पर ही करेगें। किन्तु कभी परिस्थितियां इसके अनुकूल न बन सकें जैसे अधिक ठण्ड हो , स्नान करने में कठिनाई हो , तो शरीर पोंछकर या हाथ पैर धोकर स्वच्छ कपड़े पहनकर भी अभ्यास किया जा सकता है। कभी सुबह छूट जाय तो शाम को किया जा सकता है। नियमित स्थान पर न हो पाया तो दूसरे स्थान पर ही सही इस प्रकार साधक के लिये नियम है न कि नियमों के लिए साधक अतः नियमाग्रह नहीं होना चाहिये उनमें लचीलापन साधना हेतु साधक तत्व है।

(v) जनसंग (अत्याधिक लोक सम्पर्क):- योग साधक को अधिक लोक-सम्पर्क में नहीं रहना चाहिये। इससे अभ्यास में बाधा पहुंचती है। जब अभ्यास का समय हो रहा हो तब भी लोग घेरे रहेगें। उनकी ऋणात्मक ऊर्जा एवं मनोमालिन्य का प्रभाव भी साधक पर होगा। साथ ही अधिक जनसंग से खान-पान की बुरी आदतें भी बनने लगती हैं। इन सब कारणों से जनसंग से दूरी साधना हेतु आवश्यक है।

(vi) लौल्य (चचंलता):- अत्याधिक गतिशीलता से मन चंचल प्रवृति वाला बन जाता है जिससे योगाभ्यास में बाधा उत्पन्न होती है। साधक का मन कभी यहां कभी वहां कभी कुछ, कभी कुछ इस प्रवृति से शारीरिक चचंलता एवं शारीरिक चचंलता से मन की चचंलता ये दोनों अन्योन्याश्रित होती है। अतः अत्याधिक शारीरिक गति अधिक दौड़ भाग आत्यधिक धूप का सेवन अदि से मन अशान्त एवं अस्थिर होता है।

उपरोक्त छः विध्न योगसाधक की साधना में प्रगति में बाधा उत्पन्न करते है। श्रेष्ठ गुरू के निर्देशन में साधनारत साधक इन छः बाधाओं को ठीक प्रकार से समझ कर इनसे सदैव बचा रहता है। और योगसाधना में सफलता प्राप्त करता है।

4.6 **योगाभ्यास में सहायक कारण**

योग साधना करने वाले साधक को निम्नलिखित छः तत्व या कारण ऐसे है जो योगसाधना की प्रगति को निरंतर आगे बढ़ाते रहते है। योग्य गुरू इन पर अत्याधिक जोर देते है ये तत्व निम्नलिखित हैं-

(i) उत्साहः- योग साधना के प्रति सत्कार-बुद्धि अर्थात विध्न बाधाओं से विचलित न होते हुए निरन्तर योग लक्ष्य हेतु तत्परता बनाये रखना। सतत् मन उत्साह से भरा रहने से साधना का लक्ष्य शीघ्र प्राप्त होता है।

(ii) साहसः- बहुधा ऐसा होता है कि योगसाधना प्रारम्भ करने पर कुछ लोग तरह-तरह की बाते कहकर भयभीत का देते हैं या अभ्यास बढ़ने पर कुछ चित्र-विचित्र अनुभव होने पर भी भय का निर्माण होने लगता है। अतः ऐसी स्थिति उत्पन्न होने पर निर्भय होकर साहस के साथ योगाभ्यास में लगे रहना चाहिये। तभी साधना सफल होती है।

(iii) धैर्यः- योग साधना दीर्घ कालीन सतत् अभ्यास की माँग करती है अतः सफलता हेतु धैर्य एक अनिवार्य तत्व है। स्वेच्छा या कुछ विशिष्ट अपेक्षाओं में साथ योगसाधना शुरू कर उनके शीघ्र परिणाम प्राप्त न होते देख अनेक साधकों का धैर्य टूट जाता है , तथा वे साधना से विरत होने लगते है। अतः कोई मनोकामना लेकर योग साधना एवं परिणाम न मिलने पर धैर्य छोड़ना ये दोनों विघ्न है। क्योंकि पूर्वसंस्कार, अभ्यास की उपयुक्तता तथा परिस्थितियां कभी-कभी शीघ्र परिणाम नहीं आने देते अतः धैर्य धारण साधक तत्व है।

(iv) तत्वज्ञानः- योग साधना में तत्वज्ञान सर्वाधिक सहायक तत्व है। अधिकतर साधक बिना गुरू के किताबें पढ़कर अभ्यास आरंभ कर देते है इससे आपेक्षित परिणाम नहीं प्राप्त होते। जीव एवं ईश्वर या आत्मा एवं परमात्मा तत्व को ठीक से जान समझकर वास्तविक लक्ष्य के प्रयोजन से योगसाधना करना साधना में सहायक होता है।

(v) निश्चयः- योग साधक को अपने साधन में विश्वास और दृढ़ता रखना चाहिये। अनिश्चय की स्थिति में कोई भी कार्य प्रारम्भ करना उचित नहीं है। विशेषतः योगाभ्यास। सभी प्रकार से अपनी क्षमताओं को परख कर दृढ़ निश्चय के साथ ही साधना शुरू करने पर सफलता प्राप्त होती है। यह तत्व भी अत्याधिक महत्वपूर्ण है।

(vi) जनसंगपरित्याग (एकान्त-सेवन):- योग साधना में अधिक लोगों का किसी भी प्रकार का सम्पर्क विध्न ही उन्पन्न करता है। अतः योग साधना की सफलता हेतु यह आवश्यक है कि धीरे-धीरे लोगों से सम्पर्क त्यागते हुए एकान्त सेवन की आदत बनाना चाहिये, इससे अभ्यास की तीव्रता बढ़ जाती है।

इस प्रकार यदि योगसाधक इन छः तत्वों को ठीक से समझ कर अपनी साधना में इनका पालन करता है तो उसे अवश्य योग सिद्धि की प्राप्ती संभव होती है।

4.7 महर्षि स्वात्माराम के अनुसार यम नियम

स्वात्माराम निर्देशित यम-नियम

स्वात्माराम जी की एक मौलिक विशेषता यम नियमों की संख्या को लेकर भी है। सामान्यतः महर्षि पंतजलि के अनुसार पाँच-पाँच यम और नियम को माना जाता है किन्तु स्वात्माराम जी ने वशिष्ट संहिता योगकाण्ड के अनुरूप दस-दस यम और नियमों की संख्या बतलाई है। ये निम्नलिखित है-

(i) यमः-अहिंसा , सत्य, अस्तेय, ब्रह्र्चर्य, क्षभा, धृति, दया, ऋजुता, मिताहार और शौच ये दस यम है।

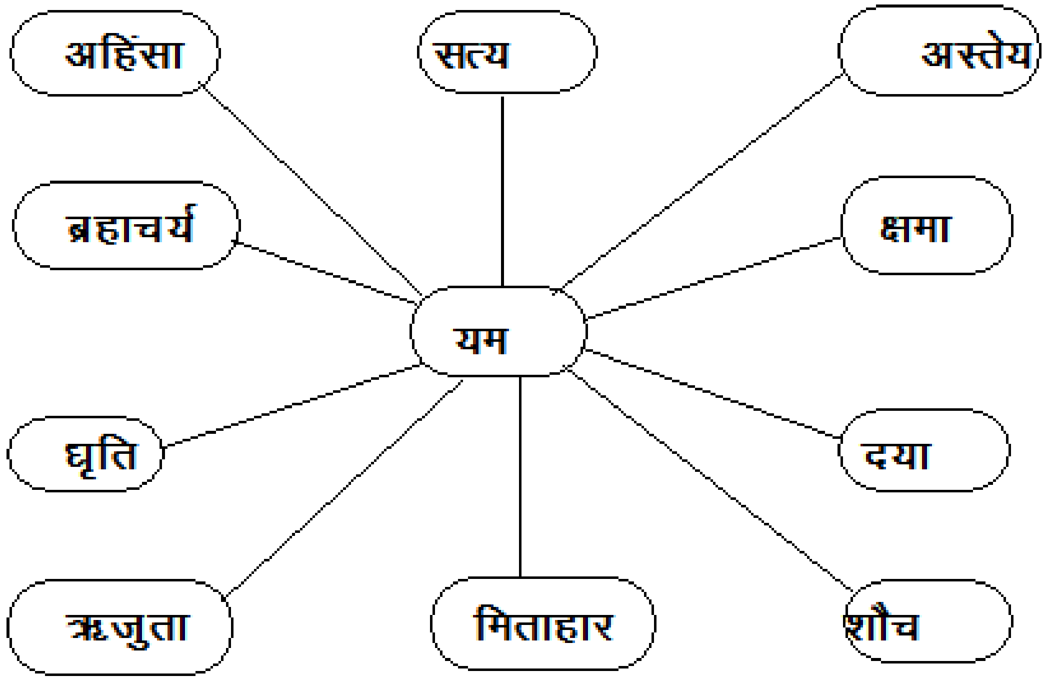

(ii) नियमः- तप , सन्तोष, आस्तिकता, दान, ईश्वर-पूजन, सिद्धांत-श्रवण, दृढ़मति, जाप और हवन ये दस नियम है।

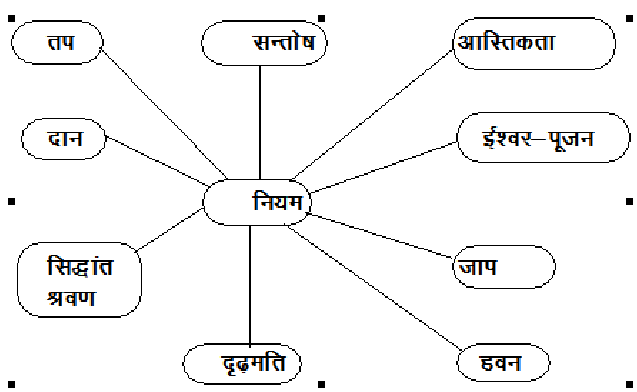

नोटः- हठयोग प्रदीपिका की अनेक प्रतियों में उपर्युक्त यम और नियम के दो श्लोक प्राप्त नहीं होते है। इन्हें प्रक्षिप्त माना गया है। यद्यपि षडंगयोग में योग का प्रथम अंग आसन ही लिया जाता है किन्तु अष्टांग योग में प्रथम और द्वितीय अंग के रूप में यम और नियम आते है फिर तीसरा अंग आसन आता है। यहां यह भी ध्यान रखना है कि यम और नियम के पालन के नियमाग्रह में न पड़कर योगआसनों का अभ्यास शुरूकर देने से शरीर और मन की साम्यता धीरे-धीरे यम और नियम के पालन की ओर स्वतः प्रेरित करने लगती है।

4.8 महर्षि स्वात्माराम के अनुसार हठयोग सिद्धी के लक्षण एवं यौगिक आहार

हठयोग सिद्धि के लक्षण

हठयोग सिद्ध होने पर साधक के शरीर में उत्पन्न होने वाले लक्षण निम्नलिखित हैः-

(1) शरीर कृशकाय अर्थात दुबला पतला हो जाता है।

(2) मुख में प्रसन्नता का भाव सदैव बना रहता है।

(3) अर्न्तनाद का प्राकाट्य होता रहता है। जिससे चित्त एकाग्र होता है।

(4) दोनों नेत्रों में भावहीन निर्मलता होती है। अर्थात् निष्कलुष हो जाती है।

(5) साधक का शरीर पूर्ण निरोग होता है।

(6) बिन्दु अर्थात् अन्तः संवेदना पर विजय प्राप्त होती है, जठराग्नि बढ़ती है। नाड़िया शुद्ध हो जाती है।

उपरोक्त लक्षण उत्पन्न होने पर यह समझना चाहिये कि साधक को हठयोग की सिद्धि हो चुकी है।

(i) योग सिद्धि की अवधि:- स्वात्माराम जी के अनुसार योगांगों आसन , प्राणायम, मुद्रा एवं नादानुसंधान के क्रम से हठयोग का अभ्यास करने पर तथा इस अभ्यास के दौरान ब्रम्हाचरण करने वाला तथा मिताहारी अर्थात प्रमितभोजी सतत् अभ्यास रखता है तो एक वर्ष की अवधि में योग सिद्धि निश्चय ही प्राप्त हो जाती है।

(ii) आहार का स्वरूप:- स्वात्मारामजी ने आहार का स्वरूप बतलाया है कि आहार मिताहार होना चाहिये। मित से अशय सीमित या परिमित आहार अर्थात भोजन। एक व्यक्ति की जितनी भोजन लेने की क्षमता है , उससे कुछ कम मात्रा में ही भोजन ग्रहण करना मिताहार है। इस मिताहार के स्वरूप को स्वात्माराम जी ने बड़े व्यवहारिक रूप में स्पष्ट किया है। इनके अनुसार भोजन स्निग्ध (घी से चुपड़ा हुआ) होना चाहिये। मसाले आदि का प्रयोग इतना कम किया जाय कि भोजन की स्वाभाविक मधुरता बनी रहे। व्यक्ति की भोजन ग्रहण करने की अधिकतम मात्रा (पूर्ण खुराक) में से पेट को आधा भोजन से भरे एक चैथाई जल से एवं शेष एक चैथाई वायु के लिये खाली छोड़ दे। भोजन स्वाद के लिये नहीं बल्कि ईश्वर-प्रीत्यर्थ करना चाहिये यही मिताहार

का स्वरूप है। मिताहार से योगाभ्यास में स्पूर्ति बनी रहती है और उत्साह से परिपूर्ण साधक को अभ्यास में शीघ्र सफलता प्राप्त होने लगती है।

(iii) मिताहार के अपथ्यकारक घटक:- मिताहार के अन्र्त गत निम्नलिखित प्रकार के भोज्य पदार्थो को साधना में बाधक मानते हुऐ स्वात्माराम जी ने इन्हें निषिद्ध (अपथ्यकारक) कहा है। इनके ग्रहण करने पर अभ्यास में बाधा उपस्थित होने की संभावना बनी रहती है। ये निम्नलिखित है- कड़वा (करेला जैसा), खट्टा (इमली जैसा), तीखा (लाल मिर्च), नमकीन, गुड़, गरम चीजें, हरी शाक, सलगम, गाजर, खट्टी भाजी, तेल, तिल, सरसों की भाजी, मद्य (शराब), मांस इनमें मछली, बकरे इत्यादि का। दही , छाछ कुलथी (एक दाल) वेर , खल्ली, हींग तथा लहसुन। ये सभी वस्तुयें अपथ्य कारक हैं। इनके आलावा दुर्गन्धित बने हुए बासी खाना की फिर से गरम करके नहीं खाना चाहिये। अधिक नमक, खटाई तथा उत्कट शाक आदि भी त्याज्य है। साथ ही योगाभ्यास की शुरूयात में ही दुर्जन अग्नि , स्त्री और अनावश्यक तीर्थ यात्रा अदि यात्रा का सेवन सर्वथा त्याग देना आवश्यक है। प्रातः काल स्नान , और उपवास आदि , काया कलेश सूर्यनमस्कार, अधिकभार ले जाना आदि ये मिताहार के अवश्यकारक (अहितकर) घटक है।

(iv) मिताहार के पथ्यकारक घटक:- योगाभ्यासकाल में यदि निम्नलिखित प्रकार के भोजन लिए जाएँ तो योगसाधना की सफलता में ये सहायक होते है। ये निम्नलिखित है। सुस्वाद और सहजता से पच जाने वाले अन्न जैसे- गेहूँ , चावल, जौ, साठी चावल, आदि सात्विक अन्न। दूध, घी, खाँड, मक्खन, मिश्री, मधु, सूँठ, परवल की सब्जी , ऋतु फल, शाक (प्रमुखतः) पंचशाक जीवन्ती, बथुआ (वास्तु), चैलाई (मूल्याक्षी), मेधनाद एवं पुनर्नवा) मूंग तथा मूंग की दाल, हरा चना तथा निर्मल जल (वर्षाजल) सेवनीय है। इनके साथ ही साथ यह भी ध्यातव्य है कि भोजन पुष्टिकारक हो, सुमधुर हो, स्निग्ध हो, दूध में गाय के दूध से बनी चीजें हो , सुपाच्य तथा मन के अनुकूल भी हो। शरीर की सप्तधातुओं को पोषण प्रदान करने वाला हो। ये घटक साधना मार्ग को अग्रेषित करने में सहायक तत्व या घटक के रूप में प्रयुक्त होता है।

(v) अभ्यास की दृढ़ता के अन्य घटक:- योग साधना का साधक बाल, युवा, वृद्ध या अतिवृद्ध हो, रोगी हो, क्षीण काया (दुर्बल) हो, आदि योगांगों के अभ्यास को आलस्यरहित होकर सतत् अभ्यास शुरू कर देता है तो सिद्धि निश्चित प्राप्त होती है। अभ्यास में चित्त की वृत्तियों के निरोध के उपाय सतत् करते रहना चाहिये। केवल शास्त्र पढ़ लेने से योगासाधना में सफलता नहीं मिल जाती। सफलता हेतु अभ्यास और वैराग्य की निरंतर आवश्यकता होती है। शास्त्रीय ज्ञान आवश्यक है विशेष वेश, भूषा बनाने या सिद्धयोगियों की कथा कहानियों के ज्ञान से सफलता नहीं प्राप्त होती। सफलता अभ्यास पर ही निर्भर करती है।

4.9 **सारांश**

प्रस्तुत इकाई में महर्षि स्वात्माराम के अनुसार हठयोग प्रदीपिका का इतिहास हठयोग साधना की तैयारी हठयोग अभ्यास में बाधक कारणए सहायक कारण यम नियमों का वर्णन हटयोग सिद्धि के लक्षण एवं योगिक आहार का संक्स्षेप में वर्णन किया गया है ।

4.10 **बोधात्मक प्रश्न**

1. हटयोग प्रदीपिका का वर्णन कीजिए
2. योगाभ्यास में बधाक कारण लिखिये
3. योगाभ्यास में सहायक कारण लिखिये।
4. महर्षि स्वात्माराम के अनुसार यां नियमों का वर्णन कीजिए।
5. महर्षि स्वात्माराम के अनुसार योग सिद्धि के लक्षण लिखिये।
6. यौगिक आहार का वर्णन कीजिये।

4.11 **संदर्भ ग्रंथ सूची**

- राजयोग स्वामी विवेकानंद, अद्धैत आश्रम, 5-देही एन्टाली रोड, कलकत्ता - 700014
- लाईट ऑनयोग महर्षि अरविंद, अरविंद आश्रम पाण्डिचेरी
- अष्टांग योग -चरणदास अनुवादक , श्री ओ. पी. तिवारी , प्रकाशक कैवल्यधाम-एस. एम. वाई. एम. समिति , कैवल्यधाम लोनावाला पूना
- योग और अनुसंधान स्वामी कुवलयानन्द, कैवल्यधाम लोनावाला पूना 410403
- साधना स्वामी शिवान्द , दिव्य जीवन संघ , पत्रालय शिवानन्द नगर 249192 , जिला टिहरी गढ़वाल हिमालय (उ.प्र.)
- योग परिचय - डॉ पीताम्बर झा, प्रका. गुप्ता प्रकाशन डी-35 साउथ एकसटैंशन भाग I नई दिल्ली - 49
- योग का परिचयात्मक - डॉ ओमनारायण तिवारी स्वरूपप्रकाशक पं. सुन्दरलाल शर्मा (मुक्त) विश्वविद्यालय छत्तीसगढ़, बिलासपुर (छ.ग.)
- Secrets of Hatha Vidya - Dr. Vijayendra pratap SKY FoundationPhiladelphia Pennsylvania U.S.A.
- योगासन एवं हठयोग विज्ञान - डॉ. ओम नारायण तिवारी, विलासपुर (छत्तीसगढ़)
- पतनजल योग दर्शन - डॉ. नित्यानन्द शर्मा, कोटा (राजस्थान - 324005)

इकाई 5

हठयोग साधना के आसन

इकाई की रूपरेखा

5.1 उद्देश्य

5.2 प्रस्तावना

5.3 शरीर संवर्धनात्मक आसन

5.4 विश्रा आसन

5.5 ध्यानात्मक आसन

5.6 सारांश

5.7 बोधातमक प्रश्न

5.8 संदर्भ ग्रंथ

5.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्न आसनों के बारे में जानेगें

- शरीरसंवर्धनात्मक आसन
- विश्रारात्मक आसन
- ध्यानात्मक आसन

5.1 प्रस्तावना

स्वात्माराम जी के अनुसार हठसाधना (प्राणसाधना) की शुरूआत का प्रथम अंग आसन हैं। आसनों का अभ्यास साधक में निम्नलिखित तीन परिणाम उत्पन्न करता है-

(1) स्थिरता

(2) आरोग्य एवं

(3) शारीरिक स्फूर्ति

योग ज्ञान में पारंगत एवं योगसिद्ध वशिष्ट आदि मुनियों तथा मत्येन्द्रनाथ आदि श्रेष्ठ योगियों ने जिन योगासनों को अभ्यास हेतु आवश्यक बतलाया था उन्हीं पंद्रह आसनों का स्वात्माराम जी ने भी अनुसरण किया है। इन आसनों एवं उनके लाभों का वर्णन निम्नलिखित प्रकार से है। यहां यह भी ध्यान रखने योग्य बात है कि इन आसनों को तीन प्रमुख प्रकारों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

5.3 शरीर संवर्धनात्मक आसन

शरीर संवर्धनात्मक आसनः- जिन योगासनों के अभ्यास से शरीर अंगों के रोग दूर हों , अंग स्वास्थ्य बनें तथा सतत् स्वास्थ्य संवर्धन होता रहे वे शरीर संवर्धनात्मक आसन कहलाते है। स्वात्माराम जी के अनुसार निम्नलिखित दस शरीर संवर्धनात्मक आसन है-

(i) गोमुखासन (ii) वीरासन (iii) कूर्मासन (iv) कुक्कुटासन (v) उत्तानकूर्मासन (vi) धनुरासन (vii) मत्स्येन्द्रासन (viii) पश्चिमोत्तान आसन (ix) मयूरासन (x) सिंहासन। इन आसनों के अभ्यास की प्रक्रिया, समय इनके लाभ तथा इन्हें लगाने में रखने वाली सावधानियों के क्रम में इनका विवेचन निम्नानुसार है।

(i) गोमुखासन (Cow's face Pose)

सव्ये दक्षिणगुल्फं तु पृष्ठपाश्र्वे नियोजयेत्।
दक्षिणेअपि तथा सव्यं गोमुखं गोमुखाकृतिः।।

(ह. प्र. 1/20)

नामकरणः- कमर के बायीं ओर दाहिने टखने (गुल्फ) के रखकर दाहिने भाग में बायें टखने को रखने से दोनों घूटने एक के ऊपर एक हो जाते है तथा इस स्थिति में आकृति गोमुख के समान बनती है इस कारण इसे गामुखासन कहते है।

विधिः-

(i) सर्वप्रथम दोनों पैर फैलाकर बैठ जाते है।

(ब) बायें पैर की एड़ी को दाहिने नितम्ब (कूल्हे) के नीचे रखते है।

(स) दाहिने पैर की एड़ी को बायें नितम्ब के नीचे रखते है। इस प्रकार बायें घुटने के ठीक उपर दाहिना घुटना हो जाता है।

(द) दाहिने हाथ को मोड़कर कोहिनी दायें कान के ऊपर हाथ को कान से सटाकर हथेली को पीठ की ओर लाते है।

(इ) बायें हाथ को मोड़कर कोहनी नीचे पीठ से सटाकर रखते हुऐ , बायें हाथ से दाहिने हाथ की अंगुलियों को पकड़कर फांस हुक बनाते है। मेरूदंड, ग्रीवा एवं सिर एक सीध में रखते है। ध्यान अज्ञाचक्र पर होना चाहिये।

(ई) यही प्रक्रिया दूसरे पैर एवं हाथ को ठीक विपरीत तरीके से बदलकर दोहराते है। यह पाँच से दस बार एवं रोग निवारण हेतु आधा घन्टे तक के अभ्यास की आवश्यकता गुरू के निर्देशन में होना चाहिये।

लाभः-

- साधना में यह आसन मन को एकाग्र रखने में सहायक है।
- जप स्वाध्याय ध्यान एवं त्राटक के लिए उपयुक्त आसन है।
- स्नायुओं की निर्बलता दूर करने में उपयोगी है।
- वात रोगों के शमन में सहायक है।
- हाइड्रसिल (अण्डकोश का बढ़ना) रूक जाता है। एवं वीर्य पुष्ट होता है।
- पेट एवं आँतों के विकार दूर होते है। अपच नष्ट होता है। हर्निया ठीक होता जठराग्नि बढ़ती है। तथा लैंगिक विकार दूर होते है।
- किडनी (गुर्दे या वृक्क) के रोग दूर होते है। रक्तचाप नियंत्रित हो◌ेता है।
- मधुमेह रोग से छुटकारा मिलता है। टी.वी. एवं दमा दूर होते है।
- स्त्रियों के मासिक धर्म सम्बन्धी अनियमितताओं में बहुत उययोगी है।

सावधानियाँः-

- रोगों की तीव्र स्थिति में, ज्वर की स्थिति में तथा भोजन के तुरन्त बाद इसे नहीं करना चाहिये।
- अत्याधिक पैदल चलने या दौड़ने तथा घाव इत्यादि की स्थिति में भी नहीं करना चाहिये।

वीरासन (Hero's Pose)

एकं पादं तथैकस्मिन्विन्य से दुरूणि स्थितम्।
इतर स्मिंस्तथा चोरू वीरासनमितीरितम्।।

(ह.प्र. 1/23)

नामकरणः- वीरों के बैठने अथवा चलने की स्थिति (मुद्रा) के सादृश्य स्थिति होने के कारण इसे वीरासन कहते है।

इसमें एक पैर बायीं जाँघ पर और दूसरा पैर दायीं जाँघ पर रख कर बैठना ही वीरासन कहा जाता है

विधिः-

(i) सर्व प्रथम पैरों के तलवें के बल उकडू बैठते है। इस स्थिति में दोनों पैरों के अगूठे एक दूसरे को स्पर्श करेगें। तथा कूल्हें एड़ियों के ऊपर होंगे। अथवा

(ब) दूसरी विधि में वज्रासन में बैठकर शुरू किया जा सकता है।

(स) बाये पैर के घुटने को मोढ़कर जमीन में रखते हुये बायें पैर की ऐड़ी पर बैठते है।

(द) दाहिने पैर के अगूठें को बायें पैर के जमीन में रखें घुटने के पास रख देते है।

(इ) दाहिने पैर के घुटने पर दाहिने हाथ की कोहनी रखते हुऐ हथेली को ठुड्डी पर रख देते है।

(ई) बायें हाथ की हथेली को बायें पैर के घुटने पर रख देते है।

लाभः-

- चिन्तन ध्यान अथवा विश्राम के लिए उपयुक्त आसन है।
- मन में शान्ति, चैतन्यता का भाव आता है तथा चंचलता दूर होती है।
- वीर्य भावना जागती है।
- छाती पुष्ट एवं फेफड़े सबल होते है।
- श्वास रोग, खाँसी, जुकाम, तथा कफ विकार शांत होते है। टी.वी. क्षय रोग में भी सहायक है।
- स्वप्न दोष और दुःस्वप्न निदान में सहायक है। आलस्य, निद्रा, खुमारी एवं भय की भावना नाश होती है।
- मन में वीर भाव आता है। शक्ति एवं स्फूर्ति प्राप्त होती है।
- पोलियों ग्रस्त या गठिया ग्रस्त पैर को मोढ़कर आसन करने से मन की एकाग्रता बनती है। तथा धीरे-धीरे विकार दूर होता है।
- यह आसन तनाव मुक्ति, चिन्ता, निराशा एवं भय का हरण करने वाला है।

सावधानियाँ

- सरल सहज होने के कारण विशेष सावधानी की आवश्यकता नहीं है। फिर भी योगासन करने के सामान्य नियमों का पालन करना अनिवार्य है।
- कम समय या अत्याधिक गतिशीलता की स्थिति में यह संभव नहीं है।

कूर्मासन (Tortoise Pose)

गुदं निरूध्य गुल्फाभ्यां व्युत्क्रमेण समाहितः।
कूर्मासनं भवेदेतदिति योगविदो विदुः।।

(ह.प्र. 1/24)

नामकरण

कूर्म संस्कृत शब्द है जिसका अर्थ कछुआ होता है। इस आसन को लगाने पर शरीर आकृति कूर्म या कच्छप के समान बनती है इस कारण इसे कूर्म या कच्छपासन कहते है।

विधि

(i) सर्वप्रथम दोनों पैरो को सामने फैलाकर बैठते है। इस स्थिति में दोनों पैर अलग-अलग रहते है।

(ब) मेरूदण्ड को सीधे खींचते हुऐ धीरे-धीरे सामने झुकातें है। और हाथों के घुटनों के नीचे ले जाते है। हथेलियों को खुली रखते हुऐ जमीन पर रखते हैं।

(स) मेरूदण्ड को इतना झुकाते है कि मस्तक जमीन को छूने लगें।

(द) दोनों हाथों को पैरों के नीचे से ले जाकर कमर के पीछे फाँस (हुक) आकृति में पकड़ लेते है।

लाभ

- इस आसन से आयु बढ़ती है। मन शान्त एवं चित्त की वृत्तियां निरूद्ध होती है।
- पैरों के पंजे, घुटने, कोहनी, जंघामूल, नाभि देश, मेरूदंड, ग्रीवा मस्तक कोहनी और हाथों की अंगुलियों पर वक्षस्थल पर , फेफड़ों पर गुदा पर तथा थायराइड तथा पैराथाइराइड ग्रन्थि पर विशेष दबाव पड़ने से ये अंग स्वस्थ्य एवं निरोग बनते है। दबाब पड़ने ये अंग स्वस्थ एवं निरोग बनते है।
- हार्निया, पैक्रियांज, मधुमेह, आंन्त्रावृद्धि तथा क्षयरोग में विशेषलाभकारी है।
- गलगंड, कंडमाला, टांसिल, हकलाने, तुतलाने की आदत दूर होती है।
- यह शीत नाशक एवं उष्मावर्धक आसन है।
- मूलबन्ध के साथ बवासीर और भगन्दर में अत्यन्त लाभकारी है।
- मेरूदंड कों लचीला बनाता है। यकृत , आमाशय, ग्रहणी, श्रुद्रान्त, वृतदंत्र, क्लोमादि के रोगों में लाभकारी है। रजोविकार, प्रमेह अण्डकोषवृद्धि का रोगशमक है।
- स्नायुमंडल को स्वस्थ मन को एकाग्र, अर्न्तमुखी तथा कुण्डलिनी जागरण में सहायक आसन है। इत्यादि अनेक लाभ है।

सावधानियाँ

- मेरूदण्ड के रोग जैसे- स्लिप डिस्क, साइटिका, स्पोडेलाइटिस, के विकार में नहीं किया जाता है।
- हड्डियों के दीर्घकालीन दर्द में वर्जित है।

कुक्कुटासन (Cocker Pose)

पद्मासनं तु संस्थाप्य जानूर्वोरन्तरे करौ।

निवेश्य भूमौ संस्थाप्य व्यामस्थं कुक्कुटासनम्।।

(ह.प्र. 1/25)

नामकरण

इस आसन को लगाने पर शरीर की आकृति कुक्कुट (मुर्गे) के समान दिखाई पड़ती है। इस कारण इसे कुक्कुटाआसन कहते है।

विधि

(i) सर्वप्रथम दोनों पैर फैलाकर बैठ जावें फिर ठीक प्रकार से पद्ममासन (दहिने पैर की ऐड़ी हिप बोन के बाये किनारे पर एवं बायें पैर की ऐड़ी हिप बोन के दायें किनारे पर सटाकर रखना) लगाते है।

(ब) पद्ममासन में दाहिने हाथ को दहिने पैर की जानु और पिंडली के बीच में कोहनी तक ले जाना चाहिये और इसी प्रकार दायें हाथ को बायें पैर की जानु और पिंडली के बीच में ले जाना चाहिये।

(स) अब दोनों हाथों के पंजों को जमीन पर टिकाकर हाथों के ऊपर शरीर को संतुलित करते हुए ऊपर उठाते हैं।

(द) इस क्रिया को पद्ममासन के पैर बदल कर भी किया जाना चाहिये।

लाभ

- पेट में कृमि (कीड़े) की शिकायत वालों हेतु बहुत लाभकारी है।
- जठराग्नि तीव्र होती है भूख बढ़ती है। थकान मिटाने में भी लाभकारी है।
- नाड़ी शुद्धि होने से शरीर में स्फूर्ति आती है तथा मूलबन्ध लगाने छोड़ने से वीर्य का स्तम्भन होता है।
- हाथों कंधों और सीने को पुष्ट एवं स्वस्थ्य बनाता है।
- वस्ति प्रदेश यौनग्रन्थि, शुक्राशय और शुक्रवाहिनियां भी सक्रिय होती हैं। उनके अवरोध दूर होते हैं, वीर्य शुद्ध और गाढ़ा होता है। जिससे स्वप्न दोष , शीघ्रपतन प्रमेह , धातुदौर्बल्य और नपुंसकतादि उपषमान में बड़ी सहायता प्राप्त होती है।

सावधानियाँ

- जिन व्यक्तियों के पैरों में बहुत अधिक बाल हैं , उन्हें पिंडलियों और जांघों के बीच से हाथ अन्दर डालने में कठिनाई होती है। अतः इसका अभ्यास तेल लगाकर या स्नान कर लगाना चाहिये।

उत्तानकूर्मासन (**Stretching tortoise Pose**)

कुक्कुटासन बन्धस्थौ दोभ्यां सबध्य कन्धराम्।
भवेत्कूर्मपदुत्तान एतदुत्तान कूर्मकम्।।
(ह.प्र. 1/26)

नामकरण

कूर्मासन की ही एक स्थिति जो उतान (खिची हुई) अवस्था में होने के कारण इसे उत्तानकूर्मासन नाम से जानते है।

विधि

(i) पद्यमासन में बैठकर कुक्कुटासन की तरह दोनों हाथों को दोनों पैरों की जंघा एवं पिण्डलियों के मध्य से निकाल लेते है।

(ब) दोनों निकले हुऐ हाथों को मोड़कर ग्रीवा के पीछे फांस (हुक) कर पकड़ लेते है।

(स) इस अवस्था में पूरा सन्तुलन कूल्हों पर होता है।

नोटः-उत्तान कूर्मासन की आकृति के आधार पर इसे गर्भासन और प्रसारित मत्स्य आसन भी कहा जाता है।

लाभ

- पद्यमासन के सभी लाभ मिलते है।
- इसके सम्यक अभ्यास से पाकाशय , ग्रहणी, प्लीहा, वृक्क, क्लोम, वस्तिगुहा, गर्भाशय, शुक्राशय, मूत्राशय आदि अंग सक्रिय होते है।
- गैस, उदर वायु, गुल्फ, कब्ज, आदि दूर हो जाते है।
- हार्निया रोग में यह आसन बेल्ट बांधने के समान लाभ करता है।
- महिलाओं के गर्भाशय पुष्ट होते है। कष्ट रहित प्रसव हेतु उपयोगी है। मासिक स्त्राव की अनियमितता दूर होती है।

सावधानियाँ

- गर्भवती स्त्रियां इसका अभ्यास गर्भाधान के दो माह बाद बंद कर देवे। गर्भस्त्राव की शिकायत होने पर गर्भाधान में तुरन्त बाद इसे बंद कर देवें।
- प्रसव के दो माह बाद आसन सतत् करने से भविष्य में इसके लाभ प्राप्त होगें , तथा गर्भस्त्राव से मुक्ति प्राप्त होगी।

(vi) **धनुरासन (Bow Pose)**

पादाडगुष्ठौ तु पाणिभ्यां गृहीत्वा श्रवणावधि।
धनुराकर्षणं कुर्याद् धनुरासनमुच्यते।।

(ह.प्र. 1/27)

नामकरण

इस आसन में शरीराकृति धनुषाकार प्रतीत होती है। इस कारण इसे धनुरासन कहते है।

विधि

(i) सर्वप्रथम आसन पर पेट के बल लेट जाना चाहिये।

(ब) लेटकर दोनों हाथों से दोनों पैरों को मोड़कर टखनों पर दोनों पैरों को पकड़ना चाहिये।

(स) श्वास भरते हुऐ , छाती, और जांघ को पृथ्वी से जितना ऊपर सम्भव हो उठाना चाहिये।

(द) इस खिचीं हुई अवस्था में पूरा शरीर नाभि के ऊपर संतुलित हो जाता है। श्वास छोड़ते हुऐ धीरे-धीरे पूर्व स्थिति में आ जाते है।

लाभ

- श्वास रोग, कंठरोग एवं फेफड़ों के रोग दूर होत है।
- छाती एवं पसलियां सशक्त होती है।
- रीढ़ की हड्डी विपरीत दिशा में मुड़ने के कारण लचीली बनती है।
- रीढ़ की हड्डी से निकलने वाली सेन्सरी नर्व एवं मोटर नर्व दृढ़ (ट्यून) होते है।
- भुजदण्डों, जंघाओं, पिण्डलियों पर अनुकूल तनाव रहता है तथा शुद्ध रक्त प्राप्त होता है।
- पाचन संस्थान के समस्त रोगों के लाभ हेतु यह सर्वश्रेष्ठ आसन है।
- इसे मेदोनाशन भी कहते है अर्थात मुटापा दूर करने वाला।
- पिट्यूटरी ग्रंथि कों छोड़कर शेष ग्रथियों का परिशोधन होकर पुष्ट स्राव करने में सक्षम होती है।
- क्लोम ग्रंथि का नियमन मधुमेह रोगियों हेतु लाभकारी है।
- स्नायुमंडल पुष्ट करता है। स्नायु रोगों की श्रेष्ठ चिकित्सा विधि है।
- इससे सम्पूर्ण स्नायु मण्डल पुष्ट होता है। वात रोग नाशक है।

- स्त्रियों के गर्भाशय और जरायु के संपोषण तथा विकास में सहायक है।
- सभी आयु वर्ग हेतु हितकारी आसन है।
- चिरस्थायी यौवन, एवं बुढ़ापा नहीं आता है।

सावधानियाँ

- शरीर लचीला होने तक दोनों घुटनों का अन्दर डेढ़ फुट की दूरी पर रखना चाहिये। तथा लचीलापन के साथ दूरी कम करते जाना चाहियें।
- ह्दय की धड़कन और उच्च रक्त चाप के उग्र रोग वाले इसका अभ्यास नहीं करें।
- पेप्टिक अल्सर और हार्नियां से पीड़ितों हेतु वर्जित है।
- कण्ठमाला के प्रकोप में, पकने फूटने के दौरान तथा बढ़े हुए घेघें में भी धनुरासन उचित नहीं है।

(vii) मत्स्येन्द्रासन (Spinal twist Pose)

वामोरूमूलार्पितद क्षपादं जानोर्बहिर्वेष्टित वामपादम्।

प्रगृहा्र तिष्ठेत् परिवर्तितांड श्री मत्स्यनाथोदितमासनं स्यात्।।

(ह.प्र. 1/28)

नामकरण

योगी गोरखनाथ जी नें अपने गुरू मत्स्येन्द्रनाथ के प्रति असीम श्रद्धा व्यक्त करने हेतु इसका यह नामकरण किया।

विधि

(i) बायी जाँघ (वामोरू) के मूल में दहिने पैर को रखकर बायें पैर को जानू से बाहर ले जाकर रखते है।

(ब) हाथ को घुटने के ऊपर से लपेटते हुए अंगूठे को पकड़ कर नीचे वाले पैर के विपरीत और कमर से ऊपर के सम्पूर्ण भाग को मरोड़ते है।

(स) इस आसन को दोनों पैरों से बदल-बदल कर करना चाहिये।

लाभ

- प्राणशक्ति स्थिर होती है तथा साधक मृत्यु पर विजय प्राप्त करता है।
- इस आसन का सर्वाधिक प्रभाव बड़ी आंत , छोटी आंत, लीवर, प्लीहा, आमाशय, मूत्राशय और क्लोम ग्रन्थियों पर पड़ता है। इस कारण ये अंग परिपुष्ट एवं स्वस्थ्य बनते है।

- मन्दाग्नि, अपचन, कोष्ठवद्धता, गैस उठना, तथा अन्यान्य उदर रोगों से मुक्ति मिलती है।
- किडनी, मूत्र नलिकाएँ और मूत्राशय मजबूत एवं व्यवस्थित क्रियाशील बनते है। शुक्राशय पुष्ट होता है अतः मूत्ररोग एवं धातु रोग दूर होते है।
- हार्नियाँ एवं मधुमेह रोगियों को यह आसन योग्य योग शिक्षक के निर्देशन में करना चाहिये। इससे शीघ्र लाभ होता है।
- कमर रोग एवं वात दर्द को दूर करता है। मेरूदंड को लचीला बनाता है।

साँवधानियां

- शरीर को मोड़ते समय रेचक कर वायु बाहर करें तथा पूर्णता की स्थिति में सांस सामान्य रखें। तथा आसन छोड़ते समय पूरक करें।
- ह्दय रोगी, उच्चरक्त चाप के रोगी , आमाशय वण या पक्वाशय व्र्रण के रोगीं यह आसन नही करें अन्यथा रोग बढ़ सकता है।

(viii) पश्चिमतानासन (Back stretching Pose)

प्रसार्य पादौ भुवि दंडरूपौ दोर्भ्यां पदाग्रद्वितयं गृहीत्वा।

जानूपरि न्यस्तललाटदेशो वसेदिदं पश्चिमतानमाहुः।।

(ह.प्र. 1/28)

नामकरण

पश्च अर्थात पीछे का तथा उत्तान आर्थात रिंवचाव जिस आसन से शरीर के पीछे एड़ी से चेथी तक सम्पूर्ण शरीर में खिंचाव (तान) होने से इसे पश्चिमतान आसन कहते है।

विधि

(i) सर्व प्रथम दोनों पैरो को सीधे फैलाकर बैठ जाते है।

(ब) दोनों हाथों को ऊपर पर्वतासन के समान खींचकर रेचक करते हुए धीरे धीरे दोनों हाथों से दोनों अंगूठों को पकड़ते है।

(स) पैर घुटनों से मुड़े नहीं तथा माथा घुटनों के ऊपर लगाने का प्रयास करते है।

(द) पूरक करते हुए हाथों को पुनः ऊपर उठाते हुऐ आसन को धीरे धीरे छोड़ते है।

लाभ

- कुण्डलिनी शक्ति विकास हेतु इसका अभ्यास महत्वपूर्ण है।
- प्राणवायु को पश्चिमदाहिनी (सुषुम्ना में स्थापित) कर देता है।

- जठराग्नि तीव्र करता है। तथा पेट के समस्त विकारों का शमन करता है। पाचन शक्ति बढ़ाता है। तोंद कम करता है।
- शरीर के पृष्ठवशं की मांसपेशियाँ स्वस्थ एवं लचीली बनती है। तथा मोटापा कम होता है।
- मधुमेह नाशक है।
- शरीर में स्फूर्ति मानसिक सन्तुलन एवं आध्यात्मिक शक्ति के विकास में सहायक है।

सावधानियाँ

- गर्भवती स्त्रियाँ तीन माह बाद इसे नहीं करें।
- आन्त्रवृद्धि, तिल्ली विकार, अल्सर आदि पेट के रोग तथा मेरूदण्ड से संबधित रोगों की स्थिति में इसका अभ्यास वर्जित है।
- जोड़ों में दर्द, सायटिका इत्यादि में वर्जित है।

(ix) मयूरासन (Peacock Pose)

धरामवष्टम्य करद्वयेन तत्कूर्पर स्थापितनाभि पाश्र्वः
उच्चासनो दण्डवदुत्थितः स्यान मायूरमेतत् प्रवदन्ति पीठ्म।।

(ह.प्र. 1/32)

नामकरण

इस आसन को लगाने पर शरीर की आकृति मयूर के समान दिखाई देती है इस कारण इसे मयूरासन कहते है।

विधि

(i) सर्वप्रथम उकंड़ू बैठकर दोनों हाथों को हथेलियों के पीछे की तरफ मोड़कर जमीन पर रख देते है।

(ब) दोनों हाथों की कोहनियाँ नाभी के अगल-बगल रखते है।

(स) सिर को आगे की तरफ झुकाते हुऐ पैरों एवं सिर को एक ही सम रेखा पर लाते है।

(द) इस अवस्था में शरीर हस्त दण्ड पर झूलता है जैसे मयूर का शरीर दोनों पैरो पर सन्तुलित होता है।

(इ) शरीर को ऊपर उठाते समय रेचक तथा शरीर को नीचे लाते समय पूरक करना चाहिये।

लाभ

- इस आसन से सर्वाधिक जोर उदर पर पड़ता है अतः उदर (पेट) के समस्त रोगों को दूर करने में सहायक है।
- उदरशूल, जलोदर, प्लीहा आदि तथा कफ, वात, पित्त, (त्रिदोष) के विकृत होने से उत्पन्न दोष दूर करता है।
- जठराग्नि इतनी तीव्र हो जाती है कि जहरीला पदार्थ भी पच (भस्म) जाता है।
- कमर तथा नितम्बों की मांसपेशियों को मजबूत करता है।
- रीढ़ प्रदेश की मांसपेशियों को मजबूत करता है। तथा पाश्र्वभाग के शूलों (दर्द) को दूर करताहै।
- मस्तिष्क की नाड़ियों पर प्रभावडालता है तनाव दूर करता है। तथा शारीरिक सन्तुलन की क्षमता बढ़ाता है।
- आध्यात्मिक लाभ हेतु श्रेष्ठ आसन है सभी योग के ग्रंथों में इसका संदर्भ प्राप्त होता है।
- यह एक रक्त शोधक आसन है। अतः त्वचा रोग दूर करता है। शरीर के अंगों में रक्तस्त्राव की वृद्धि करता है।
- मधुमेह में उपयोगी आसन है।

सावधानियां

- इस आसन को करने के बाद सिर के बल कीये जाने वाले आसन नहीं करना चाहिये।
- उच्च रक्तचाप, ह्दयरोग, हार्निया या पेट के घाव आदि के रोगी इसका अभ्यास नही करें।

(x) **सिंहासन (Lion's Pose)**

गुल्फौ च वृषणस्याधः सोवन्याः पाश्र्वयोः क्षिपेत्।
दक्षिणे सव्यगुल्फं तु दक्षगुल्फं तु सव्यके।।
हस्तौ तु जान्वोः संस्थाप्य स्वाङ्गुली संप्रसार्य च।
सिंहासनं भवेदेत त्यूजितं योगपुङ्.गवै।।
बन्धत्रियसंधानं कुरूते चासनोत्तमम्।।

(ह.प्र. 1/52, 53, 54)

नामकरण

इस आसन को लगाने पर सिंह के समान आकृति दृष्टव्य होती है। इसी कारण इसे सिंहासन कहते है।

विधि

(अ) सर्वप्रथम सीवनों के दोनों पाश्र्वो में टखनों को लगायें।

(ब) बाये पाश्र्व में दाया टखना लगाये।

(स) जानुओं के ऊपर हाथों के तलवें ठीक तरह से लगाकर हाथों की अंगुलियों के फैलाये मुख दहाड़ते हुऐ फैलाकर दृष्टि नासाग्र रखते है।

(द) सिंहासन के साथ तीनों बंधों को लगाया जाता है।

लाभ

- इस आसन से थायराइड एवं पैराथाइराड की कार्य क्षमता में वृद्धि होती है गले के़ नाक , कान के और मुंह के रोगों का शमन होता है।
- हकलाकर बोलने वालों के लिए एक श्रेष्ठ आसन है।
- इससे आवाज सुरीली एवं स्वास्थ्य कांतिमय बनता है।
- मूलबंध से अपानवायु को ऊपर खींचने से और उड्डियान तथा कुण्डलिनी का जागरण होता है।
- अण्डकोशों का बढ़ना रूक जाता है।
- मुंह पर पड़ी झुर्रियां नष्ट होती है।
- नेत्र ज्योति बढ़ती है।
- जालन्धर बंध लगाने से मन एकाग्र होता है भूख लगती है, पेट सम्बन्धी, वायुविकार नष्ट होते हैं।

सावधानियाँ

- इस आसन को सूर्य की ओर मुंह करके करना चाहिये।
- दोनों भुजाओं को सीधे रख थोड़ा आगे झुका रहना चाहिये।
- सिर पीछे की ओर उठाये रखकर ऊपर की ओर देखना चाहिये।

5.4 विश्रामात्मक आसन

योगासनों के अभ्यास के दौरान अथवा सामान्य थकान की अवस्था में विश्राम के लिए जिन आसनों का अभ्यास किया जाता है उन्हें विश्रामात्मक आसन कहते है। स्वात्माराम जी ने हठयोग प्रदीपिका में इस श्रेणी का केवल एक आसन रख है जिसे शवासन कहा जाता है।

(i) शवासन (Corpse Pose)

उत्तानं शववद् भूमौ शयनं तच्छवासनम्।
शवासनं श्रान्तिहर चित्तविश्रान्तिकारकम्।।

(ह.प्र. 1/34)

नामकरण

निश्चल शव के समान देहाकृति के कारण इसे शवासन नाम दिया गया है।

विधि

(i) पीठ के बल आसन पर चित्त लेटकर शरीर अंगों को निश्चल छोड़ देते हैं।

(ब) किसी भी अंग में तनाव नही होता तथा शरीर सीधा रहता है।

(स) क्रमशः शरीर अंगों को ध्यान देते हुऐ उन्हें ढीला छोड़ते जाते है।

(द) शरीर की मांसपेशियों को शिथिल अनुभव करते हुए ढीला छोड़ते जाते है।

(इ) विचार शून्य आंखें , स्थिर तथा धीमा श्वसन करते है।

लाभ

- श्वासन का अभ्यास सभी आसनों के बाद करने से उन आसनों से उत्पन्न थकान दूर होती है।
- उत्साह, कार्यशक्ति विकास, ऊर्जा का संचय नवजीवन प्राप्त होता है।
- तनाव तथा तनाव जनित रोग दूर होते है। जैसे- उच्च रक्तचाप , हृदय रोग, मधुमेह, अनिद्रा इत्यादि।
- स्वास्थ्य रक्षक आसन के रूप में श्रेष्ठतम आसन है।
- आमवात, पीठ की अकड़न, पीठ और कमर के दर्द को दूर करने हेतु सबसे सरल सहज आसन है।

सावधानियाँ

- इसे करने हेतु किसी विशेष सावधानी की जरूरत नहीं है।
- चिन्तन का प्रवाह नहीं होने देना चाहिये। भाव हीन निर्विचार स्थिति ही शवआसन है। अन्यथा लेटना मात्र रह जाता है।

5.5 ध्यानात्मक आसन

ध्यानात्मक आसनों से हमारा तात्पर्य उन आसनों से है जिन्हें -

(i) बैठकर लगाया जाता है।

(ii) आसनों के साथ सुगमतापूर्ण त्रिबंध लगाये जा सकते हो।

(iii) शरीर स्थिर एवं सुखमय स्थिति में लम्बे समय तक बना रहें।

(iv) कमर के ऊपर के समस्त अंगों को अधिकाधिक रक्त प्रवाह मिलता रहें।

(v) इनमें बैठकर लम्बे समय तक स्थिरता पूर्वक एवं आनंद पूर्वक लम्बे समय तक मन की चंचलता को बांधें रखा जा सके और घ्यान की गहराईयों में शारीरिक आवश्यकताएँ ही न हो।

स्वात्माराम जी ने हठप्रदीपिका में ऐसे चार ध्यानात्मक आसनों का वर्णन किया है। ये निम्नांकित है-

(i) स्वास्तिक आसन

(ii) सिद्धासन

(iii) पद्मासन

(iv) भद्रासन

(i) स्वास्तिक आसन (Auspicious Pose)

जानूर्वोरन्तरे सम्यककृत्वा पादतले उभे।
ऋजुकायः समासीनः स्वास्तिकंतत् प्रचक्षते।।

(ह.प्र. 1/21)

नामकरण

इस आसन को लगाने पर शरीर की आकृति चिन्ह के समान बनती है इस कारण इसे स्वास्तिकासन कहते है। जानु और उरू (जंघाओं) के मध्य में पैरों के तलबों को अच्छी तरह लगाकर समान अवस्था में शरीर एकसीध में रखकर बैठ जाय यही स्वास्तिक आसन कहलाता है।

विधि

(i) दोनो पैरों को फैलाकर बैठ जाय।

(ब) दायें पैर के अँगूठे और शेष चार अँगुलियों को कैंची की तरह फैलाकर उसके अन्दर बायें पैर और जंघा के जोड़ वाले निचले भाग को दबाये।

(स) दाहिने पैर का तलवा बायी जंघा के साथ लगाये , इसी तरह बायें पैर को दाये पैर के नीचे ले जाकर अँगूठे और अंगुलियों की कैची में दायां पैर और जंघा को जोड़ने वाले भाग को दबाये और बायें पैर का तलबा दाहिनी जांघ के साथ लगाये।

लाभ

- इस आसन से साधक वायु का साधन यथाशीघ्र करने में सफल होता है।
- यह सुखकारक आसन है राजयोग साधना हेतु सामान्य आसन है।
- मन स्थिरता प्राप्त करता है और प्राणायाम की सिद्धि शीघ्र होती है।
- मेरूदण्ड सीधा एवं स्थिर होने से ध्यान शीघ्र लगता है।
- वीर्य उर्ध्वा मुखी होता है तथा ब्रह्मचर्य की शक्ति बढ़ती है।

सावधानी

- यह आसन मेरूदण्ड के निचले हिस्से में दर्द या पीड़ा होने पर नहीं करना चाहिये।
- साइटिका की शिकायत में भी इस आसन को नहीं करना चाहिये।

(ii) सिद्धासन (Adept's Pose)

योनिस्थानकमड्.घ्रिमूलधटितं कृत्वा हठ बिन्यसे।
न्येद्रे पादमथैकमेव हद्र्ये कृत्वा हनुं सुस्थिरम्।।
स्थाणुः संयमितेन्द्रियोचलदृशापश्येद् भ्रूवोरन्तरम्।
हयेतन्मोक्षकपाटभेदजनकं सिद्धासनं प्रोच्यते।।

(ह.प्र. 36,37)

नामकरण

अनेक सिद्धों ने इस आसन में सिद्धि प्राप्त की है। साधकों को शीघ्र सिद्धि प्रदान करवाने में सहायक इस प्रकार का सहज आसन होने से इसे सिद्धासन नाम से जाना जाता है। इसकी सिद्धि का महत्व इस आसन के गोरक्षसंहिता और धरेण्डसंहिता से शब्दशः सामान वर्णन से स्वयं ही सिद्ध हो जाता है। योनिस्थान में बायें पैर की एड़ी को मिलाये तथा दायें पैर को लिंगन्द्रिय के ऊपर दृढ़तापूर्वक स्थिर कर तथा ह्दय के निकट ठोढ़ी को अच्छी तरह स्थिर कर निश्चित होकर इन्द्रियों को संयमित कर दृष्टि दोनों भौहों के मध्य में स्थापित करे।

विधि

(i) सर्वप्रथम दौनों पैर फैलाकर बैठ जाते है।

(ब) अब बाये पैर की एड़ी को गुदा और अंडकोश के मध्य सीवन-स्थल पर सटा लेते है। ऐसा करने पर पाव का तलवा जाँघ को स्पर्श करना चाहिये।

(स) इसके बाद दाहिनें पैर की एड़ी को शिशन के ऊपर के भाग में दृढ़ता से लगाते है। हाथ ज्ञान मुद्रा में रखते है।

(इ) इसके बाद रीढ़ , गर्दन और सिर को सीधा करके नेत्र दृष्टि को नासिका के अग्र भाग पर स्थिर करते है। ठोढ़ी लगाकर ह्दय के ऊपर स्थिर करते हैं।

(ई) दोनों हाथों की तर्जनी अंगुलि को मोड़कर अंगुठे मूल में लगाते है और शेष तीन अंगुलियों को परस्पर मिलाकर दोनों घुटनों पर स्थापित करते है।

इसमें ध्यान यह रखना होता है कि दोनों एड़ियां ठीक एक के ऊपर एक रहें।

लाभ

- इसे मोक्ष मार्ग के कपाट (द्वार) खोलने वाला आसन कहा गया है। यह स्मृति विकास कि लिए एक श्रेष्ठ आसन है।
- यह आसन शारीरिक , मानसिक तथा आध्यात्मिक शक्ति बढ़ाने में सहायक महत्वपूर्ण सरल आसन है।
- सिद्धासन के सिद्ध हो जाने पर अन्य आसनों को सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं रह जाती है।
- सीवनी नाड़ी पर दबाब पड़ने से कामवासना शांत होती हैं तथा ब्रम्हचर्य बना रहता है।
- स्नायु संस्थान को शान्त स्थिर और सशक्त बनाता है तथा प्राण और मन पर संयम रखता है।
- इसके द्वारा कास, श्वास, प्रतिश्याय (जुकाम) ह्दय-रोग, अतिसार, पेचिस, स्वप्न दोष आदि नष्ट होते हैं।

सावधानियाँ

- यह आसन स्त्रियों के लिए विर्जित है।
- इसके अभ्यास काल में मिताहार तथा गौ दुग्धपान करना चाहिये।
- साइटिका और रीढ़ के नीचे के विकारों से ग्रस्त व्यक्ति को यह आसन वर्जित है।
- बच्चों तथा नवविवाहित युवाओं को यह आसन वर्जित है।

(iii) पद्यमासन (Lotus Pose)

वामोरूपरिदक्षिणं च चरणं संस्थाप्य वाम तथा,

दक्षोरूपरिपश्चिमेन विधिना धृत्वा कराभ्यां दृढ़म्।

अड्.गुष्ठौ ह्द्रये निधाय चिबुकं नासाग्रमालोक्ये,
देतद्व्याधिविनाशकारि यमिनां पद्मासनं प्रोच्यते।।

(ह.प्र./46)

नामकरण

इस आसन को लगाने के बाद साधक की शरीर स्थिति पद्य अर्थात कमल के पुष्प के समान दिखाई देने से इसे पद्मासन कहा जाता है।

विधि

(i) सर्वप्रथम दोनों पैरों को फैलाकर बैठ जाते है , मेरूदण्ड सीधा रखते है।

(ब) दाहिने पैर को उठाकर दाहिनी जांघ पर रखते है। दोनों पैरों की एड़िया कूल्हें की हड्डी के किनारे पर स्पर्श करती रहें।

(स) हाथ अंजलि बनाकर या ज्ञान मुद्रा या चिन मुद्रा में रखते है। दृष्टि भूमध्य या नासाग्र रखते है।

(द) पद्यमासन के कई प्रभेद है जैसे- (1) अर्द्धपद्मासन् (2) बद्धपद्मासन (3) उत्थितपद्मासन (4) गुप्तपद्मासन आदि।

लाभ

- पैरों की नस नाड़िया शुद्ध होती है।
- यह आसन प्राणशक्ति को मूलाधार चक्र (गुदा एवं जाननेन्द्रिय के मध्य) से सहस्रारचक (सिर के ऊपरी भाग में) तक उचित रूप से प्रवाहित करता है। कुण्डलिनी जागरण में सहायक है।
- रीढ़ के निचले भाग एवं आमाशय में फैले स्नायु-जाल को अतिरिक्त रक्त पहुंचाकर पुष्ट करता है।
- यह आसन आमाशय को खून की अतिरिक्त आपूर्ति करता है।
- यह आसन शारीरिक, स्नायविक, एवं भावनात्मक विकारों के सामंज्य हेतु सहायक है।
- इसके अभ्यास से जठराग्नि तीव्र होती है तथा भूख बढ़ती है।
- फाइलेरिया, गठिया, आमवात तथा जनन रोगों को ठीक कर देता है। दमा एवं मिर्गी रोग दूर हो जाते है।
- सुषुम्ना को सक्रिय करने मन को स्थिर एवं एकाग्र करने में सहायक आसन है।

सावधानियाँ

- पैरों पर पर्याप्त लोच आने के बाद करना चाहिये।
- साइटिका, मेरू रज्जु के पास दर्द या अन्य रोगों की स्थिति में नहीं करना चाहिये।
- इसका अभ्यास धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिये।

(iv) भद्रासन या गोरक्षासन (Gracious Pose)

गुल्फौ च वृषणस्याधः सीवन्याः पाश्र्वयोः क्षिपेत्।
सव्यगुल्फं तथा सव्ये दक्षगुल्फ तु दक्षिणे।।
पाश्र्वपादौ च पाणिभ्यां दृढं वद्धवा सुनिश्चिलेम्।
भद्रासन भवेदेतत्सर्व व्याधिविनाशनम्।।

(ह.प्र. 55, 56)

नामकरण

इस आसन में शरीर की स्थिति भद्र पुरूष के समान दिखाई देती है इस कारण इसे भद्रासन कहते हैं।योगी एवं सिद्धसाधक इसे गोरक्षासन भी कहते है।

विधि

(i) सर्वप्रथम दोनों पैरों को सामने फैलाकर बैठ जाते है।

(ब) पैरों के पंजों को जमीन छूते हुये दोनों हाथों से पकड़कर दोनों एड़ियां मिलाते हुए सीवनी नाड़ी से स्पर्श करवाते है।

(स) दोनों हाथों से पैरों को पकड़कर घुटनों को जमीन में लगाकर आसन को दृढ़ करने का प्रयास करते है।

लाभ

- यह आध्यात्मिक विकास का आसन है। इससे मूलाधार चक्र उत्तेजित होता है।
- सभी प्रकार की ब्याधियों का नाश करने वाला है।
- ब्रम्हचर्य व्रत पालन में सहायक। वीर्यवाहिनी नाड़ियों के आवांछनीय क्षोभ को दूर करता है।

- समस्त प्रमेह रोगों , स्वप्नदोषों, तथा वीर्य रक्षा और शुक्र के कष्ट करने में सहायक आसन है।
- स्त्रियो के गर्भाशय को पुष्ट करता है। बुढ़ापा दूर करता है। मासिक धर्म की अनियमितताये, कष्टार्तव अत्यातव, ल्यूकोरिया, कटिशूल आदि कष्टदायी रोगों को दूर करता है।
- काम तरंगों के नियंत्रण एवं जननांगों के विकास में सहायक है।
- आत्मबल, आत्मचेतना, और इच्छा शक्ति को बढ़ाता है। आत्मनिर्भरता एवं सक्रियता बढ़ाता है।
- विद्यार्थीयों के लिए अत्यंत लाभदायी है। उर्ध्वछरेता बनता है। वातनाशक है।
- इसे लगाकर आभा चक्र पर ब्रह्य ज्योति का ध्यान करने से सहज ही मनोलय प्राप्त होता है।

सावधानियाँ

- गोरखनाथ जी भद्रासन का अभ्यास करते थे। इस कारण इसे गोरक्षासन भी कहा गया है। घेरण्डमहर्षि इसे और गोरक्षासन को पृथक पृथक बतलाते है।
- पर्याप्त लचीले पैर होने पर लम्बा अभ्यास करना चाहिये।
- मिताहार एवं नियमित दिनचर्या से 1 वर्ष में आसन सिद्ध हो जाता है।

5.6 सारांश

प्रस्तुत इकाई में शरीर संवर्धनात्मक 10 आसन, विश्रामात्मक आसन एवं ध्यानात्मक आसन की विधि उनके शारीरिक एवं मानसिक लाभ तथा सावधानियों का वर्णन किया गया है।

5.7 बोधातमक प्रश्न

1. गोमुखासन, वीरासन, धनुरासन की विधि एवं लाभों का वर्णन कीजिए।

2 मत्स्येन्द्रासन एवं मयूरासन की विधि एवं लाभों का वर्णन कीजिए।

3 ध्यान के आसनों का वर्णन कीजिए।

4 शवासन की विधि एवं लाभ का वर्णन कीजिए।

5 सिद्धासन की विधि एवं लाभ का वर्णन कीजिए।

6 भ्रदासन की विधि एवं लाभ का वर्णन कीजिए।

5.8 संदर्भ ग्रंथ

- अष्टांग योग -चरणदास अनुवादक , श्री ओ. पी. तिवारी , प्रकाशक कैवल्यधाम-एस. एम. वाई. एम. समिति , कैवल्यधाम लोनावाला पूना
- योग परिचय-डॉ पीताम्बर झा, प्रका. गुप्ता प्रकाशन डी-35 साउथ एकसटैंशन भाग I नई दिल्ली - 49
- योग और अनुसंधान स्वामी कुवलयानन्द, कैवल्यधाम लोनावाला पूना 410403
- साधना स्वामी शिवान्द , दिव्य जीवन संघ , पत्रालय शिवानन्द नगर 249192 , जिला टिहरी गढ़वाल हिमालय (उ.प्र.)
- राजयोग स्वामी विवेकानंद, अद्धैत आश्रम, 5-देही एन्टाली रोड, कलकत्ता - 700014
- लाईट ऑनयोग महर्षि अरविंद, अरविंद आश्रम पाण्डिचेरी
- योग का परिचयात्मक - डॉ ओमनारायण तिवारी स्वरूपप्रकाशक पं. सुन्दरलाल शर्मा (मुक्त) विश्वविद्यालय छत्तीसगढ़, बिलासपुर (छ.ग.)
- Secrets of Hatha Vidya - Dr. Vijayendra pratap SKY FoundationPhiladelphia Pennsylvania U.S.A.
- योगासन एवं हठयोग विज्ञान - डॉ. ओम नारायण तिवारी, विलासपुर (छत्तीसगढ़)
- पतनजल योग दर्शन - डॉ. नित्यानन्द शर्मा, कोटा (राजस्थान - 324005)

इकाई -6

हठ योग एवं नाड़ी शुद्धि का वैज्ञानिक स्वरूप

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.2 प्रस्तावना

6.3 हठ योग प्रदीपिका में प्राण वायु का स्वरूप

6.4 हठ योग प्रदीपिका में षट्कर्म का स्वरूप

6.5 हठ योग प्रदीपिका में प्राणायाम का स्वरूप

6.6 सारांश

6.7 बोधात्मक प्रश्न

6.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

6.0 उद्देश्य

- हठ योग प्रदीपिका में प्राण वायु का स्वरूप
- हठ योग प्रदीपिका में षट्कर्म का स्वरूप
- हठ योग प्रदीपिका में प्राणायाम का स्वरूप

6.2 प्रस्तावना

हठयोग द्वारा इंद्रियों पर नियंत्रण कर सकने की क्षमता मनुष्य को अन्य प्राणियों से श्रेष्ठ एवं पृथक अस्तित्ववान् बनाती है। इंद्रियों पर नियंत्रण मन के नियंत्रण द्वारा संभव है और मन है कि सतत् गतिशील और चंचल। इस चंचल मन को पकड़ने का साधन हमारी श्वास है। श्वास ग्रहण करने की तकनीक का विज्ञान हठयोग विज्ञान है। इस श्वास ग्रहण करने के हठयौगिक तरीकों के द्वारा हम प्राणशक्ति का आयाम एवं उसका नियंत्रण कर सकते है। इसी कारण हठयोग विज्ञान को प्राण विज्ञान भी कहते है। प्राणों की साधना की व्यवहारिक (i)ति समस्त जगत् को भारत द्वारा दी गई अमूल्य देन है। सभी योगों के प्रकारों में हठयोग के किसी न किसी अंग का प्रयोग अवश्य हो ही जाता है। साथ ही हठयोग साधना केवल बौद्धिक या आध्यात्मिक स्तर पर न होकर व्यक्ति के स्थूल शरीर पर भी प्रभाव करती है। एवं शरीर को प्रकृतिक रूप में स्वस्थ बने रहने में सहायता करती है।

6.3 हठ योग प्रदीपिका में प्राण वायु का स्वरूप

हठयोग साधना का मूल आधार प्राण साधना है। अतः हठयोग के अर्थ में वायु शब्द के अर्थ को स्पष्ट समझ लेना अत्यावश्यक होता है। यहाँ हम वायु शब्द के विविध अर्थ एवं उनके प्रयुक्त अर्थो की

जानकारी प्राप्त करेगें , जिससे प्राण साधना के लिए वायु की स्पष्ट संकल्पना का ज्ञान हमें हो सके। समान्यतया वायु से हम पंच तत्वों में एक तत्व हवा (गैसों का सम्मिश्रण) के अर्थ को ग्रहण करते है। किन्तु हठयोग प्रदीपिका एवं योगविज्ञान के अन्र्त गत वायु शब्द का प्रयोग उस हवा के लिए किया जाता है, जो श्वास-प्रश्वास के रूप में शरीर के भीतर-बाहर आती-जाती है। इतना ही नहीं , कहीं-कहीं तो इससे भी आगे शरीर के अन्र्तवगत स्थायी रूप से विद्यमान एवं शरीर संचालन में प्रमुख तत्व प्राण के लिए भी वायु शब्द का प्रयोग होता है। योग विज्ञान में यह सिद्धांत सुस्थापित है कि इस प्रत्यक्ष जीवन क्रिया के पीछे एक अति महत्वपूर्ण परोक्ष जीवन क्रिया है। योग विज्ञान में प्राण अथवा इसके पर्यायवाची वायु , वात, समीर, मारूत आदि शब्द का प्रयोग बाह्य श्वसन क्रिया के विषय में जब भी किया जाता है। तब उससे सदैव जैविक क्रिया का भी ध्यान रखा जाता है।

हठप्रदीपिका के द्वितीय उपदेश में प्राणायाम प्रकरण के अन्र्तसगत इसी ''वायु'' के बारे विशद् विवेचना उपदेशित की गई है जो निम्नलिखित है।

चले वाते चलं चितं निश्चले निश्चलं भवेत्।
योगी स्थाणुत्वमाप्नोति ततो वायुं निरोधयेत्।।

(ह.प्र. 2/2)

हठप्रदीपिका में वायु का अर्थ प्राण तत्व से लिया गया है उपरोक्त उपदेश के अनुसार जब तक प्राणवायु चंचल बनी रहती है अर्थात अस्थिर रहती है तब चित भी चंचल बना रहता है। प्राणवायु के स्थिर हो जाने पर चित्त भी निश्चल अर्थात चंचल गति के स्थिर होने पर स्थिर या निश्चल हो जाता है। और साधक चित स्थिर होने से एकाग्रता से युक्त होकर व्यक्ति स्थिरता को प्राप्त करता है। इसलिये वायु का निरोध (श्वास-प्रश्वास का भौतिक संयमन या नियमन) करना चाहिये। वायु के निरोध से चित्त स्थाणुरूप को प्राप्त होता है। जब तक वायु (प्राण) इस शरीर में है, तभी तक जीवन भी है, अतः इस प्राण को निकलने न देकर कुम्भक का अभ्यास बढ़ाना चाहिये, जिससे जीवन बना रहे और जीवन में स्थिरता बनी रहें।

यावद् वायुः स्थितो देहे तावज्जीवनमुच्यते।
मरणं तस्य निष्क्रान्तिस्तता वायुं निरोधयेत्।।

(ह.प्र. 2/3)

वायु एवं उन्मनीभाव

जन्म के बाद मनुष्य जैसे-जैसे मनोआवेगों एवं संवेगो से ग्रसित होता जाता है वैसे-वैसे ही असावधानी के कारण या स्वयं ही अपने आप श्वास-प्रश्वास लेने छोड़ने की आदत के कारण प्रत्येक व्यक्ति का श्वास-प्रश्वास जितने समय में होना चाहिए उससे कम समय में होता है। इस प्रकार श्वास-प्रश्वास की गति बढ़ने से चित्त या मन भी चंचल रहा ही करता है। इसी कारण 'आयु' का भी क्षय शीघ्रता से होता रहता है। इस प्रकार योग विज्ञान ने यह सिद्धांत प्रतिपादित किया कि यदि सावधानी से धीरे-धीरे श्वास-प्रश्वास का अभ्यास बढ़ाया जाय और उसे नियंत्रित तरीके से रोकने का अभ्यास किया जाये , तो परिणाम स्वरूप

श्वास-प्रश्वास धीरे-धीरे (मन्द मन्द) लेने-छोड़ने की आदत बनने लगती है। श्वसन क्रिया जितनी गहरी एवं मंद होगी उतना ही जीवन क्रम भी लम्बा होगा अर्थात जीवन क्रिया क्षय होने का क्रम मन्द होगा। इसी सिद्धांत के आधार में श्वास-प्रश्वास का नियन्त्रण करने तथा पर्याप्त समय तक उसको रोक रखने (कुम्भक) से आयु के भी बढ़ने की सम्भावना बनी रहती है। इसी कारण योग में कुम्भक (प्राणायाम) का महत्व वायु निरोध (नियमन) के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारक माना जाता है।

जब तक शरीर की नाड़ियों में मल (विकार) उपस्थित है तब तक सुषुम्ना अर्थात मध्यनाड़ी में वायु का संचार नहीं हो पाता है और तब तक वायु (प्राण) ऊपर की ओर (सुषुम्ना नाड़ी में) संचारित नहीं होते है। इसलिए मन का उन्मनीकरण (उन्मनीभाव) नहीं हो सकता और तब तक साधक हठयोग की प्राप्ति भी नहीं कर पायेगा। आर्थात उसकी योगसाधना (मनोन्मनीभाव) का कार्य सिद्ध नहीं हो सकेगा।

मलाकुलासु नाडीषु मारूतो नैव मध्यगः।

कथं स्यादुन्मनीभावः कर्मसिद्धिः कथं भवेत्।।

(ह.प्र. 4/2)

यहाँ यह बात भी साधकों को विशेष ध्यान देने की है कि शरीर या शरीरस्थ नाड़ियों में यदि पहले से विकार या अपद्रव्य या गन्दगी भरी है तब तक कुम्भंक का अभ्यास लाभ के बदले हानि भी कर सकता है। अतः सभी नाड़ियों सहित शरीर की शुद्धि होकर शरीर शुद्ध होता है और साथ-साथ अनेक प्रकार के शारीरिक रोग भी दूर होते हैं। किन्तु कदाचित् किसी प्रकार की गलती इस अभ्यास में हुई तो परिणाम स्वरूप अनेकों बिमारियां उत्पन्न होने की सम्भावना भी रहती है। इस कारण नाड़ियों की शुद्धि अत्यन्त आवश्यक है।

हठयोग प्रदीपिका में नाड़ी शुद्धि

प्राणसंग्रहण

हठयोग में नाड़ी शुद्धि का साधना की दृष्टि से अत्यन्त महत्व है। नाड़ी के अनेक अर्थ है। नाड़ी शब्द स्त्रीलिंग का वाचक है। नाड़ी (नद + णिच् + इन) आर्थात् धमनी या शिरा की भांति वाहिकाओं के आकार का शरीर का अंग या हाथ पैर की नब्ज से लिया जाता है।

गव्यर्थक नद या नाद् धातु के सन्दर्भ में नाड़ी शब्द का अर्थ है गतिशील होना या प्रवहनशील होना। योगविज्ञान के ग्रन्थों में नाड़ी शब्द का प्रयोग ऐसे अंगों के लिए हुआ है, जो खाद्यपदार्थ, पेय, रक्त, लसिका, वायु और नाड़ी संवेगों के परिवहन के लिए बड़े या छोटे मार्ग के रूप में कार्यशील होते हैं। शरीर में इस प्रकार के नाड़ी जालों की संख्या अनन्त मानी गई है किन्तु इन्हें मौटे तौर पर बहत्तर हजार की संख्या में सीमित किया गया हैः-

द्धासप्ततिसहस्त्राणां नडीनां मलशोभने।

कुतः प्रक्षालनोपायः कुंडल्यभ्यसनादृते।।

(ह.प्र. 3/123)

उपरोक्त वर्णित 72 हजार नाड़ियों के द्वारा वायु (प्राण) के धक्के से शरीर में से सभी पदार्थ प्रवाहित होते रहते है। यदि शरीर में मल या अशुद्धियां होगी तो इन प्रवाहों के साथ वे भी प्रावाहित होकर शरीर के दूरस्थ अंगों में विकार या रोग उत्पन्न करेगें। विशेषकर योग साधना में कुम्भक (प्राणायाम) के अभ्यास के समय शरीर एवं नाड़ी समूह पूर्णतः शुद्ध रहना आवश्यक है अन्यथा कुम्भक (प्राणायाम) की स्थिति में शरीर के अन्दर धुमड़ते हुए आन्तरिक प्रवाहों के साथ मिलकर जिन अंगों की ओर गति करेंगे उनमें विकार उत्पन्न करेंगे। इस कारण स्वात्माराम जी प्राणसंग्रह की बात करते है।

शुद्धिमेति यदा सर्व नाड़ीचक्र मलाकुलम्।
तदैव जायते योगी प्राणसंग्रहणे क्षमः।।

(ह.प्र.2/5)

अर्थात जब शरीर के मलों (शारीरिक दोषों और विकारों) का पूरी तरह शोधन हो जाता है इस स्थिति में सम्पूर्ण नाड़ीचक्र जब विकार एवं दोष रहित हो जाता है तब साधक प्राण संग्रह करने (प्राणो को एक जगह रोकने) योग्य हो जाता है। वायु (प्राण) इसके नियंत्रण में हो जाते है अतः ऐसा उपदेश है कि प्राणसंग्रह के लिये नियमित वायुनियमन (प्राणायाम) करने से ही सम्पूर्ण नाड़ी मंडल शुद्ध हो जाता है और बिना रूकावट (अवरोध) के प्राणों की गति सम्पूर्ण शरीर में होने लगती है यही प्राण संग्रह की स्थिति होती है। जिसमें सम्पूर्ण शरीर प्राणायाम हो जाता है। पूर्ण प्राण मय स्थिर चित साधक योग की उच्च्च स्तरीय साधना (राजयोग) के लिये सक्षम हो जाता है।

नाड़ियों का अन्तः शोधन

हठयोग प्रदीपिका में नाड़ियों के शोधन की व्यवहारिक प्रक्रिया बड़े विस्तार पूर्वक वर्णित की गई है। श्लोक 2 + 6 से 2/20 तक नाड़ी शोधन की आन्तरिक प्रक्रिया का वर्णन है। प्राण संग्रह हेतु साधक को सात्विक (निर्मल,पवित्र) बुद्धि से नित्य प्राणों को आयाम (विस्तार) देना चाहिये , ऐसा करने से 72 हजार नाड़ियों में से प्रमुख इडा पिंगला एवं सुषुम्ना है। ये नाड़ियाँ शुद्ध होकर मध्यनाड़ी (सुषुम्ना में) में प्राण प्रवाहित कर सकने के करीब जब साधक पहुंचता है तब तक शरीर के समस्त विकार दूर हो जाते है सुषुम्ना में प्रवाहित प्राण अन्र्तसनाद की ओर बढ़ने लगता है।

नाड़ी शोधन प्रक्रिया

(1) योगी (साधक) को पद्मासन में बैठकर प्राणवायु को चन्द्रनाड़ी (बायी नासिका से , इडानाड़ी) द्वारा भीतर खींचकर यथाशक्ति अन्दर रोककर (खींचकर) उसे सूर्यनाड़ी (दाहिनी नासिका से , पिंगला नाड़ी) के द्वारा धीरे-धीरे बाहर निकाल देना चाहिये। देखे चित्र क्र.26 एवं 27।

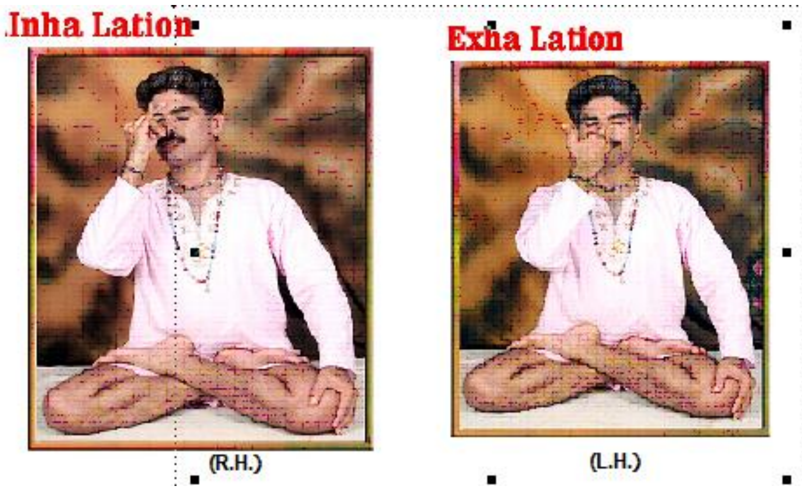

नोटः- बन्धों के माध्यम से प्राण का भीतर निरोध करना कुंभक (पूरक) कहलाता है। और इस निरोधित वायु (प्राण) को बाहर निकालना रेचक कहलाता है। इस प्रकार नाड़ी शोधन प्राणायाम स्वात्मारामजी की अपनी विशिष्टता है।

(2) सूर्य नाड़ी (पिंगला , दहिनी नासिका से) से प्राण वायु को धीरे-धीरे खींच कर उदर (पेट) को उससे भरना चाहिये। इसके बाद विधिवत् कुम्भक कर चन्द्रनाड़ी (इडा, बांयी नासिका सें) रेचक (बाहर) करना चाहिये।

(3) जिस नाड़ी (इडा या पिंगला) से प्राणवायु बाहर निकाले उसी से फिर प्राणवायु भीतर खींचकर धीरे-धीरे धारण कर उसे दूसरी नासिका से बाहर निकालना चाहिये। इसकी विधि यह है कि जिस नसिका से वायु बाहर निकाली जाय , उसी नसिका से वायु-भीतर खींचकर दूसरी नासिका से बाहर निकालना चाहिये। संक्षेप में इसकी विधि यह है कि जिस नसिका से वायु बाहर निकाली जाय, उसी नसिका से वायु भीतर खींचकर दूसरी नसिका से बाहर निकालना चाहिये।

(4) पद्मासन लगाकर योगी जब इडा नाड़ी -बायीं नासिका से प्राणवायु को भीतर (पेट के अन्दर खींचकर) भरता (पूरक) है उस नियमित (भीतर स्थित) वायु को दायीं नाड़ी (पिंगला) से बाहर निकालना चाहिये। यदि सूर्य नाड़ी-दाँयीं नासिका से उस वायु का पान (पूरक) करता है तो उस स्थिति में वायु को बायीं नासिका से बाहर निकाल देना चाहिये , इस तरह सूर्य और चन्द्र नाड़ी (दांयी-बांयी नासिका के अनुक्रम सें) विधि पूर्वक प्राणायाम का अभ्यास करते हुये साधक की नाड़ियां तीन माह में कुछ (निर्मल) या मलरहित हो जाती है।

(5) योगी (साधक) को दिन एवं रात की सम्पूर्ण अवधि (24 घन्टें में) चार बार क्रमशः प्रातः मध्यान्ह (दोपहर) सांयकाल एवं अर्धरात्रि के समय धीरे-धीरे (प्रत्येक बार में) 80-80 कुम्भक प्राणायाम करना चाहिये।

(6) प्राणायाम के अभ्यास के अनुसार इसे स्वात्माराम जी ने तीन श्रेणियों में विभाजित किया है।

(i) कनिष्टः- अल्पकालीन साधारण कोटि के प्राणायाम का अभ्यास करते समय योगी (साधक) के शरीर में पसीना आ जाता है।

(ii) मध्यमः- कनिष्ट से कुछ ज्यादा समय के प्राणायाम के अभ्यास से साधक को कम्प का अनुभव होता है।

(iii) उत्तमः- मध्यम से कुछ ज्यादा समय के प्राणायाम के अभ्यास से साधक ब्रम्हरन्ध्र में प्राण स्थिर कर उत्तम स्थान प्राप्त कर सकने में सक्षम हो पाता है। इस कारण प्राणवायु को स्थिर करने का प्रयास सतत् करना चाहिये।

(7) प्राणायाम के अभ्यास से उत्पन्न स्वेद (पसीना) को शरीर में मलना चाहिये। जिस प्रकार तेल से मालिश की जाती है। इससे शरीर में दृढ़ता , शक्ति और लघुता (जड़ता का अभाव) स्फूर्ति पैदा होती है।

(8) प्राणायाम की साधना के दौरान अभ्यासी को दूध और घी आदि से युक्त (पौष्टिक) भोजन करना चाहिये। जब अभ्यास उत्तम कोटि में आ जाय तब ऐसे नियम पालन की आवश्यकता शेष नहीं रह जाती है।

(9) प्राणायाम धीरे-धीरे उसी प्रकार वश में हो पाता है जिस प्रकार वन के सिंह , हाथी, बाघ (पालने वाले के वश में) धीरे-धीरे वश में आते है। शीघ्रता करने पर पाँलने वाले को ही मार डालते है। ठीक इसी प्रकार प्राणायाम के) क्रमशः धीरे-धीरे अभ्यास से प्राणवायु वश में हो जाती है। शीघ्रता या नियम विरूद्ध प्राणायाम करने से साधक का प्राणन्त भी इससे संभव है। अतः इसका सदैव ध्यान रखना चाहिये।

(10) विधि पूर्वक किये गये प्राणयाम से सभी रोगों का शमन-नाश हो जाता है यदि अभ्यास में सही प्रक्रिया (आवश्यक बन्धादि तथा मिताहार अदि के घटकों आदि) का पालन नहीं किया जाता तो इस तरह के विधिरहित अभ्यास से सभी प्रकार के रोग उत्पन्न होने की संभावना रहती है सही विधि या प्रक्रिया के बिना प्राणायाम करने से वायु कुपित हो उठती है और इससे हिक्का-हिचकी, खांसी, श्वास, कानों, आंखों और सिर में दर्द जैसे अनेक रोग उत्पन्न हो जाते है।

(11) विधिपूर्वक धीरे-धीरे वायु का रेचन करना आवश्यक है। वायु को यथाक्रम नासिका छिद्रों से निकालना चाहिये। इसी प्रकार युक्ति पूर्वक समान रूप से वायु को पेट में भरना (पूरक) चाहिये। सांवधानी रखना चाहिये कि ऐसा न होनें पावे की एक बार ज्यादा वायु ले दूसरी बार कम या और ज्यादा ले ले। साथ ही कुम्भक के साथ बन्ध का प्रयोग भी करना चाहिये। इस प्रक्रिया से सही सतत् अभ्यास हठ् सिद्ध प्राप्त करवाता है।

(12) विधि पूर्वक प्राणायाम से जब नाड़ियों का शोधन होता है तो नाड़ियां निर्मल हो जाती है। और योगी के शरीर में स्फूर्ति और चेहरे में कान्ति उत्पन्न हो जाती है। शरीर हल्का एवं लावण्य युक्त हो जाता है। यह निश्चित बात है कि नाड़ीशुद्धि के परिणाम स्वरूप वायु (प्राण) का भीतर देर तक रोके रख सकने की क्षमता बढ़ती है। इससे मन्दाग्नि नष्ट होकर जठराग्नि तीव्र होती है। धीरे-धीरे साधक आरोग्य लाभ कर नादश्रवण की ओर उन्मुख होता है।

6.4 हठ योग प्रदीपिका में षट्कर्म का स्वरूप

नाड़ियों का बर्हिः शोधन (षट्कर्म)

नाड़ियों के बार्हिः शोधन का तात्पर्य स्थूल शरीर की शुद्धि से है। जिस साधक में भेद (चर्बी) और कफ (दोष) की अधिकता हो , उसे प्राणायाम के अभ्यास (अन्तः नाड़ी शोधन के पूर्व) के पूर्व नाड़ियों का बर्हिः शोधन करना आवश्यक हो जाता है। जिससे शरीर के त्रिदोष वात-पित्त-कफ एवं मोटापा का नियमन हो जाता है।

हठयोग प्रदीपिका में स्वात्माराम जी ने निम्नलिखित षट्कर्मा ों का विधान बतलाया है। ये निम्नलिखित है-

हठयोगप्रदीपिका में षट्कर्म

1	2	3	4	5	6
धौती	वास्ति	नेत्ति	त्राटक	नौली	कपालभाति

जिस हठ्योग के साधक में मोटापा ज्यादा हो (चर्बी या मेद) और उसमें त्रिदोष (वात - पित - कफ) की अधिकता हों, ऐसे साधक को प्राणायाम के अभ्यास के पहले षट्कर्मा ों धौती , वास्ति, नेत्ति, त्राटक, नौली कपालभति आदि हठयोगिक बर्हिः शोधन (षट्कर्म) अवश्य कर लेना चाहिये। इससे शरीर का शोधन और नाड़ियों के मल की शुद्धि हो जाती है। जिस साधक में त्रिदोष् (वात-पित्त और कफ) तथा मेद समभाव में हों उन साधकों को इन षट्कर्मों को नहीं करना चाहिये।

धौतिर्वस्तिस्तथा नेतिस्त्राटकं नौलिकं तथा।

कपालभाँतिश्चैतानि षट्कर्माणि प्रचक्षते।।

(ह.प्र. 2/22)

इन षट्कर्मों धौति , वास्ति, नेति, त्राटक नौली एवं कपालभाति से शरीर का शोधन करने वाले ये षट्कर्म गुप्त रूप से साधन करने योग्य हैं , ये षट् कर्म विचित्र प्रभाव गुण करने वाले हैं , इसलिए श्रेष्ठ (योगाभ्यास में निपुण साधकों) योगियों द्वारा अत्यन्त पूज्यभाव से श्रद्धा युक्त होकर सावधानीपूर्वक करना चाहिये। इन षट्कर्मो का पृथक-पृथक विस्तृत वर्णन निम्नोक्त प्रकार से हैः-

(1) धौति क्रियाः- हठ्योगप्रदीपिका के अनुसार धौति कर्म हेतु चार अंगुल चैड़े और पन्द्रह हाथ लम्बे वस्त्र को जल में अच्छी तरह भिगोकर गुरूर्निदिष्ट विधि से साधक धीरे-धीरे मुख से पूरा निगलकर पुनः धीरे-धीरे बाहर निकालना चाहिये। यही धौति कर्म है।

प्रयुक्त किया गया वस्त्र नवीन पतला (बारीक धागे से बना) और थोड़े-थोड़े गर्म जल में भिगोया होना चाहिये। प्रत्येक दिन थोड़ा-थोड़ा निगलते हुए ही वस्त्र को पूर्ण रूप से निगलने का अभ्यास

करना चाहिये। जब तक वस्त्र धीरे-धीरे उदर में जाकर ठहर न जाय तब उसका पेट के अन्दर नौली सादृश्य धीरे- धीरे चालन कर बाहर निकालना चाहिये। देखें चित्र क्र.28 एवं 29।

धौति कर्म के लाभः- हठयोग प्रदीपिका के अनुसार धौति कर्म के प्रभाव से श्वास , प्लीहा (तिल्ली) और कुष्ठ आदि रोग एवं बीस प्रकार के कफजन्य रोग दूर होते हैं। इसके इन लाभों में किसी प्रकार का कोई संशयः नहीं होना चाहियें।

(2) वास्तिक्रियाः- हठयोगप्रदीपिका के अनुसार वस्ति कर्म के लिए नाभि (पेट का मध्यभाग) के स्तर तक साधक को जल में स्थित होकर (कनिष्ठिका अंगुली की मोटाई के बराबर प्रवेश योग्य) पोली (छेदवाली) बाँस की नली गुदा प्रदेश में प्रविष्ट कर उत्कटासन में स्थित होकर गुदा का आकुंञ्चन करना चाहिये, जल का उदर में संचालन कर उदर को धोना चाहिये यही स्वात्माराम निर्दिष्ट वास्तिकर्म है।

वास्तिकर्म के लाभः- वास्तिकर्म के प्रभाव के गुल्म , प्लीहा, जलोदर, वातपित्तकफ (त्रिदोष) से उत्पन्न सभी रोग नष्ट हो जाते हैं। जलवस्ति का अभ्यास करते रहने से धातु (रक्त , मांस, अस्थि, रस, शुक्र, मज्जा) पुष्ट होते हैं , इन्द्रियों कर्मेन्द्रियों (वाणी , हाथ, पाव, गुदा एवं लिंग ये पांच कर्मेन्द्रिय है) तथा ज्ञानेन्द्रियों (कान , नेत्र, त्वचा, जिव्हा, तथा नासिका) में स्फूर्ति और शक्ति आती है। अन्तः करण (मन, बुद्धि, चित्त, अहंकाररूप करण) में धुति (कान्ति या चमक) आती है जठरानल प्रदीप्ति होता है। खुलकर भूख लगती है , वात-पित्त-कफ से उत्पन्न समस्त दोषों, मदाग्नि (आदि विकारों) का शमन होता है।

(3) नेतिक्रियाः- हठयोग प्रदीपिका के अनुसार नेति कर्म के लिए एक बीता (करीब 9 इंच का) सूत्र (डोरा) लेकर उसे अच्छी तरह चिकना कर नासारन्ध्र में प्रविष्ट कर (साधक को) मुखद्वारा बाहर निकालना चाहिये।सूत्र उतना लम्बा लिया जा सकता है , जितना नेति-कर्म के लिए आवश्यक हो। इस क्रिया को साधक (योगी) नेति-कर्म कहते हैं। देखें चित्र क्र.30।

नेतिकर्म के लाभः- नेति क्रिया करने से कपाल के विकारों का शोधन होता है। दिव्य दृष्टि प्राप्त होती है दृष्टि सूक्ष्म पदार्थो के निरीक्षण में समर्थ होती है। कंधे के ऊपर के भागों के (जत्रु) रोगों को यह तत्काल नष्ट करती है।

नोटः- जत्रु से तात्पर्य भुजा, सिर और कंधे को मिलाकर सन्धि स्थान, जत्रु कहा गया है।

(4) त्राटक क्रियाः- हठयोग प्रदीपिका के अनुसार त्राटक कर्म के लिए साधक (योगी) को एकाग्रचित (समाहित चित) होकर दृष्टि सूक्ष्मलक्ष्य (पदार्थ) पर स्थिर कर उसे तब तक देखते रहना चाहिए, जब तक नेत्रों में अश्रु की धारा न आ जाय। ऐसी स्मृति (आचार्यो मत्स्येन्द्रनाथ आदि योगीन्द्रों) इसे त्राटक कर्म कहते है। देखे चित्र क्र.31।

त्राटक कर्म के लाभः- त्राटक कर्म नेत्रों के रोगों को नष्ट कर देता है तन्द्रा , आलस्य आदि कि लिए कपाटरूप है जिस तरह दरवाजा खुलने पर कमरे का अन्धकार दूर हो जाता है , उसी तरह त्राटक कर्म के अभ्यास से आलस्य नष्ट होता है। इसे स्वर्ण-पेटी के समान छिपाकर करना चाहिये। जिस तरह स्वर्ण की पेटी को गुप्त रखा जाता है कि कहीं कोई देख न लें उसी तरह आचरणहीन , प्रमादी, व्यक्ति के समक्ष

इसका अभ्यास करने से लाभ के स्थान पर हानि हो सकती है। यह यत्न पूर्वक गोपनीय षट्कर्म है। इससे दिव्य दृष्टि भी प्राप्त होती है।

(5) **नौलिक्रियाः-** हठयोग प्रदीपिका के अनुसार नौलिकर्म में साधक को कन्धा सामने की ओर झुकाकर अपने पेट को दायें-बायें और तेज आवर्त वेग से (जिस प्रकार जल का भौंर बड़े वेग से आवर्तित-धूमता रहता उसी तरह के वेग से) इधर-उधर धुमाना चाहिऐ। सिद्धों द्वारा यह नौलिकर्म कहा गया है।

नैलिकर्म के लाभः- नौलि हठयोग क्रिया में सर्वोत्तम क्रिया कही गयी है। इस नौलिक्रिया के अभ्यास से मन्दाग्नि नष्ट होती है , पाचन-शक्ति आनन्दायिनी होती है । अर्थात खाये अन्न का पूर्ण पाचन होता है।यह सभी वात विकार जनित रोगों को दूर करने में सक्षम है।

(6) **कपालभाति क्रियाः-** हठ्योग प्रदीपिका के अनुसार कपालभाति क्रिया षट्कर्मों में एक कर्म है। लोहार की धौंकनी के चलने के समान (वेगपूर्वक) रेचक और पूरक प्राणायाम अर्थात् एक नासा रन्ध्र से वायु बाहर निकालकर उसी से भीतर खींचना और दूसरे से बाहर निकाल कर उसी से भीतर खींचना ही कपालभाति कर्म के नाम से जाना जाता हैं।

कपालभाति के लाभः- कपालभाति कफ के विकारों को नष्ट करने वाली क्रिया हैं। इस क्रिया से बीस प्रकार के कफ दोषों का निवारण किया जा सकता हैं।

(7) **गजकरणी क्रियाः-** हठयोग प्रदीपिका में षटकर्मों के अंतर्गत धौती क्रिया के अर्न्त भूत गजकरणी क्रिया को लिया गया हैं। स्वात्मारामजी के अनुसार अपानवायु को ऊपर कण्ठनाल में (शंखिनी-नाड़ी द्वारा जिसका मार्ग कण्ठ तक है) पहुँचा कर उदर में स्थिर (खाये-पीये हुए अन्न-जल आदि) पदार्थों का उद्वमन (साधन) करते हैं। उसके क्रमपूर्वक अभ्यास से नाड़ी-समूह का वशीभूत होना हठयोग के विद्वानों द्वारा गजकरणी क्रिया के रूप में जाना जाता हैं।

गजकरणी के लाभः- धौती क्रिया के लाभों के अनुसार ही गजकरणी क्रिया के लाभ होते हैं। इससे भी कफजन्य समस्त प्रकार के रोग शांत होते हैं। श्वास ,प्लीहा (तिल्ली) कुष्ठ आदि रोग में यह प्रभावकारी शुद्धि क्रिया हैं।

6.5 **हठ योग प्रदीपिका में प्राणायाम का स्वरूप**

हठयोग प्रदीपिका का या यो समझ सकते है कि हठयोग की मूल साधना का आधार प्राण साधना ही है हं और ठं को मिलाकर प्राण को सुषुम्ना में प्रवाहित करना ही हठयोग का लक्ष्य है।

ब्रह्म आदि देवता भी मृत्यू के भय से (शरीर को अजर-अमर रखने के लिये) प्राणायाम के अभ्यास में तत्पर रहते हैं , इस लिये प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिये। जब तक शरीर में प्राणवायु स्थिर है, जब जक चित्त (अन्तः करण की वृत्ति) समाहित-शान्त है , जब तक साधक की दृष्टि दोनों भौहों के बीच में भूमध्य में स्थिर है, तब तक मृत्यु का भय नहीं रहता। साधक दीर्घजीवी हो जाता है।

विधिपूर्वक अर्थात आसन् एवं बन्धों से युक्त होकर प्राणायाम का अभ्यास करने से नाड़ी-समूह (के मल) का शोधन होने पर प्राणवायु सुषुम्ना नाड़ी के मुख का भेदन कर उसमें सुखपूर्वक प्रविष्ट होती है। प्राणवायु का मध्यनाड़ी (सुषुम्ना) में संचार से मन स्थिर होता है और साधक की उन्मनी अवस्था हो जाती है। यहां मनोन्मनी शब्द उन्मनी का पर्याय है। उन्मनी अवस्था मन के स्थिर हो जाने पर अर्थात ध्यान करने योग्य वस्तु के आकार की वृत्तियों का प्रवाह हो जाता है वह जो मन का भलीप्रकार स्थिर हो जाना है उसको ही मनोन्मनी अवस्था कहते हैं। इस अवस्था की सिद्धि के लिए स्वात्माराम जी ने निम्नलिखित श्लोक उपदेशित करते हुऐ बतलाया है। कि कुंभक के भी आवान्तर भेद है।

तत्सिद्धये विद्यानज्ञश्चित्रान्कुर्वंति कुंभकात्।
विचित्र कुंभकाभ्यासाद्विचित्रां सिद्धिमाप्नुयात्।।

(ह.प्र. 2/43)

अर्थात उन्मनी अवस्था की सिद्धि के लिये अनेक प्रकार के अर्थात सूर्यभेदन आदि से भिन्न-भिन्न प्राणायामों को करते हैं, क्योंकि विचित्र कुंभक प्राणायामों के अभ्यास से विचित्र ही सिद्धि को प्राप्त हो जाता है।

कुंभक (प्राणायाम) के प्रकार

हठयोग प्रदीपिका कुंभक (प्राणायाम) को आठ प्रकारों में वर्गीकृत करती है।

कुंभक (प्राणायाम)

1 2 3 4 5 6 7

सूर्यभेदन उज्जायी सीत्कारी शीतली भस्त्रिका भ्रामरी मूर्च्छा प्लाविनी

सूर्यभेदनमुज्जायी सीत्कारी शीतली तथा।
भस्त्रिका भ्रामरी मूर्च्छा प्लाविनीत्यष्टकुंभकाः।। (ह.प्र2/44)

प्राणायाम एवं बन्ध की प्रक्रिया

हठ्योग प्रदीपिका के अनुसार प्राणायाम के अभ्यास की प्रक्रिया इस प्रकार है। प्राणायाम का अभ्यास करते समय पूरक (वायु को भीतर खींचने के बाद) के पूर्ण होने पर जालन्धर बन्ध और कुंभक (वायु को बाहर निकालते समय) के अन्त में रेचक के पूर्व उड्डियान बन्ध लगाना चाहिये।

त्रिबन्धों की प्रक्रिया

(i) मूलबन्धः- नीचे के प्रदेश (गुदा प्रदेश) के आकुंचन (सिकोड़ने-फैलाने) से मूलबंध लगता है।

(ii) जालन्धर बन्धः- कण्ठ को सिकोड़ कर ह्दयादेश में लगाने से जालन्धर बन्ध लगता है।

(iii) उड्डियान बन्धः- नाभि प्रदेश को पीठ की ओर आकृष्ट कर पश्चिमतान से उड्डियान बन्ध लगता है।

इन बन्धों के अभ्यास से वायु (प्राण) बह्यनाड़ी (सुषुम्ना) में प्रवेश करता है। योगी (साधक) अपानवायु को ऊपर उठाते हुए अर्थात प्राणवायु को ऊपर खींच कर कंठ के नीचे ह्दयप्रदेश की ओर ले जाना चाहिये। इससे योगी बुढ़ापा से छुटकारा पा जाता है और वह सोलह साल का युवक सदृश बन जाता है। उपरोक्त वर्णित प्राणायाम की प्रक्रिया एवं बन्धों की प्रक्रिया से निम्नलिखित आठ कुंभकों की प्रक्रिया एवं लाभ निम्नानुसार है।

(1) सूर्यभेदन कुंभक

हठयोग प्रदीपिका में सूर्यभेदन प्राणायाम (कुंभक) की निम्नलिखित प्रक्रिया बतलाई गई है। सर्वप्रथम सुखासन में बैठकर साधक (योगी) को धीरे-धीरे दाहिने नासारन्ध्र से बाहर स्थित वायु को भीतर खींचकर सम्पूर्ण शरीर (नख से शिख तक) में यथा शक्ति सुखपूर्वक धारण करना चाहिये तथा इस दौरान विधि अनुरूप बन्धों जालन्धरबंध का प्रयोग करते हुऐ बायें नासारन्ध्र से धीरे-धीरे रेचक (बाहर निकालना) करना चाहियें। यही सूर्यभेदन कुंभक कहलाता है। देखे चित्र क्र.35।

सावधानियाँ

(i) वायु सदैव दाहिनी नासिका से पूरक की जाती है। तथा दहिनी नासिका से रेचक की जाती है।

(ii) पूरक और रेचक सदैव धीरे-धीरे करना चाहिये अन्यथा शरीर विकार ग्रस्त हो सकता है। तथा बल व स्फूर्ति कम हो सकते है।

(iii) अभ्यास की अवधि धीरे-धीरे बढ़ना चाहिये तथा 80 प्राणायाम तक बढ़ाना चाहिये।

(iv) अभ्यास , प्रातः मध्याह अपरान्ह एवं सायंकाल। चारबार अवश्य करना चाहिये।

(v) पित्त प्रकृति तथा उष्णता ग्रस्त साधक इसे न करें।

लाभ

सूर्यभेदन प्राणायाम (कुंभक) बार-बार करना चाहिये। इससे कपाल (मस्तिष्क) के विकार नष्ट होते है, वातदोष नष्ट होता है और पेट में कीड़े से होने वाले दोष नष्ट होते हैं।

(2) उज्जायी कुंभक

हठयोग प्रदीपिका में उज्जायी कुम्भक की प्रक्रिया निम्नलिखित प्रकार से वर्णित की गई है। मुख को बन्दकर दोंनों नाड़ियों (इडा-बायी नासिका तथा पिगंला दाहिनी नसिका) से वायु को धीरे-धीरे भीतर खींचकर जिससे वह गले से ह्दय प्रदेश तक शब्द करती हुई भर जाय , योगी को सूर्यभेदन कुम्भक का अभ्यास कर प्राणवायु को बायीं नाड़ी इड़ा (बायीं नसिका से) से बाहर निकाल देना चाहिये। यह कुम्भक सदैव करना चाहिये यहां तक कि चलते-फिरते, बैठे हुये सदा करते रहना चाहिये। देखे चित्र क्र.36।

सावधानियाँ

(i) निर्दिष्ट प्रक्रिया के अनुरूप सदैव करना चाहिये।

(ii) अत्याधिक चंचल स्थिति को छोड़कर सभी स्थितियों में हितकारी है।

लाभ

(i) उज्जायी प्राणायाम के अभ्यास से कंठ में होने वाले कफ के दोष (विकार) नष्ट हो जाते है।

(ii) जठराग्नि प्रदीप्त होती है।

(iii) नाड़ी की शिराओं में स्थित जल (विकार) , जलोदर रोग तथा धातु सम्बन्धी रोग भी नष्ट हो जाते हैं।

(3) सीत्कारी कुम्भक

सीत्कारी कुम्भक की प्रक्रिया मुख से सीत्कार (सी, सी की आवाज) करते हुए (मुख से ही-जीभ को थोड़ा दोनों होठों के बाहर स्थित कर) वायु को भीतर खींचकर (कुम्भक की विधि से) स्थिर करना चाहिये और नासिका छिद्र से बाहर निकालना चाहिये।

सावधानियाँ:-

(i) सीत्कारी कुम्भक का अभ्यास सिद्ध हो जाने पर भी वायु को कभी मुख से बाहर नहीं निकालना चाहिए , नासारन्ध्र से ही रेचक करना चाहिये अन्यथा बल क्षीण होता है।

(ii) जीभ को ओठों से बाहर निकालकर उसका अगला भाग दांतों की पंक्ति और ओठों से थोड़ा-थोड़ा दबाकर सीत्कार करते हुए वायु भीतर भरना चाहिये।

लाभः-

(i) इस सीत्कारी कुम्भक के अभ्यास से साधक (योगी) कामदेव के समान रूप लावण्य से युक्त हो जाता है। वह योगी योगियों (साधकों) के समूह द्वारा सेवित (सम्मानित) होता है।

(ii) वह सृष्टि संहार करने में समर्थ होता है। तथा भूख-प्यास निद्रा और आलस्य से अभिभूत नहीं होता है।

(iii) साधक का बल बढ़ जाता है। तथा सभी शारीरिक उपद्रव शान्त हो जाते हैं , इसके अभ्यास से योगी योगीश्वर तक बन सकता है।

(4) शीतली कुम्भक

शीतली कुम्भक की प्रक्रिया में जिव्हा से वायु खींच कर सीत्कारी कुभ्भक के समान विधि से कुभ्भक का अभ्यास कर धीरे-धीरे नासारन्ध्रों से साधक (योगी को) वायु का रेचन (बाहर) करना चाहिये।

सावधानियाँ

(i) होठों को सीटी बजाने की (पक्षी की चोंच) आकृति से धीरे-धीरे धैर्यपूर्वक जिव्हा के अग्रभाग से ही वायु को भीतर खींच कर स्थिर कर दोनों नासिका रन्ध्रों से बाहर निकालना चाहिये।

(ii) शीतकाल में इस कुम्भक का अभ्यास वर्जित है। कफ प्रकृति के साधक को इसका अभ्यास नहीं करना चाहिये।

लाभ

(i) शीतली कुम्भक , गुल्म, प्लीहा, ज्वर, पित्त के विकार, क्षुधा तृषा तथा समस्त सर्पादि के विषों तथा विकारों को दूर कर देता है।

(ii) इससे अजीर्ण ,पेचिस, अम्लपित्त ठीक होते है।

(5) भास्त्रिका कुम्भक

भस्त्रिका कुम्भक की प्रक्रिया को हठप्रदीपिका में स्वात्माराम जी ने आसन का वर्णन कर विस्तार से विधि को बतलाया है। भस्त्रिका कुम्भक पद्मासन लगाकर करना चाहिये , इस हेतु दोनों पैरों के तलवों को दोनों जाघों के ऊपर स्थापित करना पद्मासन है। यह सभी प्रकार के पापों को नष्ट करता है। ग्रीवा और पेट को एक सीध में रखते हुए साधक को पद्मासन में मुख को शांत (संयम) कर नसिका के किसी एक रन्ध्र से अन्दर उपस्थित वायु को बाहर निकाल देना चाहिये।

इसके बाद शब्द करता हुआ प्राण (वायु) ह्दय, कंठ और कपाल तक लगे, तब वेगपूर्वक ह्दय-कमल तक वायु को भीतर भरना चाहिये। इस प्रक्रिया से बार-बार वायु को बाहर निकालना और भरना चाहिये। जिस तरह लोहार धौंकनी को चलाता है इसी प्रकार साधक को (योगाभ्यास में निपुण अभ्यासी) को अपने शरीर में स्थित वायु (पूरक रेचक द्वारा) का चालन करना चाहिये। जब थकावट जान पड़े तब सूर्यनाड़ी (दाहिने नासापुट) से वायु को भीतर भरना चाहिये। मध्यमा और तर्जनी अंगुलि को छोड़कर अन्य तीन अंगुलियों से नासिका को मध्य से दृढ़तापूर्वक पकड़ कर कुम्भक करना चाहिये और बायीं नासिका (इड़ा नाड़ी) से रेचक करना चाहिये।

सावधानियाँ

(i) भस्त्रिका प्राणायाम के चार भेद है- (1) मध्यम भस्त्रिका (2) वाम भस्त्रिका (3) दक्षिण भस्त्रिका (4) अनुलोम-विलोम भस्त्रिका प्रत्येक को विधि पूर्वक भेदो के अनुरूप अभ्यास करना चाहिये।

(ii) वाम भस्त्रिका एवं दक्षिण भस्त्रिका मिलाकर करने में पहले वाम भस्त्रिका करना चाहिये। एवं संख्या का ध्यान रखना चाहिये।

(iii) कुम्भक के समय नाभि-स्थान के मणि पूरक चक्र पर ध्यान लगाया जाता है।

लाभ

(i) भस्त्रिका प्राणायाम से त्रिधातु-विकार (वात-पित्त-कफ दोष) से उत्पन्न रोग नष्ट होते है।

(ii) जठराग्नि प्रदीप्त होती है।

(iii) कुण्डलिनी साधना हेतु यह एक श्रेष्ठ प्राणायाम है।

(6) भ्रामरी कुम्भक

भ्रामरी कुम्भक में बाहर से वायु को वेग से भौरे के गुजंन से समान शब्द करते हुए पूरक करना चाहिये, और इसके बाद भ्रमरी के नाद के समान मन्द-मन्द आवाज करते हुए रेचक करना चाहिये। इस

क्रिया में साधक (योगी) के चित्र में आनन्द की अभिव्यक्ति होती है। चूंकि इस प्राणायाम में रेचक ज्यादा महत्वपूर्ण है इस कारण इसे भ्रामरी प्राणायाम कहते है।

सावधानियाँ

(i) पूरक वेग पूर्वक एवं रेचक मन्द-मन्द करने का विशेष ध्यान रखना चाहिये।

(ii) रेचक के साथ मूल और उड्डियानबन्ध लगाना चाहिये। तथा पूरक के साथ जालन्धरबन्ध लगाना चाहिये।

लाभ

भ्रामरी कुम्भक से चित्त में योगाभ्यास के दौरान आनन्द की अभिव्यक्ति होती है चित्त शांत होता है। चित्त के शांत होने से उच्चतर योग लक्ष्यों का साधन संभव होता है।

(7) मूर्च्छाक कुम्भक

मूर्च्छाम कुम्भक की प्रक्रिया में श्वास को अन्दर लेते हुये (पूरक) के अन्त में जालन्धर-बन्ध अच्छी तरह लगाकर धीरे-धीरे रेचन करना चाहिये। ऐसा करने पर चित्त बाह्य कारणों से ऐसा पृथक हो जाता है मानो साधक मूर्च्छा् में चला गया हो।

सावधानियाँ

(i) पूरक एवं रेचक भ्रामरी प्राणायाम के सादृश्य करना चाहिये।

लाभ

(i) मूर्छा कुम्भक का अभ्यास सुख प्रदान करने वाला है।

(ii) मन को स्थिर (तन्मय) कर देता है।

(iii) मूर्छा कुम्भक ध्येयाकार का दर्शन प्रदान करता है।

(8) प्लाविनी कुम्भक

प्लाविनी कुम्भक में शरीर के भीतर अधिक वायु को पूरक की प्रक्रिया द्वारा ठीक प्रकार से उदर में भरने पर शरीर इतना हल्का हो जाता है कि अगाध जल में भी कमल के पत्ते के समान सुखपूर्वक साधक (योगी) तैरता रहता है।

सावधानियाँ

(i) यथाविधि पद्यमासन में बैठकर दोनों नासापुटों से वायु खींचना चाहिये।

(ii) नाभिस्थान पर मन को एकाग्र करना चाहिये।

लाभ

(i) इस कुम्भक से साधक का प्राण वायु पर अधिकार हो जाता है।

(ii) कब्ज का नाश हो जाता है।

(iii) वीर्य पुष्ट होता है और रक्त शुद्ध होता है।

प्राणायाम के भेद

हठयोग प्रदीपिका में प्राणायाम के निम्नलिखित दो भेद बतलाये गये है।

(i) प्रथम भेद में तीन प्रकार से वर्गीकृत किया गया है। देखे चित्र क्र. 43।

(1) पूरक प्राणायाम

(2) कुम्भक प्राणायाम

(3) रेचक प्राणायाम

(ब) द्वितीय भेद में दो प्रकार से वर्गीकृत किया गया है -

(1) सहित कुम्भक।

(2) केवल कुम्भक।

उपरोक्त भेदों को स्वात्माराम जी ने स्पष्ट करते हुये बतलाया है कि वायु का ग्रहण करना पूरक वायु का छोड़ना रेचक और वायु को धारण करना कुंभक है। वायु को धारण करने के भेद से कुंभक दो प्रकार का है सहित और केवल है। जब तक कुंभक की सिद्धि नहीं हो जाती तब तक सहित कुंभक का अभ्यास करना चाहिये। सहित कुंभक तब तक करना चाहिये जब तक प्राणवायु सुषुम्ना नाड़ी में प्रविष्ट नहीं हो जाती है। सुषुम्ना में प्रविष्ट होने का लक्षण अद्भुत ध्वनि उन्पन्न होना है।

उपरोक्त प्रकार से कहे गये केवल कुम्भक की सिद्धि होने पर रेचक और पूरक स्वतः छूट जाते है इन दोनों का अभ्यास नहीं करना रहता है। केवल कुंभक सिद्धि होने पर इस त्रैलोक्य में कोई भी वस्तु अप्राप्य नही रह जाती है।

केवल कुंभक के अभ्यास से राजयोग सिद्ध होता है। तथा कुण्डलिनी का जागरण (बोध) होता है। कुण्डलिनी बोध से सुषुम्ना नाड़ी कफ आदि दोषों से मुक्त होकर प्राणवायु की गति उर्ध्वतमुखी हो उठती है। इस प्रकार हठयोग सिद्ध होता है। इस प्रकार हठयोग की सिद्धि से राजयोग एवं राजयोग की सिद्धि के बिना हठयोग की सिद्धि का क्या अर्थ। अतः दोनों का सम्यक अभ्यास आपेक्षित है। कुंभक के अभ्यास से प्राणों को रोकने के बाद चित्त को आश्रयरहित-ब्रह्मकाररूप परम वैराग्य की वृत्ति में लीन करना चाहिये। इस स्थिति में राजयोगपद की प्राप्ति होती है।

6.6 **सारांश**

प्रस्तुत इकाई में हठ योग प्रदीपिका के साथ प्राण वायु नाड़ी शुद्धि, नाडियों का अंतषोधन, नाडियों का बर्हि शोधन अर्थात् षट्कर्म शरीर शोधन की दष्टि से संक्षेप में वर्णन किया गया है।

6.7 **बोधात्मक प्रश्न**

1. हठ योग प्रदीपिका में प्राण वायु का स्वरूप बताइये।

2 हठ योग प्रदीपिका में षट्कर्म का स्वरूप का वर्णन कीजिए।

3 हठ योग प्रदीपिका में प्राणायाम स्वरूप की व्याख्या कीजिए।

4 त्राटक क्रिया के बारे में बताइये।

5 धोति क्रिया की विधि एवं लाभ का वर्णन कीजिए।

6 बस्ति क्रिया के लाभ का वर्णन कीजिए।

7 श्रुत नेति के लाभ एवं विधि का वर्णन कीजिए।

8 नोली कर्म के विधि का वर्णन कीजिए।

6.8 **संदर्भ ग्रंथ सूची**

- साधना स्वामी शिवान्द , दिव्य जीवन संघ , पत्रालय शिवानन्द नगर 249192 , जिला टिहरी गढ़वाल हिमालय (उ.प्र.)
- योग और अनुसंधान स्वामी कुवलयानन्द, कैवल्यधाम लोनावाला पूना 410403
- राजयोग स्वामी विवेकानंद, अद्धैत आश्रम, 5-देही एन्टाली रोड, कलकत्ता - 700014
- लाईट ऑनयोग महर्षि अरविंद, अरविंद आश्रम पाण्डिचेरी
- अष्टांग योग - चरणदास अनुवादक , श्री ओ. पी. तिवारी , प्रकाशक कैवल्यधाम-एस. एम. वाई. एम. समिति , कैवल्यधाम लोनावाला पूना
- योग परिचय - डॉ पीताम्बर झा, प्रका. गुप्ता प्रकाशन डी-35 साउथ एकसटैंशन भाग I नई दिल्ली - 49
- योग का परिचयात्मक - डॉ ओमनारायण तिवारी स्वरूपप्रकाशक पं. सुन्दरलाल शर्मा (मुक्त) विश्वविद्यालय छत्तीसगढ़, बिलासपुर (छ.ग.)
- Secrets of Hatha Vidya - Dr. Vijayendra pratap SKY FoundationPhiladelphia Pennsylvania U.S.A.
- योगासन एवं हठयोग विज्ञान - डॉ. ओम नारायण तिवारी, विलासपुर (छत्तीसगढ़)
- पतनजल योग दर्शन - डॉ. नित्यानन्द शर्मा, कोटा (राजस्थान - 324005)

इकाई -7

मुद्रा एवं बंध विज्ञानीयम्

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.2 प्रस्तावना

7.3 पंच्चमुद्राओं (बंध) का स्वरूप

7.4 ग्रंथि एवं कुण्डालिनी का स्वरूप

7.5 नाद बिन्दु कला

7.6 समाधि एवं नादानुसंधान

7.7 यौगिक चिकित्सा

7.8 सारांश

7.9 बोधात्मक प्रश्न

7.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

7.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पष्चात आप जानेगे कि -

- पंच्चमुद्राओं (बंध) का स्वरूप
- ग्रंथि एवं कुण्डालिनी का स्वरूप
- नाद बिन्दु कला
- समाधि एवं नादानुसंधान
- यौगिक चिकित्सा

7.2 प्रस्तावना

मनुष्य जीवन के उद्देश्य हैं - धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष। ये चार ''पुरूषार्थ'' कहे जाते हैं। इनकी प्राप्ति के लिए शरीर और इन्द्रियों की एक चित्त की शुद्धि एवं उन पर नियंत्रण आवश्यक है। इसके बाद 'चित्त' को स्थिर करना भी आवश्यक है। इन बातों के लिए हमें योगशास्त्र की शरण लेनी पड़ती है। 'चित्तवृत्ति' के निरोध ही को तो योग कहा जाता। जब तक शरीर, इन्द्रिय तथा मन साधक के वश में नहीं आते, तब तक उद्देश्य की सिद्धि नहीं हो सकती। मोक्ष या दुःख निवृत्ति या आत्मा का साक्षात्कार ही तो 'परम पुरूषार्थ' है। इसमें किसी का मतभेद नहीं है। संसार में दो प्रकार के तत्व है - (1) बाह्य और (2) आभ्यान्तर - एक जड़ और दूसरा चेतन। आभ्यन्तर तत्व 'चित्त' है। क्योंकि भारतीय दार्शनिक जगत् (सम्प्रदायों) में

यह माना जाता है कि बिना चित्त की शुद्धता के तत्व की उपलब्धि नहीं हो सकती। उपनिषदों में तत्व ज्ञान के लिए चित्त की शुद्धता का विस्तृत वर्णन है। वेदान्त में ज्ञान की प्राप्ति के लिए अन्तः करण के सभी मलों का पूर्ण विनाश नितान्त आवश्यक है। अन्तःकरण की शुद्धि के बिना मनुष्य को वेदान्त में अधिकार ही नहीं है। इस प्रकार भारत के प्राचीन ऋषियों ने चित्त शुद्धि के अनेक प्रकार के निर्देश दिए , जिनको कालान्तर में एकत्रित करके महर्षि पतंजलि ने सांख्य के दार्शनिक सिद्धांतों की आधार भूमि में सूत्र रूप में एक स्वतंत्र दर्शन का प्रणयन किया यही दर्शन 'योग दर्शन' के नाम से विख्यात है। स्वास्थ्य की दष्टि से मुद्रा कुण्डलिनी शक्त नाद - बिन्दु - कला - समाधि - नादानुसंधान का यौगिक चिकित्सा के अंतर्गत महत्वपूर्ण स्थान है।

7.3 **पंच्चमुद्राओं (बंध) का स्वरूप**

हठयोग प्रदीपिका के तृतीय उपदेश में सर्वप्रथम मुद्रा प्रकरण आता है। इस प्रकरण में कुल 130 श्लोक है। इस प्रकरण में उपदेशित किया गया है कि जिस प्रकार पर्वतों एवं वनों से युक्त पृथ्वी का आधार शेष नाग है। उसी प्रकार समस्त प्रकार के योगी तन्त्रों की आधारभूता कुण्डलिनी है। यहां योगतन्त्र का आशय योगाभ्यास के संदर्भ में आसन , प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि, मुद्रा और बन्ध आदि समस्त साधन प्रक्रियाओं से है। कुण्डलिनी के बोध (जागरण या ज्ञान) के बिना योग के समस्त उपाय अर्थहीन है। यद्यपि पृथ्वी (भूमि) एक ही है किन्तु देशभेद से भूमि के भेदों को ध्यान में रखा गया है।

जब गुरू की कृपा (अनुग्रह) से साधक में सोयी कुण्डलिनी (प्राणशक्ति) जाग्रत हो जाती है तब शरीरान्तर्गत विभिन्न देश जैसे- छः कमल दल अर्थात् षट्चक्र , और ग्रन्थित्रय का भेदन (खुलना) कुण्डलिनी द्वारा हो जाता है। जब तीनों ग्रथियां खुल जाती है। तब शून्यपदवी (सुषुम्ना नाड़ी) प्राण के लिए राजपथ (सुखपूर्वक गमन हेतु) हो जाती है। इस स्थिति में चित्त निरालम्ब (निर्विषय) हो जाता है और काल (मृत्यु) का भय दूर हो जाता है। सुषुम्ना नाड़ी को अनेक पर्यायों से जाना जाता है जैसे शून्यपदवी , ब्रह्मरंध्र, महामथ, श्मशान, शांभवी, और मध्यमार्ग। ये सव पर्यायवाची अर्थ कुण्डलनी के है इस प्रकार सभी प्रकार के प्रयत्न करके ब्रह्मद्वार-सुषुम्ना के मुख के अग्रभाग में सोती हुई ईश्वरी (कुण्डलिनी) को जगाने के लिये साधक (योगी) को मुद्राओं का अच्छी तरह विधिपूर्वक अभ्यास करना चाहिये। ये मुद्रायें निम्नलिखित है- देखें सारणी क्रमांक 12

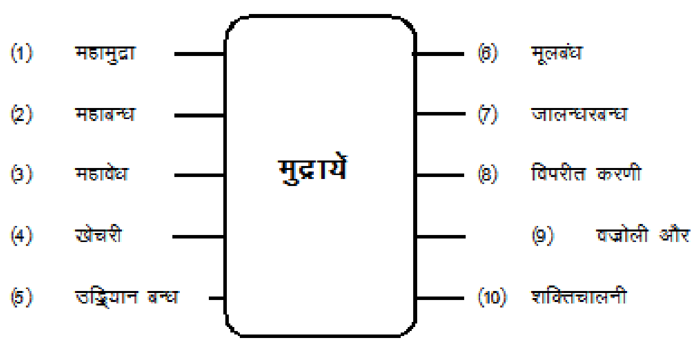

इन मुद्राओं के अभ्यास से जरा (बुढ़ापा) और मृत्यु का भय समाप्त हो जाता है। इन मुद्राओं का कथन आदिनाथ (भगवान शिव) ने किया है , ये मुद्रायें अष्टसिद्धियों (दिव्य ऐश्वर्यो) को प्रदान (उत्पन्न) करती है। ये दसों मुद्रायें सिद्धों (कपिलादि मुनियों) को प्रिय है और देवताओं के लिए दुर्लभ है। ये सप्रयास गोपनीय है। इन मुद्राओं का जिक्र हर किसी से नहीं करना चाहिये। जैसे हम रत्नों से भरी पिटारी को गुप्त रखते है उसी प्रकार कुलवधु (कुण्डलिनी) के साथ संयोग की बात को किसी से न कहकर गुप्त रखना चाहिये।

(1) महामुद्रा

दस मुद्राओं में प्रथम मुद्रा महामुद्रा का वर्णन हठ्प्रदीपिका के अनुसार इस प्रकार है। बायें पैर के तलवे से योनिस्थान को अच्छी तरह दबाकर फिर दहिना पैर सामने फैलाते हुऐ दोनों हाथों को भूमि पर रखकर दृढ़ता के साथ स्थित होकर जालन्धर बन्ध (कंठ में) लगाकर वायु को सुषुम्ना नाड़ी में प्रवेश करवाना (धारण) चाहिये। जैसे फन उठाकर (कुण्डली लगाकर) बैठा सर्प दण्ड से आहत होकर दण्ड के आकार का हो जाता है इसी तरह कुण्डलनी शक्ति सरल सीधी हो जाती है। और प्राण का इड़ा-पिगंला नाड़ियों से वियोग होने पर (अर्थात सुषुम्ना में प्राण प्रवाहित मूर्छावास्था (मरणासन्न) हो जाती है। इस अवस्था में इंडा और पिंगला जग्रताअवस्था में हो जाती है। इसके बाद अन्दर स्थित वायु का धीरे-धीरे रेचन करना चाहिये। वेग से वायु नहीं निकालना चाहियें। ऐसी विधि महा सिद्धों द्वारा वर्णित की गई है।

महामुद्रा का अभ्यास क्रम दो प्रकार से है-

(i) महामुद्रा में प्रथम बायें अंग (बायीं नसिका) से अभ्यास करना चाहिये। इस हेतु बायें पैर से सीवनी नाड़ी दबाकर दाहिने पैर को फैलाया जाता है तब इसे चन्द्रा का अभ्यास कहते है।

(ii) सूर्या के अभ्यास के लिये दाहिने पैर की ऐड़ी सीवनी में दबाकर बायें पैर को फैलाते है इस प्रकार के अभ्यास को सूर्या का अभ्यास कहा जाता है। पहले बायीं नसिका से फिर दाहिनी नासिका से कुंभक प्राणायाम करके इस महामुद्रा का अभ्यास करते है।

लाभ

पंच महाक्लेश (अविधा, अस्मिता, राग-द्वेष, अभिनिवेश) अदि तथा मरण आदि (बुढ़ापा मृत्यु) दोष इससे नष्ट हो जाते है। इस कारण विद्वान पण्डितों द्वारा इसे महामुद्रा कहा गया है। इसके अभ्यास से पथ्यापथ्य के ग्रहण कर विचार नहीं रखना पड़ता स्वयं ही सभी प्रकार के नीरस रस तक पच जाते है। तथा दुर्जर अन्न भी विषक्त न होकर अमृत क समान पच जाते है। इससे क्षय , कुष्ठ, उदावर्त, गुल्म, अपच, आदि रोगों का नाश हो जाता है। यह महामुद्रा बड़ी सिद्धिदायक है। इससे अणिमा, गरिमा, लछिमा आदि सिद्धियाँ प्राप्त होती है। इसका अभ्यास गोपनीय है।

(2) महाबन्ध मुद्रा

इस मुद्रा के अभ्यासी को बायें पैर की एड़ी को योनि स्थान-गुदा और मेढ़ के बीच के भाग पर लगाना चाहिये। बायीं जांघ पर दाहिना पैर रख कर वायु को भीतर खींचकर ठोढ़ी को हद्रय स्थान पर रखकर तथा योनि को अकुंचित (सिकोड़कर) कर मूलबन्ध लगाकर मन को मध्यनाड़ी (सुषुम्ना) में

लगाना चाहिये। इसके बाद यथाशक्ति कुंभक कर वायु का धीरे-धीरे रेचन करना चाहिये। बाये अंग से अभ्यास करने के बाद दाहिने अंग से अभ्यास करना चाहिये दोनों अंगों से बराबर-बराबर संख्या में अभ्यास करना चाहिये इसकी भी दो विधियां है।

(i) विधिः- प्रथम विधि में बायें पैर की एड़ी को गुदा और लिंग के मध्य-भाग में जमा कर बायीं जांघ पर दायें पैर को रखकर समसूत्र होकर बायें अथवा जिस नासारन्ध्र से वायु चल रही हो , उससे पूरक कर जालन्धर बन्ध लगाना चाहिये। फिर मूलाद्वार से वायु का आकर्षण कर मूलबन्ध लगाना चाहिये। मन को मध्यनाड़ी में लगाकर यथाशक्ति कुंभक करना चाहिये।

(ii) दूसरी विधि में पद्मासन या सिद्धासन में बैठकर नाभिस्थान में बैठकर गुह्य प्रदेश सिकोड़ कर अपान-वायु को नाभिस्थान समान वायु से मिलाकर और हृदयस्थ प्राणवायु का नीचे की ओर आकर्षण कर नाभिस्थान में कुंभक करना चाहिये।

लाभ

यह महाबन्ध मृत्यु के पाश से भी छुड़ाने की समर्थ रखता है। यह त्रिबन्धों (जालन्धर , उड्डयान और मूलबन्ध) का संगम है, यह महाबन्ध त्रिवेणी (प्रयाग) को प्राप्त कराने वाला तथा दोनों भौहों के मध्य स्थित शिवस्थान (अज्ञाचक्र या केदार स्थान) में मन को स्थित करने वाला है। जिस प्रकार रूपलावण्य से युक्त (युवती) स्त्री पुरूष के बिना निष्फल है उसी तरह महा-मुद्रा और महाबन्ध दोनों महावेध के अभ्यास के बिना व्यर्थ है।

सभी 72 हजार नाड़ियों में (सुषुम्ना को छोड़कर) वायु की उर्ध्वम गति का निरोधक है। जिससे नाड़ीजाल का बन्धन होता है।, यही जालन्धर बन्ध है, यही महासिद्धि प्रदायक महाबन्ध का लाभ है।

(3) महावेध मुद्रा

महावेध मुद्रा में सर्वप्रथम महाबन्ध लगाकर तथा चित्त को एकाग्र कर जालन्धरबन्ध लगाकर वायु (प्राण) को पूरक द्वारा भीतर खींचकर तथा कुंभक द्वारा स्थिर कर कूल्हों को पृथ्वी पर स्थित दोनों होथों से थाम कर धीरे-धीरे ताडित करना चाहिये , इससे प्राणवायु मध्य नाड़ी (सुषुम्ना) में चलने लगती है। तब चन्द्र , सूर्य और अग्नि (सुषुम्ना) के सम्बन्ध से अमृतत्व की प्राप्ति होती है। जब मूर्च्छाल (मरणावस्था) उत्पन्न होने लगे तब वायु का रेचन करना चाहिये। इस प्रक्रिया को ही महावेध कहते है। इसकी एक अन्य और विधि भी है।

लाभ

इसका अभ्यास करने से महासिद्धियों की प्राप्ति संभव है। इससे त्वचा की झुर्रियाँ नष्ट हो जाती है। तथा त्वचा कन्तिमय हो जाती है। सफेद बाल काले होने लगते हैं और शरीर की दुर्बलता (कम्पन) नष्ट हो जाता है। श्रेष्ठ योगी महावेध का अभ्यास करते है।

(4) खेचरी मुद्रा (व्योमचक्र साधन)

खेचरी मुद्रा में कपाल के मध्य वाले कुहरे (सुषिर) या छिद्र में जीभ उलटी प्रविष्ट कर साधक को दोनों भौंहो के मध्य दृष्टि स्थित रखना चाहिये। यही खेचरी मुद्रा का लक्षण है। इस मुद्रा के अभ्यास हेतु जीव्हा

का छेदन, चालन और दोहन से विकास तब तक बढ़ाते रहना चाहिये जब तक जीभ भौंहो के मध्य का स्पर्श न कर ले। ऐसा करने पर खेचरी मुद्रा सिद्ध होती है। जिव्हा के छेदन हेतु सेहुड़ के पत्ते के समान तेज धारवाले, स्वच्छ और चिकने शस्त्र को लेकर उससे जिव्हामूल की नाड़ी का रोममात्र (बहुत महीन) छेदन करना चाहिये और उसके बाद उस घाव में पिसें सेंधानमक और हरड के चूर्ण से अच्छी तरह घिसना चाहिये। सात दिन तक ऐसा करते रहने पर आठवें दिन पुनः इसे दोहराते हुए छः माह तक अभ्यास से कपाल गुहर तक इसकी लम्बाई हो जाती है। तथा जिव्हा को उलट कर त्रिपथ (इडा पिंगला, सुषुम्ना वाले स्थान) पर लगाने से खेचरी मुद्रा या व्योमचक्र साधन कहा जाता है। चित्त भ्रूमध्य पर और जिव्हा भी वही पर ठहर जाती है उसे ही खेचरी मुद्रा कहते है ऐसा सिद्धों ने बतलाया है।

लाभ

(1) खेचरी मुद्रा का साधन जो साधक आधे क्षण तक भी साध लेता है , वह सर्प विच्छू आदि सभी विषों त्रिदोषों से उत्पन्न रोगों से मृत्यु और बुढ़ापा आदि से मुक्त हो जाता है। जो खेचरी मुद्रा को जानता है उसे रोग, मृत्यु, प्यास और मूर्च्छाज नहीं सताती। वह साधक निरोगी रहता है उसे शुभ-अशुभ कर्मफल का बन्धन नहीं सताता है उसे मृत्यु की बाधा नहीं होती उसे इच्छा मृत्यु होती है।

(2) खेचरी मुद्रा से काम पर विजय प्राप्त होती है। तथा पन्द्रह दिन तक खेचरी मुद्रा के पान से मृत्यु पर विजय प्राप्त की जा सकती है।

(3) जो साधक नित्य खेचरी मुद्रा करता है वह विष एवं रोगों से प्रभावहीन हो जाता है।

(4) नित्य खेचरी साधना योगी को कुलीन योगी बना देती है। तथा यह मुद्रा महापातक है।

(5) सभी रसों का रसास्वादन वाली जिव्हा यदि खेचरी मुद्राओं में रहे तो सभी व्याधियों शास्त्र प्रहारों समस्त सिद्धियों, तथा सौन्दर्य की प्राप्ति होती है।

(6) योगी (साधक) को खेचरी मुद्रा दीर्घ जीवन प्रदान करती है।

(5) उड्डियानबन्ध मुद्रा

उड्डीयन बन्ध में जिस बन्ध से बधा हुआ प्राण उठकर (स्वतः उर्ध्वनमुख होकर) सुषुम्ना में पहुंच जाता है, उसे योगियों द्वारा उड्डियान बन्ध कहा गया है जिस प्रकार आकाश में एक स्तर पर पक्षी निरन्तर उड़ने लगता है, ठीक वैसे ही प्राण सुषुम्ना नाड़ी से देहावकाश (ब्रह्मरन्ध्र) में उड़ता है और ऊपर चढ़ता जाता है, इसी कारण यह उड्डियानबन्ध कहा जाता है।

इसकी विधि यह है कि नाभि के ऊपर नीचे उदर में पीछे की ओर इस तरह आकर्षण करे कि दोनों भाग पीछे पीठ तक पहुंच जाय तो यह उड्डियनबन्ध मृत्यु रूपी हाथी के लिए साक्षांत सिंह के समान है। श्रेष्ठ गुरू से यह बन्ध सदा स्वाभाविक कहा गया है।

लाभ

(i) नित्य अभ्यासी वृद्धा अवस्था को नहीं प्राप्त कर सदैव जवान बना रहता है।

(ii) छः माह के अभ्यास से मृत्यु वश में हो जाती है। एवं दीर्घ जीवन मिलता है।

(iii) इसके सिद्ध होने पर अनायास (सहज ही) समाधि प्राप्त हो जाती है।

(6) मूलबन्ध मुद्रा

मूल बन्ध मुद्रा में साधक योनिस्थान (गुदा और मढ़ के मध्य भाग को किसी भी एक पैर की ऐड़ी से दबाकर गुदा को सिकोड़ने और फैलाने तथा अपान वायु को ऊपर की ओर आकृष्ट करने से मूलबन्ध मुद्रा कही जाती है। इसमें शरीर के नीचे गतिशील अपान वायु को (गुदा के संकुचन आंकुच्चन करते हुए) साधक बलपूर्वक ऊपर की ओर प्राणों को सुषुम्ना में चढ़ाने का प्रयास करता है इस क्रिया को ही मूलबंध कहते है।

लाभ

(i) प्राण और अपान वायु , नाद और बिन्दु मूलबन्ध के द्वारा एकता को प्राप्त होकर योग सिद्धि को प्राप्त करते है।

(ii) इससे काया कल्प होकर वृद्ध भी युवा बन जाता है।

(iii) इसके अभ्यास से निश्चित ही मारूत सिद्धि होती है।

(7) जालन्धर बन्ध मुद्रा

जालन्धर बन्ध मुद्रा में गले (कष्ठ) को सिकोड़ (संकुचित) करके ठोड़ी को दृढ़तापूर्वक (वज्ञ के समीप करीब 4 अंगुल पर) में लगाते है।

साधक को मूलाधार को अच्छी तरह संकुचित प्रसारित करके उड्डियान बन्ध लगाना चाहिये और प्राण को पश्चिम मार्ग (सुषुम्ना) में प्रविष्ट करना चाहिये। ऐसा करने से प्राण स्थिर होते है।

लाभ

(i) यहां जरा (बुढ़ापा) और मृत्यु के भय को नष्ट करने वाला है।

(ii) यह नाड़ियों के समूह और नीचे की ओर गिरने वाले कपाल कुहर के जल-अमृत को बाँधता है , इस कारण गले के रोग-विकारादि दूर-दूर होते है।

(iii) जालन्धरबन्ध के अभ्यास से अमृत अग्नि (जठरानल) में नहीं गिरता और न ही वायु ही दूषित (कुपित) होती है।

(iv) यह बन्ध विशुद्धि चक्र (मध्यचक्र या कंठ चक्र) का प्रतिबन्ध का है जिससे इड़ा-पिंगला का स्तम्भन होता है। और अमृत नीचे नहीं गिरता।

(v) प्राण स्थिर होता है। प्राण के लय होने पर मृत्यु का भय वृद्धा वस्था एवं अनेक रोग जैसे बाल झड़ना पकना आदि रूक जाते है। इन तीन बन्धों का अभ्यास योग साधना में श्रेष्ट माना जाता है।

(8) विपरीत करणी मुद्रा

विपरीत करणी मुद्रा का उद्देश्य दिव्य तालूमूल में स्थित चन्द्रमा से जो कुछ भी अमृत (सोम कलाजल) द्रवित होकर या स्त्रावित होकर नीचे नाभि में स्थित सूर्य ग्रहण कर लेता है। इसी कारण शरीर वृद्ध हो जाता है। इस अमृत को सूर्य मुख में जाने से रोकने हेतु गुरू उपदेशित विपरीत करणी मुद्रा का अभ्यास किया जाता है।

इस मुद्रा में तालु (चन्द्रमा) नीचे और नाभि (सूर्य) ऊपर हो जाता है। इसमे भूमि पर लेटकर धीरे-धीरे पैरो को ऊपर की उठाकर दोनों हाथों को धीरे-धीरे कमर पर लाकर शरीर को कंधे के सहारे स्थिर कर लेते है।

लाभ

(i) नित्य अभ्यास से जठराग्नि प्रदीप्त होती है।

(ii) पर्याप्त आहार ग्रहण कर सकने की क्षमता उत्पन्न हो जाती है।

(iii) छः माह के अभ्यास से झुरिया पके केश , तथा वृद्धावस्था नष्ट हो जाती है। एक प्रहर (ढाई से तीन घड़ी) के अभ्यास से मृत्यु को जीतकर प्रारब्ध कर्मो के फल का भोग क्षीण हो जाता है।

(9) वज्रोली मुद्रा

बज्रोली मुद्रा के अभ्यास के प्रसंग में दो और मुद्राओं का साधन किया जाता है। ये हैः-

(1) सहजोली

(2) अमरौली

सम्भोग के समय बिन्दु (वीर्य) के क्षरित होने से रोकने के लिए वीर्य को धीरे-धीरे आकुंचित कर उसे उर्ध्वसगामी करने का अभ्यास स्त्री या पुरूष को यदि हो जाये तो इसे बज्रोली मुद्रा की सिद्धि कहते है। इस प्रक्रिया यह है कि 14 अंगुल लम्बी सीसे की जली जो लिंग के छिद्र में प्रवेश के योग्य हो प्रयुकत की जाती है। एक शिरा टेड़ा रहता है। करीब 12 अंगुल प्रवेशित कर टेड़े शेष 2 अंगुल भाग से फूत्कार द्वारा वायु प्रवेशित करने से उपस्थ भाग का शोधन होता होता है। इसके बाद जल के आकर्षण से इस क्रिया को सिद्ध किया जाता है जल खींच सकने की योग्यता आने पर वीर्य को भी संभोग क्रिया के समय रोके जा सकने की योग्यता आ जाती है।

मनुष्यों का चित्त शुक्र (वीर्य) के आचित (अधीन) है। और जीवन शुक्र (वीर्य) के आचित है। इस कारण वीर्य और चित्त (मन) दोनों परस्परचित होते है अतः विशेष कतव्र्य है कि दिव्य जीवन हेतु वीर्य की रक्षा की जावे। इस हेतु वज्रोली (एवं साहायक सहजोली एवं अमरौली) की साधन श्रेष्ठ कर्म है।

स्वात्माराम जी का कथन है कि मत्स्येन्द्रनाथ आदि योगियों ने सहजोली क्रिया को श्रद्धामयी कहा है, यह कल्याणकारी (श्रेयस्कर) योग है , यह भोग और मोक्ष दोनों (काम-मोक्ष) पुरूषार्थों को एक साथ प्रदान करने वाली मुद्रा है। यह योग पुष्पात्माओं धैर्यशालियों तत्वदर्शियों (अध्यात्म चिन्तकों) और रागद्वेषरहित लोगों को ही सिद्ध होता है। जो मत्सर-रागद्वेष से युक्त है उन्हें यह मुद्रा हानिकारक है। वीर्य

एवं राज का ब्राह्य योग सृष्टि कारक है तथा इनका आन्तरिक योग होना मोक्ष या कारक है। वीर्य (बिन्दु) स्वर्ग, मोक्ष, धर्म, अधर्म सर्वप्रदायक है सूक्ष्म रूप में सभी देवता इसमें निवास करने है। वज्रोली मुद्रा के अभ्यास से बिन्दू और रज एक होकर अपने ही शरीर में एक हो जाय तो समस्त सिद्धियां प्राप्त हो जाती है।

लाभ

(i) वज्रोली का अभ्यास अत्यन्त पुण्यकारक है।

(ii) इसमें देहासिद्ध प्राप्त होती है। रूप लावण्य एवं बल अक्षय हो जाता है।

(iii) भूत वर्तमान भविष्य का ज्ञान हो जाता है।

(iv) पुरूष योगी एवं स्त्री योगिनी के पद को प्राप्त कर सकते है।

(v) भोग एवं मोक्ष की एक एक साथ प्रदायक मुद्रा है।

(vi) इससे आकाश गमन (आकाश में उड़ने की सामथ्र्य प्राप्त होती है।

(10) शक्तिचालनी मुद्रा

शक्तिचालनी मुद्रा में सर्वप्रथम हमें शक्ति का अर्थ समझ लेना चाहिये। शक्ति का तातपर्य योग साधना में कुण्डलिनी शक्ति से है। इसके निम्नांकित पर्यायवाची शब्द है।

(i) कुटिलांगी

(ii) कुण्डलिनी

(iii) भुजंगी

(iv) शक्ति

(v) ईश्वरी

(vi) कुण्डली

(vii) अरून्धती

शक्ति चालनी मुद्रा का तातपर्य सोयी हुई कुण्डली शक्ति को जगाकर उसे उध्र्व मुखी करना जिसमें प्राणवायु सुषुम्ना नाड़ी में प्रवेश कर सके। क्योकि कन्द में जहा सुषुम्ना का मुख है वही यह शक्ति सुप्त पड़ी रहती है। मार्ग की अवरोधक होती है।

कन्द स्थान का संपीडन ही शक्ति-चालन है कन्द के स्थान और स्वरूप का वर्णन इस प्रकार है। मूलस्थान से एक बिता (नौ इंच) के ऊपर मेद्र और नाभि के मध्य में कन्द का स्थान है , यह चैड़ाई में चार अंगुल (तीन इंच) है यह कोनल और श्वेत रंग का है। तथा वस्त्र द्वारा लपेटी गई वस्तु के समान है। इसके चालन हेतु साधक को वज्रासन में बैठकर दोनों पैरों को एड़ियों के पास हाथों से दृढ़ता पूर्वक पकड़कर उस कन्द का प्रपीड़न करना चाहिये-दबाना चाहिये। इस तरह वज्रासन में स्थित होकर शक्तिचालन कर कुण्डलिनी को जगाना चाहिये।

लाभ

(i) शक्तिचालनी मुद्रा से योगी को मृत्यु का भय नहीं रहता है।

(ii) सभी प्रकार के ज्वरों (कासश्वासज्वर) से छुटकारा मिलता है।

(iii) अणियादि सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती है।

(iv) मृत्यु वश में हो जाती है।

(v) यथाविधि अहार विहार और 40 दिन तक अभ्यास से प्राणायाम सिद्ध योगी हो जाता है।

(vi) भस्त्रिका कुम्भक के साथ शक्तिचालिनी से इच्छामृत्यु प्राप्त होती है।

(vii) 72 हजार नाड़ियो के मलशोधन (प्रक्षालन) के लिए उपयोगी है।

(viii) मन वश में होकर समाधि में लीन होकर निद्रारहित अवस्था में रूद्राणी , शाम्भवी मुद्रा तथा उन्मनी अवस्था प्राप्त करता है।

7.4 ग्रंथि एवं कुण्डालिनी का स्वरूप

ग्रन्थियाँ

हठयोग साधना में ग्रन्थियों का बड़ा महत्व है। आपने यह जान लिया कि 72 हजार नाड़ियों में सें तीन प्रमुख नाड़ियां इडा, पिंगला एवं सुषुम्ना प्रमुख है। सुषुम्ना में प्राणसंचार के समय बीच में बाधाएं या आवरण भी आते है। इन बाधाओं के कारण प्राणों की यह संवेदना निर्बाध रूप से आगे नहीं बढ़ पाती। आगे बढ़ने में इनके लिये तीन अवरोध उपस्थिति होते है प्रथम हृदय प्रदेश में जिसे बाहा्र ग्रन्थि कहा जाता है। द्वितीय कष्ट प्रदेश में जिले विष्णु ग्रन्थि कहा जाता है। और तृतीय भूमध्य का प्रदेश जहां रूद्रग्रथि मानी जाती है। इन तीनों ग्रथियों का भेदन अर्थात इनमे प्राणों का आबाध संचरण होना साधक के लिये सर्वश्रेष्ठ पुरूषार्थ या श्रेष्ठतम करणीय कर्म होता है।

कुण्डलिनी

आपने उपरोक्त शक्ति चालिनी मुद्रा में कुण्डलिनी के विविध पर्यायवाची नामों को देखा। जिस प्रकार सम्पूर्ण प्रकृति के साथ पृथ्वी का आधार शेषनाग को माना जाता है, उसी प्रकार सभी योगतन्त्रों का आधार कुण्डलिनी को माना जाता है। जीव (शक्ति) शिव से भिन्न नहीं है किन्तु भिन्न न होने पर भी भिन्न सा बनकर बन्धन की अवस्था में सुषुप्ति में समय व्यतीत कर रहा है। ईश्वर के निग्रह अथवा तिरोधान से जीव का जगत् प्रारभ्भ होता है। यही आत्मा का पतन है। अर्थात् शक्ति सहस्त्रार स्थान से पतित होकर क्रमशः नीचे आकार मूलाधार स्थान में प्राणशक्ति के सहारे पूर्ण जीवत्व को प्राप्त करता है। ऐसे ही ईश्वर की कृपा से जीव का संसार सदा के लिए निवृत भी हो सकता है। यही जीव कुण्डलिनी शक्ति के जागने से तथा उर्ध्वकगामी होकर क्रमशः अपने पूर्व के सहस्त्रार स्थान में पहुंचाने से जीवभाव का त्याग कर अपना स्वाभाविक शिवत्व धारण कर लेता है। यही आत्मा का उद्धार है। यही शक्ति का शिव से योग है और यही जीव के जीवन का सम्पूर्ण सार है।

कुण्डलिनी का स्थान गुदा स्थान से आधे अंगुल ऊपर मूलाधार स्थान में है। यहाँ सुप्त स्थिति में कुण्डलिनी पड़ी रहती है। और ऊपर सहस्त्रार स्थान में शिव का निवास रहता है। योगाभ्यास के द्वारा योगी जब कुण्डलिनी का जागरण करता है तब उसे अत्यन्त प्रबल संवेगों के ऊपर उठने का अनुभव अति सूक्ष्म रूप में होता है। इस स्थिति में महसूस होता है कि मेरूदण्ड में मस्तिष्क की तरफ ऊपर सरकता या कुछ चढ़ रहा है। यहा उर्ध्व् गमन् मोक्ष द्वार को खोलता है। कुण्डलिनी को बालरण्डातपस्विनी भी कहा जाता है, क्योंकि वह सहस्त्रार स्थान-स्थित शिव से विलग होकर नीचे योनिमण्डल में विरहावस्था में पड़ी हुई ऐसे प्रतीत होती है। जैसे पुनर्मिलन के लिए तब तक तपस्या करती रहती है। जब तक वह सहस्त्रार स्थित शिव को प्राप्त नही हो जाती है। ऐसा साधना सें संभव है जब प्राण ऐसा कर सकने में अभ्यस्त से संभव है जब प्राण ऐसा कर सकने में अभ्यस्त हो जाएँ। अर्थात् कुंभक-अभ्यास के द्वारा प्रणि संवेदन को सुषुम्ना में प्रविष्ट कराकर ब्रह्मरंध्र में उसका विरोध कर लिया जाय। इसे कुण्डलिनी जागर या बोध कहते है। इससे सहजअवस्था प्राप्त होती है। प्राण, अग्नि और चित्र आदि के साथ कुण्डलिनी का ब्रह्मरन्ध्र में विलीन हो जाना योग की उत्तम और श्रेष्ठतम अवस्था है। इस कुण्डलिनी प्रबोध से योगी की दृष्टि भावहीन शून्यावस्था जैसी हो जाती है।

7.5 **नाद बिन्दु कला**

नाद-बिन्दु-कला

हठयोग प्रदीपिकाकार नें नाद-बिन्दू-कला को शिवस्वरूप बताते हुऐ शिव को गुरू के रूप में नमस्कार किया है। नाद-बिन्दु-कला वास्तव में एक तत्व की साधना है। जगत् की प्रत्येक वास्तु तीन अवस्थाओं में रहती है ये है व्यक्त (स्थूल) सूक्ष्म और अव्यक्त। सभी मनुष्यों में भी यही तीनों अवस्थायें विद्यमान रहती है। प्रथम अव्यक्त अवस्था जिसमें चित्त (अव्यक्त) आता है। द्वितीय सूक्ष्म अवस्था जिसमें गतिशील प्राण आता है। प्राण (सूक्ष्म) अवस्था जिसमें गतिशील प्राण आता है। प्राण (सूक्ष्म) चित्त में उठा हुआ स्फूरण को ही प्राण को गतिमान करता है तथा तृतीय क्रियाशील व्यक्त शरीर (स्थूल) प्राण की गतिशीलता के द्वारा क्रियाशील या गतिशील बनता है।

हम देखते है कि हम जो श्वास लेते है जिसे हम आते जाते महसूस भी करते है यह श्वास हमारे प्राण का बाहरीरूप है। यही प्राण इससे पूर्व चित्त के ऊपर स्पंदन स्परूप में विद्यमान होता है। और यही स्पंदन हमारी शारीरिक उष्णता का कारण है तथा साथ ही नाद भी उत्पन्न होता है। यह आन्तरिक उष्णता (तेज) शरीर के बाहर क्रान्ति के रूप में तथा यदि आन्तरिक रूप से ज्योति के रूप में दिखाई देती है। इसको अग्नि तत्व भी कहा जाता है। उसी तत्व का परिणाम ही नाद (अर्न्त नाद) कहा जाता है। यही नाद ब्राह्य स्वरूप में बाहर वाणी के रूप में निः सृत होता है। वाणी भी अन्दर में प्राण की ही परिवर्तित अवस्था है। भीतरी प्राण जब निर्बाध रूप में और मुख से टकराकर (बाधित होकर) निकलता है तब स्वर रूप में अक्षरों शब्दों आदि का रूप बन जाता है।

बिन्दु से ही अर्न्त नाद उत्पन्न होता है या यो समझे कि अर्न्तरनाद को जो मूल स्वरूप है वह बिन्दु है। और इस बिन्दु का भी जो मूल स्वरूप है उसे कला नाम से जाना जाता है। अर्थात नाद (स्थूल रूप) सूक्ष्म रूप में परिवर्तित रूप में जाकर कला (अव्यक्त) रूप बन जाते है। इस प्रकार नाद-बिन्दु और कला

ध्वनि की विभिन्न अवस्थाएं है। इन सभी अवस्थाओं के मूल में एक मात्र प्राण ही होता है जो चित्त से स्पंदिन होता है। और इसे ऐसा भी समझा सकते है कि नांद के भीतर का अनाहतनाद, बिन्दु के भीतर की ज्योति तथा कला के भीतर के दिव्य तथा अपूर्व संस्पर्श से आशय रखता है। ये सभी विभिन्न स्परूप नांद-बिन्दु-कला प्राण तथा प्राणिक क्रियाओं से अभिप्रेत है।

7.6 समाधि एवं नादानुसंधान

समाधि

स्वात्माराम जी ने उपदेशित किया है कि समाधि वह स्थिति या अवस्था है। जो साधक से मृत्युभय को दूर कर देती है। सुख अर्थात मोक्ष या मुक्ति प्रदायक अवस्था है। तथा ब्रह्म के आनंद में जीव को प्रतिष्ठित कर देने वाली अवस्था है। इस समाधि अवस्था को अनेक नामों से जाना जाता है ये है राजयोग, समाधि, उन्मनी, मनोन्मनी, अमरत्व, लय तत्व , शून्याशून्य, अमनस्क, अद्वैत, निरालम्ब, निरउजन, जीवन्मुक्ति, सहजा, तुर्या, (अवस्था) ये सब समाधि के पर्यायवाची है।

समाधि की अवस्था ठीक वैसी ही अवस्था है जैसे जल में सेधा नमक घोलने पर वह तदाकार हो जाता है, वैसे ही मन जब आत्मा से तदाकार हो जाता है तो इस ऐक्य को समाधि अवस्था कहते है। जब प्राण क्षीण होकर , और मन आत्मा में तदाकार होकर लीन हो जाता है तब प्राण और मन की समरसता या जीवात्मा और परमात्मा का सामरस्त्र होने पर सभी संकल्प नष्ट हो जाते है। यही समाधि की स्थिति कहलाती है। राजयोग (समाधि) के प्रभाव को तत्वतः पूर्ण रूप से कोई नहीं जानता है इसका प्रभाव ज्ञान, या मुक्ति, या सिद्धि के रूप में गुरू कृपा द्वारा ही संभव है। गुरू कृपा द्वारा ही विषयों का त्याग, तत्वदर्शन, आत्म ज्ञान और सहज (तुर्या) अवस्था की दुलर्भता सुलभ हो पाती है। आसन प्राणायाम मुद्रा बंध एवं कुण्डलिनी जागरण पर प्राण (वायु) शून्य (ब्रह्मरन्ध्र) में लीन हो जाती है। शक्ति बोध (कुण्डलिनी-जागरण) होने समस्त कर्मो साधनाओं से मुक्ति प्राप्त कर योगी सहजावस्था की प्राप्ती कर लेता है। जब प्राण सुषुम्ना में प्रवाहित होते है एवं मन शून्य में (ब्रह्म) में विलीन हो जाता है। तब योगी के समस्त कर्म निर्मूल हो जाते है।

मन और प्राण का लय

जब चित्त समस्त को प्राप्त हो जाता है और प्राणवायु सुषुम्ना नाड़ी में गमन करती है , तब अमरोली, वज्रोली, और सहजोली, मुद्रायें स्वतः सिद्ध हो जाती है। प्राण रहने तक मन भी नहीं मरता इस कारण अन्तः करण मे ज्ञान का उदय नहीं हो सकता है। जो साधक प्राण और मन का लय कर लेते है वही मोक्ष प्राप्ति कर पाते है। अतः साधक को प्राणों को ब्रह्मरंध्र में प्रवेश करवाना चाहिये। चूकि सूर्य नाड़ी और चन्द्रनाड़ी रात्रि एवं दिन रमी काल को धारण करते है जबकि सुषुम्ना उस काल का भोग करती है। अतः काल भूज्ञाणी का यह गुप्त ज्ञान प्रकाशित किया जाता है। 72 हजार नाड़ी जालों में जकड़े जीव को सुषुम्ना नाड़ी (शम्भवीशक्ति) शिव की प्राप्ती करवाती है। आत्मसाक्षात्कार प्रदान करती है। चित्र की वृत्ति के दो हेतु (कारक) है। (i) वासना (ii) प्राण (वायु)की चंचलता। इनमें से एक का भी निरोध हो जावे तो दूसरा स्वतः विरूद्ध हो जाता है। इस प्रकार मन और प्राण का लय अन्योन्याश्रित है। सुषुम्ना में

प्रवाहित प्राण जब ब्रह्मरन्ध में प्रविष्ठ हो जाते है तब मन का लय हो जाता है। जैसे- रस-पारा (पारद) और मन स्वभावतः चंचल है। औषधि योग से मूर्छित-भस्मीभूत पारद व्याधियों का नाश कर देता है। उसी प्रकार ब्रह्मरन्ध में लय (मूर्छित) प्राण दीर्घ जीवन प्रदायक है।

शाम्भवी मुद्रा

यह मुद्रा सभी को सिद्ध नही हो सकती यह कुलवधु के समान गोप्य है। जबकि वेद, शास्त्र, और पुराण गणिका (सबके लिए सुलभ होने से) के समान है। इस मुद्रा में लक्ष्य भीतर हो (मनस्थिर) दृष्टि अर्धनिर्मित नेत्रों के साथ ब्राह्य दृष्टि न हो यही शम्भवी मुद्रा है। इस मुद्रा में साधक चित्र और प्राणवायु को अन्तर्रलक्ष्य में विलीन कर दृष्टि से नीचे देखते हुए भी नही देखता है यही शाम्भवी मुद्रा है।

लाभ

खेचरी की तरह शाम्भवी मुद्रा से भी अवस्था और स्थान भेद से चित्सुख रूप शून्य में चित्र के लय का आनन्द प्राप्त होता है।

उन्मनी मुद्रा

उन्मनी मुद्रा नेत्र के तारों को नासिका के अग्रभाग में स्थिर कर प्रकाशमान ज्योति में संयुक्त कर शाम्भवी मुद्रा के अभ्यास के मन को अर्न्तेलक्ष्य-बर्हिदृष्टि की युक्ति से तल्लीन करने पर उन्मनी अवस्था की सिद्धि होती है।

उन्मनी भाव के लिए काल का अभाव है अर्थात लिंग का पूजन (आत्मस्वरूप का चिन्तन) न दिन और न रात बल्कि हरक्षण सदैव करने से आत्मस्वरूप में लीन होकर उन्मनी भाव प्राप्त होता है।

लाभ

त्रिकाल में मन शान्त होकर सहजावस्था प्राप्त होती है। एवं आत्म साक्षात्कार प्राप्त होता है।

नादानुसंधान

हठयोगप्रदीपिका में महायोगी गोरखनाथ जी द्वारा उपदिष्ट नाद साधना का विवेचन किया गया है। अदिनाथ शिवजी ने लय के सवालाख प्रकार बतलाये है। इन प्रकारों में सर्वश्रेष्ठ प्रकार नादानुसंधान है।

नदानुसंधान हेतु मुफ्तासन अर्थात सिद्धासन में शाम्भवी मुद्रा से दाहिने कान में नाद का श्रवण करना चाहिये। इस हेतु हाथ दोनों कान, दोनों नासारन्धों और मुख को हाथ की अंगुलियों से निरोध करना चाहिये। इस प्रकार करने से सुषुम्ना मार्ग में नाद सुनाई देता है। इसे षण्मुखी मुद्रा भी कहते है। इस नाद साधना की निम्नलिखित उत्तरोत्तर चार अवस्थायें है। देखें सारणी क्रमांक13

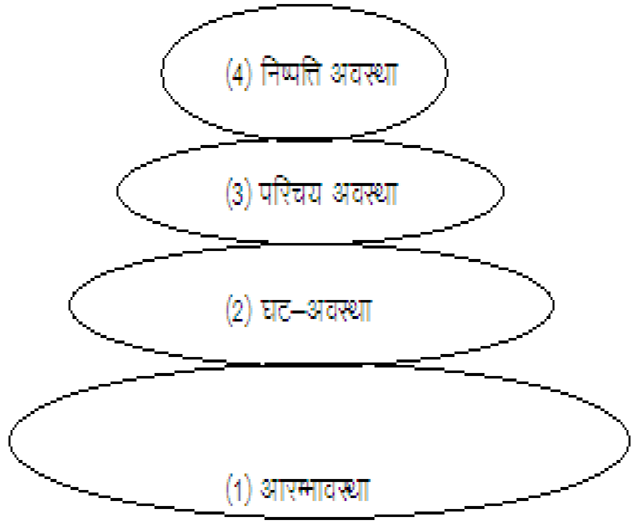

इनमे प्रथम अवस्था में गम्भीर या उच्चनाद , द्वितीय घट-अवस्था में कम गम्भीर नाद , तृतीय परिचय अवस्था में सूक्ष्म तथा चतुर्थ निष्पति अवस्था में अत्यन्त सूक्ष्म नाद सुनाई देने लगता है। इन नादों का श्रवण स्थूल इन्द्रियों को अंगुलियों से बन्द कर दिया जाता है। जिसे ब्राह्य ध्वनि सुनाई ही न दे। इस प्रकार वृत्ति ब्राह्य जगत् से सर्वथा असम्प्रक्त होने पर अन्तः शरीरस्थ सुषुम्ना मार्ग में स्पष्ट और उच्च नाद का श्रवण होने लगता है। जिसका परिणाम साधक का मन उस अलौकिक नाद मे लीन दोलय को प्राप्त करता है। और ईश्वर सायुज्य पद प्राप्त कर सकता है।

7.7 यौगिक चिकित्सा के सिद्धान्त एवं स्वरूप

यौगिक चिकित्सा

हठयोग प्रदीपिका के सामान्यतः सभी प्रकाशित संस्करणों में चार उपदेश ही प्राप्त होते है। किन्तु कैवल्यधाम लोनावाला पूना से प्रकाशित हठयोग प्रदीपिका ग्रंथ मे पंचम उपदेश के अन्र्त गत यौगिक चिकित्सा के आधारभूत सिद्धांतों का वर्णन योग साधना के दौरान उत्पन्न विभिन्न शारीरिक विकारों के शमन या शारीरिक विकारों के उत्पन्न होने से बचने के लिऐ योग चिकित्सा के सिद्धांत दिये गये है जो बहुत उपयोगी है। कुल 24 श्लोकों में योग चिकित्सा के सटीक सिद्धांत दिये गये है। इनका अध्ययन सभी इस इकाई में हम करने जा रहे है। हठयोग की साधना में योग्य गुरू न मिलने पर, यह सम्भावना बनी रहती है। कि हठाभ्यास में कहीं कोई गलत प्रक्रिया तो नही अपना ली गई है। अतः तद्जनित व्याधियों के निवराणार्थ यौगिक चिकित्सा के आधारभूत सिद्धांत जो स्वास्थ्य की सम्यकता के लिए आयुवेर्दिक चिकित्सा के मूल सिद्धांतों पर ही आधारित है इनको ही आधार बनाया गया है।

प्रारंम्भ में योग चिकित्सा हेतु वात पित्त एवं कफ के स्थानों का शरीर में निरूपण किया गया है। प्रसंग में यहां यह भी बड़ा व्यावहारिक तथ्य स्पष्ट कर दिया गया है कि योग साधको के प्रमाद या गलती

से आसन-प्राणायामादि अंगो के अभ्यास से वायु के गलत मार्ग पर प्रसरण से उन अंगों में गांठ बन जाने , अथवा कफ की अधिकता के कारण हद्रयशूल , पाश्र्वशूल पृष्टशूल आदि अनेकानेक रोगों के होने की सम्भवनाएँ बनी रहती है। इनके निदान हेतु आयुर्वेदिक सिद्धांतों को ध्यान में रख कर इन्हे ं प्रयुक्त किया जाता है।

यौगिक चिकित्सा के सिद्धांत

योगिक चिकित्सा का सिद्धात मानवशरीर की निरोगता हेतु आयुर्वेद को त्रिदोष सिद्धांत पर अवधारित है। आयुर्वेद का त्रिदोष सिद्धांत समस्त ब्याधियों को तीन बड़े भागों में बांटता है ये निम्नलिखित है-

(1) वात विकार जन्य रोग

(2) पित विकार जन्य रोग

(3) कफ विकार जन्य रोग

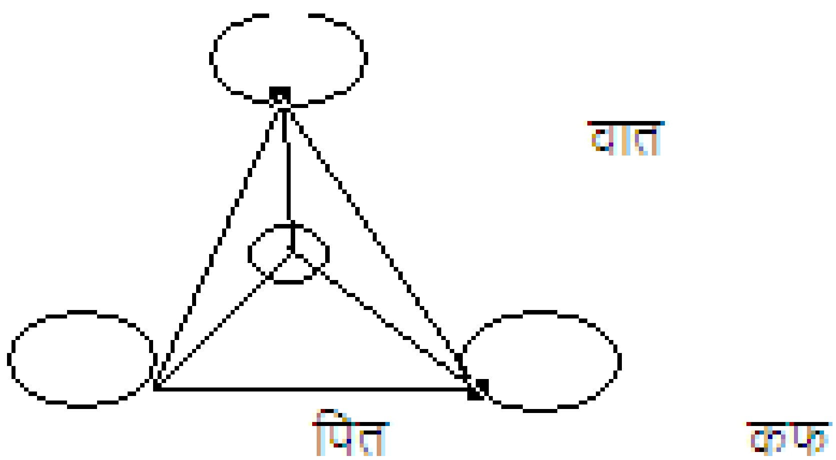

इन त्रिदोषों या त्रिधातुओं में विषमताएँ उत्पन्न होने से रोगों की उत्पति होती है। इन तीनों विकारों में सबसे ज्याद विकार वातदोष से होते है , क्योंकि वात विकार अन्य दानों विकारों के साथ भी जुड़ा ही रहता है। केवल पित्त या केवल कफ जन्य रोग नहीं होते है। किन्हीं भी विकारों में वात का कुछ न कुछ अंश अवश्य विद्यमान रहता है। यहाँ यह भी स्पष्ट समझ लेना चहिये कि केवल वात जन्य रोग हो सकते है। इस सिद्धांत की मुख्य मान्यता यह है कि मानव शरीर मुख्यतः प्राण संचार पर ही विद्यमान रहता है। सम्पूर्ण शरीर का स्वास्थ्य या अस्वास्थ्य मुख्य रूप से प्राण संचार की सही या गलत प्रक्रिया पर ही निर्भर होता है। इस कारण से स्वात्माराम चूकिं व्यावहारिक योगी होने के कारण इस तथ्य को नजर अदांज नही कर सकते थे। इस कारण उन्होंने योग के गलत अभ्यास से होने वाले रोगों से मुक्ति के लिए प्राण (वायु) की गति के नियमन का सम्य्क रूप से निरूपण प्रमुखता के साथ स्पष्ट किया है।

योग साधना में विकार उत्पत्ति के कारण

योग विज्ञान किसी भी दोष का मूल कारण मन या चित्त की गतिशीलता (चंचलता) या अस्थिरता को ही मानता है। मन को कहीं कहीं चित्त (मन) के सम्पूर्ण कार्य ब्यापारों को वृत्तियों की संज्ञा द्वारा निरूपित किया गया है। और चित्त की विक्षिप्तता से सभी मनों कायिक रोगों का उद्गम स्त्रोत माना गया है। चित्त की विक्षिप्तता से धीरे-धीरे शरीर भी विविध रोगों से ग्रसित होने लगता है। चित्त के ये विक्षेप नौ प्रकार है-

(1) व्याधि (2) स्त्यान (3) संशय (4) प्रमाद (5) आलस्य (6) अविरति (7) भ्रान्तिदर्शन (8) अलस्य भूमिफल (9) अनवस्थितत्व तथा इनके साथ ही चार और प्रकार के विकार उत्पन्न होते है जिनमें- (1) दुःख (2) दौर्मनस्य (3) अंगमेजयत्व (4) श्वासप्रश्वास।

इन विक्षेपों तथा उनके सहायक विक्षेपों से मानसिक व्याधियां तो होती ही है किन्तु साथ में शरीरिक व्याधियाँ भी इनसे उत्पन्न हो जाती है। योगाभ्यास शरीर के स्तर पर शरीर को तथा मन के स्तर पर मन विशिष्ट प्रकार के अनुशासन में बांधकर नियमित संयमित एवं रोग एवं विकार रहित करता है। यह स्पष्ट ध्यान रखने की आवश्यता है कि योग का लक्ष्य शारीरिक रोगों चिकित्सा या रोगानवारण नहीं है बल्कि ये तो सत्यज्ञान से हुये तनाव रहित मन की सहजता से स्वयमेव ही निरोग हो जाते है। इस प्रकार शारीरिक एवं मानसिक चिकित्सा सह उत्पाद के रूप में योग साधना के प्रतिफल के रूप प्राप्त होते रहते है। इसी कारण योग साधना सभी प्रकार के दुःखों से निवृत्ति की साधनभूता है। राजयोग की उपलब्धि में प्रारम्भिक चरणों के रूप में हठयोग की साधना से मलशुद्धि , नाड़ीशुद्धि तथा अन्ततः देहशुद्धि हो जाती है। योगसाधना में ब्राह्य करणों के शुद्ध होने पर ये अन्तः करणों को ज्यादा विक्षेपित नही कर पाते और परिणाम स्वरूप कारण शरीर अपने मूल या सत्य स्वरूप में होने पर कैवल्य की स्थिति बन जाती है। इस प्रकार साधना (शरीर) और साध्य (कैवल्य) के बीच में जो भी सूक्ष्म या कारण शरीर रूपी पद आते आते है। वे यदि स्वभाविक स्वरूप में है , तो विकार या रोग रहित अवस्था होती है। किन्तु पूर्व संस्कार इस सहजता में सदैव विध्न उत्पन्न करते है। जिससे सूक्ष्म शरीर से होते हुये स्थूल शरीर में ये उत्पन्न होते है तथा उनके स्वभाव (सत्व , रज, एवं तम) के अनुरूप शरीर में रोग उत्पन्न होते रहते है। इन्हें सावधानी पूर्वक, समझकर हठयोग प्रदीपिका में वर्णित षटकर्मो, आसनों , प्राणायामों मुद्राओं एवं बन्धों के अभ्यास से स्थूल एवं सूक्ष्म शरीर से संस्कार जन्य दोषों को दूर करने से कारण शरीर की ''स्वा'' स्थिति बन पाती है। इस प्रकार हठयोग ही राजयोग का प्राथमिक साधक योग बन जाता है। हठयोग प्रदीपिका भी स्वास्थ्यानुसंधान हेतु निम्न क्रम अपनाती है-

(1) शारीरिक स्वास्थ्य - षट्क्रिया, आसन प्राणायाम, आदि (बहिरंग साधना)।

(2) मानसिक स्वास्थ्य - मुद्रा एवं बन्धों (अन्तरंग साधना)।

(3) आध्यात्मिक स्वास्थ्य - कुण्डलिनी बोध एवं नादानुसंधान रूपी हठ साधना।

हठयोग प्रदीपिका स्वास्थ्यानुसंधान में इस सिद्धांत को लेकर आगे बढ़ती है कि चित्त (मन) और प्राण सामान्य रूप से शरीर में साथ-साथ गतिशील होते है। प्राण की क्रिया का बाहरी स्वरूप श्वास प्रश्वास है और सभी रोग प्राण की सामान्य गति में किसी न किसी प्रकार के अवरोध का ही कारण या परिणाम है।

इसी लिये इन अवरोधों को दूर करना स्वात्माराम जी द्वारा हठप्रदीपिका का शारीरिक चिकित्सा सिद्धांत का स्वरूप बन गया है।

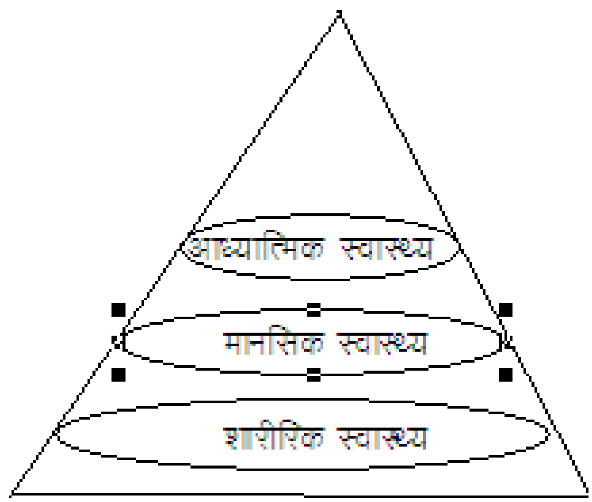

स्वास्थ्यानुसंधान क्रम

हठयोग प्रदीपिका में सामान्य रोग एवं उनकी चिकित्सा

हठयोग प्रदीपिका का पंचम उपदेश यौगिक चिकित्सा के सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक उपदेशों का चैबीस (24) श्लोकों में सूत्र रूप अद्धितीय संग्रह हैं। प्रथम सूत्र से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि दिनचर्या की प्राकृतिक गति की किसी भी अवहेलना का परिणाम रोग या विकार होते है प्रमाद शब्द से इस उपदेश का प्रथम श्लोक प्रारम्भ होता है जिसका बड़ा व्यापक अर्थ हैं प्रमाद से व्यक्तित्व का एक प्रकार भी बनता हैं जिसे प्रमादी कहते हैं। व्यापक अर्थ में समस्त शारीरिक व्याधियाँ या रोग प्रमाद जन्म ही हैं।

प्रमादी युज्यते यस्तु वातादिस्तस्य जायते।

तद्दोषस्य चिकित्सार्यं गतिर्पायोर्निरूप्यते।।

(ह.प्र. 5/1)

रोग उत्पत्ति एवं प्राण क्रिया

मन एवं प्राण अन्योन्याश्रित कार्य करते ऐसा हमने पिछले उपदेश में अध्ययन किया इसी आधार पर रोगों की उत्पत्ति एवं उनके कारण निर्धारित एवं उनके कारण निर्धारित किये गये हैं।

प्राण की क्रिया का बाहरी स्वरूप श्वास प्रश्वास है और सभी रोग प्राण की सामान्य गति में कुछ अवरोध के कारण ही उत्पन्न होते हैं। इस कारण इन अवरोधों को दूर करने के लिए धीमी (गहरी) और लम्बी पूरक रेचक क्रिया तथा यथाविधि कुंभक करने से और चित (मन) को रोग ग्रस्त अंग पर एकाग्र करने से उस स्थान पर प्राणों का प्रवाह शुरू हो जाता हैं। प्राणों में प्रवाह का अर्थ ही हैं निरोगता। पूरक-

रेचक कुभंक आठ भेदों (प्राणायामों के 8 प्रकार) का सम्यक प्रयोग एवं साथ ही शासन का अभ्यास शरीर की सभी माँस-पेशियों को शिथिल एवं प्राणवान् बनाते हैं। ऐसी शारीरिक स्थिति में साधक योग के अभ्यासो एवं क्रियाओं को करने में समक्ष हो जाता हैं तथा किसी प्रकार के रोगों की उत्पत्ति की संभावना शेष नहीं रहती हैं।

रोग एवं यौगिक चिकित्सा

योग साधना एवं सामान्य दशा में भी प्रमाद के कारण साधक से जो गलतियाँ हो जाती हैं उनसे उत्पन्न त्रिदोषों (वात, पित्त एक कफ) के कारण उत्पन्न रोगों की चिकित्सा के लिए वायु की गति अर्थात् प्राणों का संचरण जानना आवश्यक है कि प्राण (वायु) की गति शरीर में कब कहाँ और कैसी हैं। रोगों की यौगिक चिकित्सा हेतु स्वात्मारामजी द्वारा हठयोग प्रदीपिका में निम्नलिखित बिन्दुओं को ध्यान रखना आवश्यक हैं।

(1) रोगों की चिकित्सा के लिए (वायु) प्राण के ऊपर उठने की गति को प्रयत्न पूर्वक जानकर (जिससे रोगों की संभावना होती हैं) साधक को सतत् रोगों की चिकित्सा करना चाहिये।

(2) शरीर के विभिन्न अंगों के रोग उनमें रहने वाली वायु (प्राण) के अवरोध होने के परिणाम स्वरूप होते है। इनमें निम्नलिखित त्रिदोषों का स्थान शरीर के अंगों में निम्नलिखित प्रकार से है-

(i) वात रोगः- पाव में तलवे से नाभि प्रवेश तक वात वायु का स्थान होता है इन अंगों के रोग वातजन्य होता हैं।

(ii) पित्त रोगः- नाभि प्रवेश से हृदय तक के अंगों में पित्त का स्थान माना गया हैं नाभि से हृदय प्रवेश तक के अंगों के रोगों को पित्तजन्य रोग के रूप में चिकित्सा करना चाहिये।

(iii) कफ रोगः- हृदय प्रवेश के ऊपर के शरीर में सिर के अंतिम भाग तक स्थित अंगों में कफ का स्थान है। शरीर के इस भाग में स्थित अंगों की चिकित्सा तदनुसार कफ जन्य रोग के रूप में करना चाहिये।

(3) त्रिदोषों से उत्पन्न रोगों का कारण वायु (प्राणों) का सही मार्ग में अबाधित चलते रहना ही उसकी उचित व स्वस्थ्य क्रियाशीलता का परिचायक हैं। यदि प्राण कही बाधित होते हैं अर्थात् प्राणों के संचरण में कही रूकावट उत्पन्न होती है तो उस स्थान में त्रिदोषों में जो दोष उस वायु (प्राण) के साथ होगा उससे संबन्धित गांठ उस स्थान पर बन जावेगी। इस प्रकार उत्पन्न रोगों की चिकित्सा निम्नानुसार करेंगे।

(i) यदि गलत मार्ग से प्रवाहित वायु यदि पित्त प्रदेश में जमा होकर गांठ बन जाये , तो उससे छाती में बगल (काँख) में तथा शरीर के पिछले भाग (पीठ) में दर्द उत्पन्न हो सकता हैं। ऐसी समस्याओं में शरीर के अंगों में तेल की मालिश कर गर्म पानी से स्नान करना चाहिये। साथ ही घी के साथ खीर खाकर उसके पच जाने का योग का अभ्यास सही विधि से करना चाहिये जिन अंगों में इस प्रकार की समस्या हो वहाँ स्थित वायु (प्राण) को मन से वहाँ एकाग्र करना चाहिए।इस प्रकार जब चित्त वहाँ एकग्र उस प्राण

(वायु) पर ध्यान लगाया जावेगा तथा एक सम्पूर्ण पूरक कर एक सम्पूर्ण रेचन करना चाहिये। इसी विधि से बार-बार पूरक एवं रेचक करने से जमें हुए वायु की गांठ समाप्त हो जाती हैं। इस प्रक्रिया की साधना के समय प्रायः स्निग्ध (घी तेल से चुपड़ा हुआ) भोजन ग्रहण करना चाहिए। इससे वातजन्य एवं पित्तजन्य दर्द (शूल) अन्य रोग दूर हो जाते हैं।

(ii) यदि वायु कफ प्रवेश में जमा हो जाये और गांठ का रूप ले ले तो धातुओं में विषमता उत्पन्न हो जाने से हृदय रोग , खाँसी, हिचकी, दमा तथा सिर दर्द आदि रोग होने की सम्भावना बनी रहती है। ऐसी स्थिति में मिताहार ग्रहण कर मुँह साफ कर दो-तीन बार कुम्भक का अभ्यास करना चाहिये। इस विधि से श्वास-सम्बंधी रोग दूर हो सकते है। इसके लिए दूसरी विधि भी अपनायी जा सकती है। इस विधि में गरम खीर या घी मिलाकर गरम दूध पीकर बरूणी धारणा का अभ्यास करना चाहिए। इस अभ्यास से चर्मरोग कुष्टरोग भी साथ-साथ दूर हो जाते है। यदि आँख बंद कर यह अभ्यास किया जाये तो रतौंधी के रोग में भी सफलता मिलती है।

(iii) साधक को यदि शरीर में कम्पन या गाठियां की शिकायत हो तो गाठियां का दर्द जिन-जिन स्थानों पर हाता है उन स्थानों पर (प्राण) वायु का चिन्तन करना चाहिये। इस रोग में दीर्घ पूरक रेचक तथा कुंभक करना चाहिये। शवासन की स्थिति में प्राणायाम का अभ्यास भी लाभदायक रहता है।

(iv) सर्व दोष प्रशान्ति के लिये उत्तम स्थान एवं सम स्थान में प्राणायाम का सतत् प्रयोग करने से सभी दोषों की शान्ति होती है।

(v) योगाभ्यास के समय अब कभी भय , बाधा, आदि विध्न उत्पन्न हो , तब साधकों को यथाशक्ति योग के अभ्यास को यत्नपूर्वक उत्तरोतर बढ़ाना चाहिये। इस प्रकार सतत् अभ्यास सभी रोगों का हरण कर काया की शुद्धि कर देता है।

7.8 **सारांश**

प्रस्तुत इकाई में मुद्रा बंध ग्रंथियां, कुण्डलिनी नाद बिन्दु कला एवं समाधि नादानुसंधान तथा यौगिक चिकित्सा के सिद्धान्तों का आयुर्वेद के त्रिदोशों, वातपित्त कप के अनुसार वर्णन करते हुए योग साधना में विकार उत्पत्ति के नौ प्रकारों का उल्लेख किया है।

7.9 **बोधात्मक प्रश्न**

1. पंच्चमुद्राओं (बंध) का स्वरूप बताइये।
2. ग्रंथि एवं कुण्डालिनी का स्वरूप समझाइये।
3. नाद बिन्दु कला उल्लेख कीजिए।
4. समाधि एवं नादानुसंधान पर टिप्पणी लिखिए।

5. स्वास्थ्य प्राप्ति यौगिक चिकित्सा का वर्णन कीजिए।
6. योग साधना में विकास उत्पत्ति के कारण लिखिए।

7.10 **संदर्भ ग्रंथ सूची**

- अष्टांग योग - चरणदास अनुवादक , श्री ओ. पी. तिवारी , प्रकाशक कैवल्यधाम-एस. एम. वाई. एम. समिति , कैवल्यधाम लोनावाला पूना
- योग परिचय - डॉ पीताम्बर झा , प्रका. गुप्ता प्रकाशन डी- 35 साउथ एकसटैंशन भाग I नई दिल्ली - 49
- योग और अनुसंधान स्वामी कुवलयानन्द, कैवल्यधाम लोनावाला पूना 410403
- साधना स्वामी शिवान्द , दिव्य जीवन संघ , पत्रालय शिवानन्द नगर 249192 , जिला टिहरी गढ़वाल हिमालय (उ.प्र.)
- राजयोग स्वामी विवेकानंद, अद्धैत आश्रम, 5-देही एन्टाली रोड, कलकत्ता - 700014
- लाईट ऑनयोग महर्षि अरविंद, अरविंद आश्रम पाण्डिचेरी
- योग का परिचयात्मक - डॉ ओमनारायण तिवारी स्वरूपप्रकाशक पं. सुन्दरलाल शर्मा (मुक्त) विश्वविद्यालय छत्तीसगढ़, बिलासपुर (छ.ग.)
- Secrets of Hatha Vidya - Dr. Vijayendra pratap SKY FoundationPhiladelphia Pennsylvania U.S.A.
- योगासन एवं हठयोग विज्ञान - डॉ. ओम नारायण तिवारी, विलासपुर (छत्तीसगढ़)
- पतनजल योग दर्शन - डॉ. नित्यानन्द शर्मा, कोटा (राजस्थान - 324005)

इकाई 8

घेरण्ड संहिता : ग्रंथ परिचय

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.2 प्रस्तावना

8.3 महर्षि घेरण्ड एवं घेरण्ड संहिता का परिचय

8.4 घेरण्ड संहिता में सप्तांक विषय का स्वरूप

8.5 घेरण्ड संहिता में मुद्राओं का स्वरूप

8.6 घेरण्ड संहिता में प्रत्याहार एवं प्रणायाम का स्वरूप

8.7 घेरण्ड संहिता ध्यान एवं समाधि का स्वरूप

8.8 सारांश

8.9 बोधात्मक प्रश्न

8.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

8.0 उद्देश्य

- महर्षि घेरण्ड एवं घेरण्ड संहिता का परिचय
- घेरण्ड संहिता में सप्तांक विषय का स्वरूप
- घेरण्ड संहिता षट्कर्म एवं आसनों का स्वरूप
- घेरण्ड संहिता में मुद्राओं का स्वरूप
- घेरण्ड संहिता में प्रत्याहार एवं प्रणायाम का स्वरूप
- घेरण्ड संहिता ध्यान एवं समाधि का स्वरूप

8.2 प्रस्तावना

घेरण्ड संहिता तान्त्रिक साधना के मत का ग्रंथ है तान्त्रिक मत से किस प्रकार समाधि-लाभ होता है , इसे ही लक्ष्य करके इसमें बताया गया है। क्योंकि तान्त्रिकों की साधना में योग सर्वोपरि एवं सभी प्रकार के योगों का समन्वय है। इसके छटवें उपदेश में जो स्थूल-सूक्ष्म एवं गुरू ध्यान का जो प्रकार दिया गया है वह तान्त्रिक परम्परा के अनुरूप है। योग के आधार ग्रंथ पंतजलि योग सूत्र में लय-योग एवं कुण्डलिनी योग का निरूपण नहीं है। कुण्डलिनी योग तान्त्रिकों की प्रधान साधना है , जिसे घेरण्ड संहिता में ब्यापक रूप से स्पष्ट किया गया है। महर्षि पंतजलि अपने योग सूत्र के एक सूत्र जन्मौषधि मन्त्र तपः समाधिजाः सिद्धयः में मन्त्र से भी सिद्धि मानते है। एक अन्य श्लोक में तस्य वाचकः प्रणवः तज्जपस्तदर्थ भावनम् सूत्र

में भी मन्त्र साधना का विषय स्पष्ट होता है। महर्षि घेरण्ड ने भी धरेण्ड संहिता में आज्ञा चक्र में प्रणव का ध्यान अजपाजप एवं तत्वों के मन्त्रों का उल्लेख किया है। गुरू ध्यान में सभी टीकाओं में तथा मूल में द्वादशाक्षर गुरूमंत्र का ग्रहण किया गया है। प्राणायाम की साधना मुख्य होने से यह संहिता हठयोग साधना के अन्तर्गत विभक्त की गई है। अन्त में हठयोग भी राजयोग में ही पूर्णता प्राप्त करता है अर्थात राजयोग में ही पर्यवसान होता है , तथापि पंतजलि -योग दर्शन से इस संहिता का राजयोग भिन्न है। जहाँ पंतजलि मत सांख्य पृष्ठभूमि में द्वैतवादी है। वहीं यह अद्वैतवादी सिद्धांत का है।

8.3 महर्षि घेरण्ड एवं घेरण्ड संहिता का परिचय

महर्षि घेरण्ड का परिचय

इस इकाई के अन्र्तपगत आप महर्षि घेरण्ड के बारे में जानकारी प्राप्त करेगें। योगा चार्यो की परम्परा में महर्षि घेरण्ड ऋषि अत्यन्त प्राचीन योगी माने जाते है इनके जन्म् समय एवं स्थान का अभी तक पता नहीं चल सका है। राजा चण्डकपालिक जो एक धर्मात्मा एवं आध्यात्मिक व्यक्ति था। उसके योग विषयक प्रश्नों का एवं महर्षि घेरण्ड के उपदेशों का संग्रह ही घेरण्ड संहिता के रूप में प्राप्त होता है। घेरण्ड संहिता की उपलब्ध पाण्डुलिपियों में सबसे प्राचीन पाण्डुलिपियों सन्1804 की उपलब्ध होती है।

मूलतः संस्कृत भाषा में निबद्ध पारम्परिक योग ग्रंथों में घेरण्ड संहिता सामान्यतः सर्वाधिक अर्वाचीन कृति है। विभिन्न स्त्रोतों से प्राप्त हस्तलेखों सर्वाधिक अर्वाचीन कृति है। विभिन्न स्त्रोतों से प्राप्त हस्तलेखों तथा विविध तथ्यों के परिशीलन से इस ग्रंथ की प्राचीनता के साक्ष्यों के साथ इस ग्रंथ का काल निर्धारण 1650 ई 0 से 1750 ई. के मध्य का समय परिलक्षित होता है। यह ग्रंथ हठयोग के एक स्तरीय एवं प्रमाणिक ग्रंथ के रूप में मान्य किया जाता है। महर्षि घेरण्ड के योग को सप्तांग योग कहा जाता है। क्योंकि इन्होंने प्रथम बार योग के सात अंगों का व्यावहारिक निरूपण किया। सप्तांगों में हठप्रदीपिका जैसे हठयोग के मानक ग्रंथ से चार में से केवल तीन अंगों को स्वीकार किया गया है। तथा महर्षि पंतजलि के अष्टांग योग में से इनके सप्तांग योग में केवल पांच अंगां को स्वीकार किया गया है। ये सप्तांग (1) क्रिया (2) आसन (3) मुद्रायें (4) प्रत्याहार (5) प्राणायाम (6) प्रत्याहार और (7) समाधि। इनकी अपनी मौलिक विशेषता और व्यावहारिक पारदर्शिता को दर्शाती है। महर्षि घेरण्ड एक वैष्णव परम्परा के सन्त भी थे। क्योंकि उनके ग्रंथ में अनेक श्लोक यह दर्शाते है जैसे - सप्तम उपदेश के श्लोक18 से यह स्पष्ट भी होता है।

जले विष्णुः स्थले विष्णुर्विष्णुः पर्वतमस्तके।
ज्वालामाला कुले विष्णुः सर्वं विष्णुमयं जगत्।।
सर्वं ब्रह्म विजानीयत् सर्वं पश्यति चात्मनि।।

तथा कुछ स्थानों में नारायण की चर्चा की गई है जिससे ये वैष्णव सिद्धांत के उपासक प्रतीत होते है।

घेरण्ड संहिता का परिचय

सात उपदेशों (अध्यायों) में 350 श्लोकों वाले इस ग्रंथ में महर्षि घेरण्ड ने अपने शिष्य चण्डकापालिक को जो उपदेश दिया वह घेरण्ड संहिता के नाम से जाना जाता है। यह उपदेश छोटा होने पर भी

अध्यात्मिक एवं तांत्रिक रूप में बड़ा ही सारगर्भित एवं व्यवहारिक कसौटी में कसा हुआ है। इस छोटे ग्रंथ में योग जिज्ञासुओं को गागर में सागर भरा हुआ प्राप्त होता है इसी कारण योग साधकों जिज्ञासुओं का यह बहुत लोक प्रिय ग्रंथ है।

इस ग्रंथ में वर्णित प्रणयोग योग की तांत्रिक (i)ति के समरूप है जो कि साधरण साधक को थोड़ा कठिन प्रतीत होता है। इस ग्रंथ में हठयोग कि क्रियाओं का वर्णन करते हुऐ षटकर्म के प्रकार , आसन, मुद्रा, प्रत्याहार, प्राणायाम, ध्यान और समाधि का जैसा निरूपण हुआ है वह अपने आप में विशिष्ट एवं व्यवहारिक है। प्रायोगिक धरातल पर भी योग साधकों जिज्ञासुओं के लिए यह अत्यन्त उपयोगी है।

महर्षि घेरण्ड मुनि द्वारा प्रस्तुत योग का यह अनुशासन उनके शिष्य चण्डकापालिक को उपदेश स्वरूप है। हलांकि महर्षि घेरण्ड का परिचय भी अन्य अनेक ऋषियों की भाँति स्पष्ट उपलब्ध नहीं है। किन्तु चण्डकापालिक का नाम अन्य हठयोग ग्रंथों जैसे हठयोग प्रदीपिका आदि में योग-प्रवर्तक आचार्यो की कोटि में रखा गया है।

8.2 **विषय प्रवेश**

इस खण्ड में जिन तीन इकाईयों का अध्ययन आप करने जा रहे है। इन सभी का आधार महर्षि घेरण्ड के द्वारा रचित हठयौगिक ग्रंथ घेरण्ड संहिता है। इस ग्रन्थ की विषय वस्तु संवाद परक है। इसमें गुरू घेरण्ड अपने शिष्य चण्डकापालिक के द्वारा योग साधना के विषय में पूछे गये विभिन्न प्रश्नों के उत्तरों का क्रमिक निरूपण है। गुरू शिष्य संवाद को विधिवत् ग्रंथ के रूप में पिरोया गया है।

इस ग्रंथ में कुल सात उपदेशों (अध्यायों या काण्डों) में कुल मिलाकर 102 एक सौ दो अभ्यासों का व्यवस्थित वर्णन किया गया है। इन अभ्यासों का संक्षिप्त वर्णन निम्नलिखित है।

(1) बाह्यः शरीर की शुद्धियों हेतु 21 क्रियायें।

(2) शरीर की दृढ़ता और स्थिरता हेतु 32 आसन।

(3) प्राणशक्ति के प्रवाह के नियंत्रण हेतु 25 मुद्रायें।

(4) मन को शान्त एवं अर्न्तेमुखी करने हेतु 5 प्रकार के प्रत्याहार।

(5) प्राणों को जाग्रत करने हेतु मंत्रों सहित 10 प्राणायाम।

(6) ध्यान के तीन प्रकारों (1) बहिरंग ध्यान (2) अन्तरंग ध्यान एवं (3) एकचित्त ध्यान।

(7) आत्मज्ञान की प्राप्ति हेतु इन छः अंगों की साधना उपरांत आत्मा को अपने स्वा में स्थित हो जाने हेतु समाधि का वर्णन।

इस प्रकार कुल मिलाकर 102 अभ्यासों से सात आयामों में धटस्थ योग को पूर्ण किया गया है। यह ग्रंथ अपने आप में अन्य यौगिक ग्रंथों की अपेक्षा अधिक व्यावहारिक एवं सम्यक स्वरूप में प्रतिपादन है।

सारांश में घेरण्ड महर्षि ने चण्ड कपालिक को सात अंगों द्वारा शरीर की शुद्धि हेतु क्रिया फिर आसनों से दृढ़ता, मुद्रा से स्थिरता, प्रत्याहार से धीरता, प्राणायाम से शरीर की लघुता या हल्कापन और ध्यान से आत्मदर्शन तथा समाधि से सर्वथा निर्लिप्त अवस्था को प्राप्त हो मुक्ति को प्राप्त किया जाता है। इस प्रकार घेरण्ड ने अपने योग के एक-एक अंग के अभ्यास से उत्तरोत्तर बढ़ते हुऐ अन्त में योग के चरम लक्ष्य समाधि और समाधि के द्वारा मुक्ति प्राप्ति का मार्ग बताया गया है।

8.4 **घेरण्ड संहिता में सप्तांक विषय का स्वरूप**

महर्षि घेरण्ड द्वारा उपदेशित सप्तांग योग का विषय क्षेत्र सैद्धांतिक युगानुकूल एवं व्यावहारिक रूप में अत्यंत स्पष्ट है। इस सप्तांग क्षेत्र को संक्षिप्त रूप निम्नलिखित प्रकार से समझा जा सकता है।

(1) **प्रथम अंग शोधन (शुद्धि क्रिया) -** घेरण्ड संहिता में सबसे पहले शरीर शुद्धि की क्रियाओं की चर्चा की गयी है, जिन्हें षटकर्म कहा जाता है। इनमें प्रमुख है नेति-नाक की सफाई, धौति-पेट के ऊपरी भाग और भोजन नली की सफाई, वस्ति-आँतों की सफाई, जिससे हमारे शारीरिक विकार दूर हो जाएँ , शारीरिक विकार उत्पन्न ही न हों , नौलि-पेट, गुर्दे इत्यादि का व्यायाम , कपालभाति-प्राणायाम का एक प्रकार, और त्राटक-मानसिक एकाग्रता की एक विधि। षटकमों या (शुद्धिक्रिया) के ये छः अंग माने जाते हैं। शरीर शुद्धि की इन क्रियाओं को महर्षि घेरण्ड ने योग का पहला आयाम माना है। इसके बाद आसनों की चर्चा की है।

(2) **द्वितीय अंग दृढ़ता (आसन):-** महर्षि घेरण्ड ने मुख्यतः ऐसे ही आसनों की चर्चा की है, जिनसे शरीर को दृढ़ता एवं स्थिरता प्राप्त होती है। यहाँ पर भी आसनों का उद्देश्य शरीर पर चूर्ण नियन्त्रण के पश्चात् ऐसी स्थिति को प्राप्त करना है, जिसमें शरीरिक क्लेश, या दर्द उत्पन्न न हो।

(3) **तृतीय अंग स्थैर्य (मुद्रा):-** तीसरे आयाम के अन्तर्गत वे मुद्राओं की चर्चा करते हैं। मुद्राएँ अनेक प्रकार की होती हैं। महर्षि घेरण्ड ने पचीस मुद्राओं का वर्णन किया है , जिनके द्वारा हमारे भीतर प्राणशक्ति के प्रवाह को नियन्त्रित किया जा सकता है। उनका कहना है कि प्राण हमारे शरीर के भीतर शक्ति और ताप उत्पन्न करते हैं। उच्च साधना में जब व्यक्ति लम्बे समय तक एक अवस्था में बैठता है, तो उसके शरीर से गर्मी निकलती है। शरीर का तापमान कम हो जाता है, क्यांेकि हमारे भीतर प्राणशक्ति नियन्त्रित नहीं है। लेकिन मुद्राओं के अभ्यास द्वारा हम प्राणशक्ति या ऊर्जा को अपने शरीर में वापस खींच लेते हैं, उसे नष्ट नहीं होने देते। प्राण को शरीर के भीतर रोकने के लिए महर्षि घेरण्ड ने मुद्राओं का वर्णन किया है।

(4) **चतुर्थ अंग धैर्य (प्रत्याहार):-** मुद्राओं के बाद चैथे आयाम के रूप में उन्होंने इस उद्देश्य के साथ प्रत्याहार का वर्णन किया है कि जब शरीर शान्त और स्थिर हो जाए, प्राणों का व्यय न हो, वे अनियन्त्रित न रहें, हमारे नियन्.ण में आ जायें, तब मन स्वतः अन्तर्मुखी हो जाएगा। पहले हम अपने शरीर को शुद्ध कर लेते हैं। शरीर के विकारों को हटा देते है। उसके बाद आसन में स्थिरता प्राप्त करते हैं। तत्पश्चात प्राण को सन्तुलित एवं नियन्त्रित करते हैं, तो चैथे में मन स्वाभाविक रूप से अन्तर्मुखी हो जाता है।

(5) पंचम अंग लाघव (प्राणायाम):- प्रत्याहार के बाद पाँचवे आयाम में उन्होंने प्राणायाम के अभ्यास को जोड़ा है। प्राणायाम के जितने अभ्यास घेरण्ड संहिता में बतलाए गये हैं , उनका सम्बन्ध मंत्रों के साथ है कि यदि व्यक्ति प्राणायाम करे तो मन्त्रों के साथ। प्राणायाम के अभ्यास में हम श्वास-प्रश्वास को अन्दर-बाहर जाते हुए देखते हैं और उनकी लम्बाई को समान बनाते हैं। महर्षि घेरण्ड ने भी यही (i)ति अपनायी है, लेकिन गिनती के स्थान पर मन्त्रों का प्रयोग किया है। उनका कहना है कि प्रत्याहार की अवस्था में , जब मन अन्तर्मुखी और केन्द्रित हो रहा हो , उस समय सूक्ष्म अवस्था में प्राणों को जाग्रत करना सरल है। उस अवस्था में प्राणों की जाग्रति और मन को अन्तर्मुखी बनाने के लिए परिश्रम नहीं करना पड़ता। प्रत्याहार के बाद स्वाभाविक रूप से सूक्ष्म स्तर के अनुभव , सूक्ष्म जगत् की अनुभूतियाँ होगी और आप प्राण को जाग्रत कर पायेंगे।

मन्त्र के प्रयोग को जोड़कर उन्होंने प्राणायाम के अभ्यास को और शक्तिशाली बना दिया है , क्योंकि जब हम श्वास के साथ मन्त्र जपते हैं तो उसके स्पन्दन का प्रभाव पड़ता है , जिससे एकाग्रता का विस्तार होता और प्राण के क्षेत्र में शक्ति उत्पन्न होती है , जाग्रत होती है। जिस पर हमारा नियन्त्रण रहता है। वह शक्ति अनियन्त्रित नहीं रहती।

(6) षष्ठ अंग प्रत्यक्ष (ध्यान):- इसके बाद छठे आयाम के अन्तर्गत आता है ध्यान। प्राण जाग्रत हो जाएँ, मन अन्तर्मुखी हो जाए , उसके बाद ध्यान अपने आप ही लगता है। उन्होंने ध्यान के तीन प्रकार बतलाए हैं- बहिरंग ध्यान, अन्तरंग ध्यान और एकचित ध्यान। बहिरंग ध्यान में जगत् और इन्द्रियों द्वारा उत्पन्न अनुभवों के प्रति सजगता और एकचित ध्यान में आन्तरिक अनुभूति की जाग्रति होती है।

(7) सप्तम अंग निर्लिप्तता (समाधि):- सातवें आयाम में समाधि का वर्णन किया गया है कि इस प्रक्रिया या समूह को उन्होंने एक दूसरा नाम दिया है- 'घटस्थ योग'। घटस्थ योग का मतलब हुआ, शरीर पर आधारित योग घट का अर्थ होता है शरीर। शरीर को उन्होंने एक घड़े के रूप में देखा, जो पदार्थ से बनी हुई एक आकृति है , और परमेश्वर ने उसमें जे कुछ भर दिया है जैसे - इन्द्रिय, मन, अंहकार से-सब मिलाकर हमारे शरीर रूपी यह घड़े को बनाते है।

अतः आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिए योग की शुरूआत शरीर से होती है और शरीर के माध्यम से हम अपने मानसिक और भावनात्मक स्तरों को नियन्त्रित करके आध्यात्मिक अनुभूति को जाग्रत कर सकते हैं। यह इनकी मान्यता है।

8.6 घेरण्ड संहिता में मुद्राओं का स्वरूप

महर्षि घेरण्ड ने घेरण्ड संहिता के तृतीय अध्याय में मुद्राओं का जो उपदेश राजा चण्डकपालि को दिया वह योग साधक की मानसिक स्थिरता (स्थैर्य) को लिये अत्यंत आवश्यक अंग है। प्रायः हठयोग के ग्रंथों हठ्प्रदीपिका और शिवसंहिता इत्यादि में मुद्राओं की दस (10) संख्या बताई गई है। ये दस मुद्रायें है। (1)

महामुद्रा (2) खेचरीमुद्रा (3) शाम्भवी मुद्रा (4) तड़ागीमुद्रा (5) बज्रोली मुद्रा (6) विवरीत करणी मुद्रा (7) काकी मुद्रा (8) अश्वनी मुद्रा (9) अगोचरी (10) शक्तिचालनी इत्यादि।

महर्षि घेरण्ड ने मुद्रा प्रकरण में भी अपनी व्यवहारिकता अलग सिद्ध करते हुऐ पच्चीस (25) प्रकार की मुद्राओं का वर्णन किया है जो निम्नांकित है।

महामुद्रा नभोमुद्रा उड्डीयानं जलन्धरम्।
मूलबन्धों महाबन्धों महाबेधश्च खेचरी।।

(घे. सं. 3/1)

1	2	3	4	5	6	7	8
महामुद्रा	नभोमुद्रा	उड्डीयनं	जलन्धर	मूलबन्ध	महाबन्ध	महाबेध	खेचरी

विपरीत करी योनिर्वज्रोणि शक्तिचालनी।
ताडागी माण्डुकी मुद्रा शाम्भवी पंचधारणा।।

(घे. सं. 3/2)

11	12	13	14	15	16	17	18
विपरीतकरणी	योनि	वज्रोणि	शक्तिचालिनी	तड़ागी	माण्डुकी	शाम्भवी	पंचधारणा

अश्वनी पाशिनी काकी मातंगी च भुजंगिनी।
पचंविंशातिमुद्राश्च सिद्धिदा इह योगिनाम्।।

(घे. सं. 3/3)

17	18	19	20	21
अश्विनी	पाशिनी	काकी	मातंगी	भुजंगिनी

महर्षि घेरण्ड ने 25 मुद्राओं के अर्न्तहगत निम्नालिखित अभ्यासों को सम्मिलित किया है-

(1) सोलह (16) मुद्रायें-

(2) चार (4) बन्ध और

(3) पाँच (05) धारणायें। इन पाँच धारणाओं में-

(i) पार्थिवी (ii) अम्भासी (iii) आग्नेयी (iv) वायवीय (v) आकाशी धारणायें आती है।

योग साधना में शरीर शुद्धि के बाद आसनों से शरीरिक दृढ़ता प्राप्त करने के बाद भी मन की चंचलता इन दोनों अभ्यासों को पुनः पीछे ले जाती है। अतः मन के नियंत्रण के लिये स्थैर्य के लिये हमें मुद्राओं का सहारा लेना पड़ता है। मुद्रायें मनोकायिक क्रियायें है। अर्थात उभयमुखी है एक तरफ तो ये

बर्हिमुखी में से स्वास्थ्य वर्धन में सहायक है ये अन्तः मुख से ये मानसिक बल और स्थैर्य को भी प्राप्त करवाती है। मुद्राओं का सबंध शरीर में फैली 72 हजार नाड़ियों के सम्यक स्वास्थ्य से सम्बंध रखता है।

योग विज्ञान में जिन मुद्राओं का वर्णन मिलता है वे सभी तन्त्रिका तन्त्र की संवेदनाओं और उत्तेजनाओं को शांत एवं सयंम करने में सहायक होती है। आपने विभिन्न महात्माओं देवी देवताओं को भिन्न-भिन्न प्रकार की मुद्राओं में आसनस्थ बैठे देखा है। इनका भाव क्या है ? भाव का आशय अन्तः स्थैर्य से है। उदाहरणार्थ- नृत्य में हम मुद्राओं के द्वारा ही सभी अर्थो को बिना वाणी से बोले भी ग्रहण कर लेते है। ये भाव वास्तव में हमारे प्राण की अवस्थाओं के घोतक है। हमारा चित्त जिस अवस्था में होता है हमारा मन और शरीर उसी अवस्था को प्रदर्शित करते है। जैसे - चित्त में क्रोध है अहंकार है तो हमारे भाव (मन) और शरीर की दशा में क्रोध का स्वरूप स्पष्ट झलक जावेगा ऐसे ही प्रेम , काम, मद, लोभ इत्यादि इत्यादि। मुद्राओं के द्वारा हम चित्त को शान्त, प्रसन्न आनन्द के भावों से भर सकते है।

घेरण्ड संहिता में कुण्डलिनी (आत्मशक्ति)

घेरण्ड संहिता में कुण्डलिनी के सबंध में मुद्रा प्रकरण में ही उपदेश दिया गया है। क्योंकि कुण्डलिनी योग या क्रिया योग में जिन मुद्राओं का अभ्यास किया जाता है , उनका प्रभाव प्राणमय कोश पर पड़ता है और वे प्राण के प्रवाह को परिवर्तित करने का प्रयास करती है।

महर्षि घेरण्ड कुण्डलिनी शक्ति को मूलाधार में स्थित मानते है। वहां यह शक्ति 31/2 फेरे लगाकर सर्पाकार में शयन कर रही होती है। यह प्रत्येक मनुष्य की मूलाधार है। यह शक्ति जब तक सोयी हुई रहती है तब तक मनुष्य समान्य जीवों की तरह आहार, निद्रा, भय और मैथुन कर्म में ही लगा रहता है और अनेक योनियों में आवागमन् करते रहता है। बिना कुण्डलिनी शक्ति के जागरण के मनुष्य यदि 84 लाख आसनों का अभ्यास भी साध लेता है तो भी उसे ज्ञान की प्राप्ति संभव ही नहीं है।

मुद्राओं के अभ्यास के द्वारा कुण्डलिनी शक्ति का जागरण होता है। कुण्डलिनी शक्ति जब सुख अवस्था से जागती है तो वह सुषुम्ना नाड़ी के मुख को जो कि बंद होता है भेद कर प्रवेश करती है। कुंभक और मुद्राओं के द्वारा अर्जित शक्ति से वह धीरे-धीरे सुषुम्ना पथ पर ऊपर की ओर अग्रसर होती है। जब वह सहस्त्रार चक्र में पहुंचती है तब साधक में आत्मज्ञान (दिव्यज्ञान) का प्रकाश उत्पन्न हो जाता है। घेरण्ड ने कुण्डलिनी जागरण को मुद्रा प्रकरण में समाहित करते हुऐ तीन बिन्दुओं पर ज्यादा जोर दिया है। ये मुख्य बिन्दु निम्नलिखित है-

(1) कुण्डलिनी शक्ति का स्थान मूलाधार में स्थित है।

(2) कुण्डलिनी शक्ति का जागरण ही ज्ञान या आत्मज्ञान है।

(3) कुण्डलिनी शक्ति के जागरण के बाद भी कुछ मुद्राओं का अभ्यास आवश्यक होता है।

घेरण्ड संहिता के बन्धों, धारणाओं एवं मुद्राओं में कुण्डलिनी

(1) मूल बन्ध और कुण्डलिनी:- मूल बन्ध कुण्डलिनी शक्ति को जगाने की समथ्र्य रखता हैं कुण्डलिनी जागरण की अनुभूति विविध रूपों में प्राप्त होती है उदाहराणार्थ - (i) मूलाधार के अन्दर गुप्त शक्ति तत्व के जागरण के रूप में। (ii) मस्तिष्क के उस केन्द्र की सक्रियता या जागृति

से जो मूलाधार से सबंध रखता है। इस केन्द्र के सक्रिय होने पर मानवीय चेतना का जो विस्तार होता है उसे भी कुण्डलिनी जागरण की अनुभूति के रूप में लिया जाता है। क्योंकि यह अनुभूति चेतना को ऐसे लोक में ले जाती है जिसमें विचार , व्यवहार एवं कर्म में एकदम नये परिवर्तन दर्शित होते है।

(2) जालन्धर बन्ध और कुण्डलिनी:- यह बन्ध प्राण की गति को परिवर्तित करने तथा विशुद्धि , आज्ञा बिन्दू और सहस्त्रार चक्रों के जागरण में सहायक है। इसका अभ्यास मृत्यु पर विजय प्राप्त करवाता है। कुण्डलिनी योग के एक सिद्धांत के अनुसार बिन्दूचक्र क्षेत्र में एक मटर के दाने आकार की एक ग्रन्थि है जो एक हार्मोन निकालती है जो वहाँ से निकलकर शरीर में मणिपूरचक तक जाता है। जिसमें शरीर वृद्धता (जीर्णता) प्राप्त करता है। योगी इस हार्मोन को नियंत्रित कर मणिपूर तक नहीं जाने देते जिससें वृद्धता नहीं आती वृद्धता न आने से मृत्यू भी नहीं आता है। यह अमरत्व है।

(3) उड्डियान बन्ध और कुण्डलिनी:- घेरण्ड ने उड्डियान बन्ध को सभी बन्धों में श्रेष्ठतम बताते हुऐ इसका लाभ यह बतलाया है कि इससे स्वाभाविक रूप से मुक्ति प्राप्त होती है। कुण्डलिनी जब जाग्रत होती है तो शनैः शनैः ऊपर की ओर उठती है। तब साधना की कमी होने पर पुनः सुषुप्त अवस्था में जाने की सम्भावना रहती है यही साधक का पतन है। यदि कुण्डलिनी एक बार मणिपूर चक्र को भेद कर आगे बढ़ जावे तो फिर पतन नहीं होता । इसीकारण मणिपूर चक्र का जागरण मोक्ष द्वार का खुलना कहा जाता है। उड्डियान बन्ध का अभ्यास यही कार्य करता है।

(4) महाबन्ध और कुण्डलिनी:- यह बन्ध मूलबन्ध , जालन्धरबंध और उड्डियान बन्ध के लाभों के साथ ही पीनियल ग्रंथि के स्त्राव को प्रभावित करता है तथा अन्तः स्त्रावी तन्त्र का नियमन करता है। साधक के शरीर का क्षय हास जीर्णता को रोकता है तथा कोशिकाओं को पुर्नज्जीवन प्रदान करता है। काया कल्प हेतु यह बन्ध विशेष लाभकारी है। यह सभी चक्रों का जागरण कर प्राण-अपान और समान का अग्निमण्डल में विलय करता है जो प्राणों के अधिकतम आयाम की अवस्था है।

(5) पर्थिवीमुद्रा या अधोधारणामुद्रा:- मूलाधार में स्थित चुर्तुदल कमल में अधोमुखी त्रिकोण के बीच शिवलिंग में 31/2 फेरे लिये लिपटी है। यह पृथ्वीतत्व का प्रतीक इस चक्र का जागरण ध्यान और धारणा द्वारा किया जा सकता है। पृथ्वी तत्व विजय से प्रकृति पर साधक का अधिकार हो जाता है।

(6) आम्भसी धारणा मुद्रा:- स्वाधिष्ठान चक्र जल (पालन पोषण) का प्रतीक है। यह चक्र मनुष्य को अचेतन अवस्था का प्रतीक है संस्कार और कर्म अचेतन मन में पड़े रहते है। यह इनका कर्म क्षेत्र है। अर्थात् उत्पति और भण्डार इसी क्षेत्र में है। जब कर्म और संस्कार जीवन को नकारत्मकता की ओर ले जाने लगते है तब इस मुद्रा की साधना करना चाहिये। निर्बोज अवस्था इस चक्र के भेदन से प्राप्त होती है।

(7) आग्नेयी मुद्रा (अग्नि या वैश्वानर धारणा):- सभी धारणाओं में पूरक के बाद कुंम्भक का निर्देश है। कुंम्भक ही चक्रों को जगाता है। इस धारणा द्वारा मणिपूर चक्र का जागरण होता है। मणिपूरचक्र अग्नि क्षेत्र या नाभि स्थान है।

कुण्डलिनी योग के अनुसार प्राण की उत्पत्ति मूलाधार में होती है। प्राण का संचय मणिपूर में होता है। तथा प्राणों का वितरण आज्ञा चक्र में होता है। यह आग्नेयी मुद्रा हमारे प्राण संग्रह को संतुलित कर हमारी जीवनीशक्ति , गति, क्रियाशीलता को सम्यक बनाती है। तथा आलस्य , प्रमाद, शिथिलता को दूर करती है। इस मुद्रा के सिद्ध होने से काल का भय नहीं रह जाता साधक को अग्नि भी नहीं जला सकती।

(8) वायवीय धारण (वायु धारणा):- अनाहत चक्र का तत्व वायु है। यह भावना या अनुभूति से सम्बंध रखता है। हमारे भीतर द्विविध भावनायें होती है। जैसे- प्रेम और द्वेष तथा क्रोध आदि। इस धारणा का अभ्यास अवचेतन मन की प्रतिक्रियाओं से है जिनका प्रभाव अनाहत चक्र पर होता है। भावना, अनुभूति और व्यवहार पर पूर्ण नियंत्रण इस धारणा की सिद्धि से संभव है। इस धारणा से आकाश गमन की शक्ति प्राप्त होती है।

(9) आकाशी धारणा:- विशुद्धि चक्र का तत्व आकाश है। पूर्व में हमने जो चार धारणायें देखी उनमें चेतना की अशुद्ध अवस्थायें विकार, भावनायें, अनियन्त्रित ऊर्जा, भय, असुरक्षा आदि ही थी। विशुद्धि चक्र चेतना की शुद्ध अवस्था का प्रतीक है। और यहां मन बुद्धि चित या अहंकार नही रह जाता केवल शुद्ध चैतन्य चेतन स्थिति होती है यह धारणा विशुद्धि चक्र का भेदन कर मोक्ष का द्वार खोलती है।

(10) महामुद्रा:- महा का अर्थ उच्चतम तथा मुद्रा का अर्थ मानसिक वृत्ति है। अतः वह मुद्रा जिसमें मानवीय चेतना अपनी उच्चतम अवस्था में गमन करती है। सक्रिय रहती है। यह मुद्रा मूलाधार और आज्ञाचक्र को जोड़ने वाले ऊर्जा परिपथ को उद्दीप्त करती है। इस कारण सम्पूर्ण तन्त्र प्राण ऊर्जा से भर जाता है। और जिससे सजगता बढ़ जाती है।

(11) नभो मुद्रा:- शरीर के सभी रोगों को दूर करने हेतु इस मुद्रा का अभ्यास किया जाता है।

(12) खेचरी मुद्रा:- जिव्हा को मक्खन लगाकर दोहन करते हुऐ रोज खीचे। धीरे-धीरे जिव्हा लम्बी होकर तालूमूल में प्रविष्ट हो सकें। इस मुद्रा से मूर्च्छार , भूख प्यास, तृष्णा, आलस्य आदि नहीं सताते। रोग जरा मृत्यु नहीं होती। अग्नि वायु विष का प्रभाव नहीं होता। नवयौवन आ जाता है। तथा निश्चल समाधि प्राप्त होती है।

खेचरी मुद्रा का अभ्यास चेतना को स्थूल शरीर से पृथक कर कारण शरीर में प्रवेश करवा सकता है।

(13) महाबेध मुद्रा:- यह मुद्रा महामुद्रा की पूरक है और उसके बाद इसका अभ्यास किया जाता है। यह शरीरिक मानसिक और प्राणिक स्तर पर शक्तिशाली प्रभाव दर्शाती है। घरेण्ड के अनुसार महाबन्ध, मूलबन्ध और महाबेध का सतत् अभ्यास साधक को योग विशेषज्ञ (योगवित्) बना देता है।

(14) विपरीतकरणी मुद्रा:- नाभिमूल में सूर्य और तालू मूल में चन्द्र का स्थान है। सूर्य द्वारा चन्द्र से स्त्रवित अमृत का पान करने से प्राणी की मृत्यू होती है। परन्तु चन्द्र नाड़ी के अमृत पान से अमरता प्राप्त होती है। इस कारण सूर्य और चन्द्र को विपरीत करने की स्थिति विपरीत करणी मुद्रा है।

(15) योनिमुद्रा:- सिद्धासन में बैठकर योनि मुद्रा का अभ्यास करते समय काकी मुद्रा द्वारा प्राण को खींचकर अपान से मिला देते है। और षट्चक्रों का ध्यान हंस या हूँ से कुण्डलिनी शक्ति को जगाकर सहस्त्रार चक्र में ले जाते है। वहाँ यह भावना करें कि मैं शिव के साथ शक्ति सम्पन्न होकर विहार कर रहा हूँ। शिव शक्ति के मिलन से मैं आनन्दमय स्वयंभू ब्रहा हो गया हूँ। इससे ब्रह्य हत्या, सुरापान, गुरूतत्व गमन आदि के दोष मिट जाते है।

(16) वज्रोणि मुद्रा:- यह मुद्रा इन्द्रियों को मजबूत और शक्तिशाली बनाने हेतु वीर्य रक्षा करती है। वीर्य की रक्षा से जीवनी शक्ति सूक्ष्म शरीर में प्रवेश कर चक्रों को प्रभावित करती है। जिससे उर्ध्वषरेतस्त्व बनने में समर्थ होती है। इससे सभी कार्यो की सिद्धि प्राप्त होती है। बिन्दू सिद्धि से पृथ्वी तत्व मूलाधार का जागरण सिद्ध होता है।

(17) शक्तिचालिनी मुद्रा:- मूलाधार में सुप्त कुण्डलिनी का शयन अज्ञानता का प्रतीक है। कुण्डलिनी का जागरण (ब्रम्ह्यरंध्र का खुलना) शक्ति चालिनी मुद्रा द्वारा किया जा सकता है। यह मुद्रा सिद्ध होने पर योनिमुद्रा भी सिद्ध हो सकती है। इस शक्ति चालिनी मुद्रा की सिद्धि से विग्रह सिद्धि सहित सभी सिद्धियाँ प्राप्त होती है। तथा समस्त व्याधियों का नाश हो जाता है।

(18) तड़ागी मुद्रा:- पश्चिमोत्तान आसन में बैठकर की जाने वाली यह मुद्रा शारीरिकि और आन्तरिक या अध्यात्मिक लाभ देने वाली है। इससे मणिपूर चक्र में जो कि सम्पूर्ण शरीर में ऊर्जा के वितरण का केन्द्र है, जाग्रति आती है तथा प्राण का स्तर धीरे-धीरे बढ़ता है।

(19) माण्डुकी मुद्रा:- यह मुद्रा मुख बन्द कर तालू मूल में जिव्हा को घुमाने से सहस्त्रार से स्त्रावित सुधा रस का पान बली , पलित आदि रोगों को दूर कर शरीर में झुरियां पड़ना और बालों का सफेद होना रोक देती है। तथा स्थायी यौवन की प्राप्ति करवाती है। कुण्डलिनी योग की दृष्टि से मूलाधार के जागरण तथा ध्यान साधना में दिव्यगन्ध की प्राप्ति में सहायक है।

(20) शम्भवी मुद्रा:- दोनों भौहों के मध्य आज्ञाचक्र पर स्वयं अर्थात अपनी आत्मा का ध्यान शम्भवी मुद्रा है। इसका अभ्यास नर से नारायण बनाने वाला है। इसी के साथ पंचधारणा मुद्रा को भी बतलाया गया है जो आप पूर्व में अध्ययन कर चुके है। शम्भवी मुद्रा का अभ्यास बच्चों के भावनात्मक विकास के लिए 8 वर्ष की अवस्था से करने का निर्देश है।

(21) अश्विनी मुद्रा:- गुदा का बार-बार अंकुचन एवं प्रसरण करना अश्विनी मुद्रा है। इससे कुण्डलिनी का जागरण होता है। यह मुद्रा गुहा्र रोगों को नष्ट करने वाली शरीरिक बल को विकसित करने और अकाल मृत्यु पर विजय दिलाने वाली है। (मूला धार चक्र जागरण में सहायक है)

(22) पाशिनी मुद्रा:- दोनों पैरों को कठं के पीछे की ओर ले जाकर उन्हें परस्पर मिलाकर पाश के समान मजबूती से पकड़ने को पाशिनी मुद्रा कहते है। यह शक्ति को जाग्रत कर बल और पुष्टि दायक है। सिद्धि और अकांक्षाओं वाले योगियों को इसे नित्य अभ्यास करना चाहिये।

(23) काकी मुद्रा:- मुख को कौवे की चोंच के समान करके , उससे धीरे-धीरे वायु का पान करना चाहिये। इसके अभ्यास से साधक कौवे के समान रोग रहित हो जाता है।

(24) मातंगनी मुद्रा:- कंठ तक जल वाले स्थान पर खड़े होकर एकान्त में ध्यान पूर्वक नासिका से जल खींचकर मुख से बाहर करें तथा मुख से जल खींचकर नासिका द्वारा निकालें। यह मुद्रा हाथी के समान बल प्रदान करने वाली है। तथा सदैव आनंद रखने वाली है।

(25) भुजंगिनी मुद्रा:- मुख को फैलाकर खोलकर कण्ठ द्वारा वायु को पियें। यही भुजंगिनी मुद्रा है। यह अमरत्व प्रदान करने वाली है। नवजीवन देने वाली है।

उपरोक्त प्रकार से घेरण्ड ने 25 मुद्राओं मुद्रया स्थिरता चैव मुद्रा द्वारा स्थिरता का अनुभव का जो निर्देश दिया है वह प्राणमय कोश एवं मनोमय कोश की स्थिरता से सम्बंधित है। घेरण्ड ने इन मुद्राओं में तीन प्रकार के अभ्यास एक साथ ही बललायें है ये हैं-

(1) बन्ध

(2) धारणा

(3) मुद्रा

घेरण्ड ने मुद्राओं का वर्णन करते समय चक्रों और कुण्डलिनी पर अधिक जोर दिया है। उनका आशय मुद्रा के अभ्यास से कुण्डलिनी शक्ति (आत्मशक्ति) जाग्रत करने से है। जिसके बल पर प्राणमय और मनोमय कोश को नियंत्रित किया जा सकें। प्राणमय और मनोमय कोश की स्थिरता को बनाये रखने हेतु धैर्य (धीरता) की आवश्यकता होती है जिसे उन्होंने प्रत्याहार के रूप में आगामी प्रकरण (अध्याय) में वर्णित किया है।

8.7 **घेरण्ड संहिता में प्रत्याहार एवं प्रणायाम का स्वरूप**

घेरण्ड संहिता में प्रत्याहार

योग साधक को सप्तांग साधना में चैथा अंग धैर्यम् की आवश्यकता पग-पग में पड़ती है। साधक हर परिस्थिति से अप्रभावित रहे , अपना धैर्य बनाये रखे , उद्विग्न न हो , अपनी सहनशीलता न खोये। यह मानसिक गुण है क्योंकि शरीर तो धैर्य खोता नहीं मन ही धैर्य खोता है। इस धैर्य को प्राप्त करने का साधन प्रत्याहार है।

प्रत्याहार का व्यावहारिक अर्थ है इन्द्रियों को उसके अपने-अपने विषयों से हटाना या परावृत करना। घेरण्ड भी इसी अर्थ को लेकर प्रत्याहार का वर्णन करते है। घेरण्ड की इस संदर्भ में दो मौलिक विशेषताएँ है-

(1) प्रत्याहार यद्यपि मानसिक अभ्यास है। फिर भी इसको स्थूल रूप में शारीरिक स्थिरता या अभ्यास से भी प्राप्त किया जा सकता है।

(2) पाँच ज्ञानेन्द्रियों को अपने अपने विषयों से लौटाने का अभ्यास अलग-अलग करना चाहिये। इस कारण ही घेरण्ड ने पाँच प्रकार के प्रत्याहारों का वर्गीकरण किया है जो उन्हें अन्य ग्रंथकारों से विशिष्ट बनाते है ये पाँच प्रत्याहार निम्नांकित है-

(1) चक्षुरिन्द्रिय प्रत्याहार

(2) श्रवणेन्द्रिय प्रत्याहार

(3) त्वगेन्द्रिय प्रत्याहार

(4) घ्राणेन्द्रिय प्रत्याहार

(5) रसनेन्द्रिय प्रत्याहार

महर्षि घेरण्ड ने मात्र 5 श्लोकों में प्रत्याहार की परिभाषा एवं उनके पाँच प्रकारों का सुन्दर वर्णन निम्नानुसार किया है। अपने शिष्य राजा चण्डकपालिक से कहते है प्रत्याहार के करने से षट्रिपु (छः शत्रु) का विनाश होता है। ये छः शत्रु है (i) काम (ii) क्रोध (iii) लोभ (iv) मोह (v) मद और (vi) मात्सर्य। मन जहाँ-जहाँ भी विचरण करता है उसे वहां से वापिस लौटाने का प्रयत्न कर मन को आत्मा में लगाने का प्रयत्न करना चाहिये। सांसरिक जीवन में मनुष्य को अनेक मनोभावों का सामना करना पड़ता है। जैसे (i) पुरूस्कार (ii) तिरस्कार (iii) प्रिय वाणि (iv) अप्रिय वचन। इन सबसे मन को हटाकर इसे आत्मस्थ करना चाहिये। मन अनेक इन्द्रियों के पीछे भागता है तथा आहत भी होता है। अतः सुगन्ध और दुर्गंध से , मीठा, खट्टा और तीखा आदि रसों से मन के चांचल्य को लौटाकर आत्मा में स्थित करना ही प्रत्याहार करना है। प्रत्याहार जब इन्द्रियां अपने नियंत्रण में आ जाती है तब मनः स्वतः अपने उछल कूद (उत्कटवृति) बंद कर स्वतः आत्म नियंत्रण में आ जाता है। इच्छाएं ही दुख का कारण है जब वही वश में होंगी तब दुख कैसा होगा इस प्रकार प्रत्याहार मानसिक क्लेशों से साधक को दूर कर साधना की उच्च अवस्थाओं की ओर बढ़ाता है।

घेरण्ड संहिता में प्राणायाम

योग साधना के घेरण्ड वर्णित सप्तांग साधना में पाँचवा साधन लाघव है। लाघव अर्थात् हल्कापन। योगी का शरीर हल्का रहना चाहिए , भारी भरकम नहीं। मोटे चर्बीयुक्त शरीर में कई विकार उत्पन्न होते रहते है। इनका शमन् करने हेतु जिस अंग का उपदेश महर्षि घेरण्ड ने किया है। वह है प्राणायाम इसके द्वारा योग प्राप्ती के पाँचवें साधन लाघव को प्राप्त किया जा सकता है। प्राणायाम की तैयारी हेतु महर्षि घेरण्ड ने चार प्रमुख तत्वों पर विशेष ध्यान आकृष्ट किया है ये तत्व निम्नलिखित है। इसके बाद ही प्राणायाम का अभ्यास शुरू करना उचित है।

आदौ स्थानं तथा कालं मिताहारं तथा परम्।

नाड़ी शुद्धिंश्च तत् पश्चात् प्राणायामंच साधयेत्।।

(घे. सं. 5/2)

(1) (2) (3) (4)

स्थान काल मिताहार नाड़ी शुद्धि

(1) स्थान

प्राणायाम् की साधना से मनुष्य देवता के समान बन सकता है इस कारण इस महत्वपूर्ण योगांग को र्निदिष्ट प्रक्रिया से ही करना चाहिये। इस हेतु स्थान निर्णय सर्वप्रथम आवश्यकता है। जिसमें निम्नांकित विशेषताएँ होनी चाहिये।

स्थान दूर देश में न हो , अत्याधिक सघन वन (अरण्य) में न हो। और राजधानी अर्थात अत्याधिक धना शहर न हो। यदि इनका ध्यान नही रखा गया तो सिद्धि की जगह हानि हो सकती है। क्योंकि दूर देश मे किसी का विश्वास नही होता , अरण्य (वन) रक्षक रहित रहता है और राजधानी में अधिक जनसमूह रहने के कारण प्रकाश , ध्वनि, वायु, जल, प्रदूषित रहते है। इस कारण ये तीन स्थान प्राणायाम हेतु वर्जित है। उपयुक्त स्थान वह है जहां सुन्दरता हो , धार्मिक स्थल हो , भोजन के लिए आवश्यक खाद्य सहजता से उपलब्ध हो जावें तथा वह स्थान उपद्रव रहित भी हो अर्थात , युद्ध बाढ़ भूकम्प या चोरी डकैती वाला या अत्याधिक जीव जन्तु वाला स्थान न हो। ऐसे स्थान में सुन्दर कुटी जिसके चारों ओर चारदीवारी हो भूमि न बहुत ऊँची और न बहुत नीची ही हो। गोबर से लिपी हुई कीट पतंगों से रहित और एकान्त स्थान में हो। अर्थात व्यवधान रहित स्थान होना चाहिये। ऐसा स्थान प्राणायाम हेतु उपयुक्त होता है।

(2) काल

प्राणायाम हेतु द्वितीय महत्वपूर्ण तत्व काल है। अर्थात किन समयों में प्राणायाम किया जावे। घेरण्ड के अनुसार हेमन्त, शिशिर, ग्रीष्म और वर्षा ऋतु में प्राणायाम शुरू नहीं करना चाहिये। इन ऋषियों में प्राणायाम प्रारम्भ करने से रोग हो जाता है। वसन्त और शरद ऋतु में अभ्यास शुरू करना उचित होता है। इन ऋतुओं में अभ्यास करने से सिद्धि मिलती है। और रोगों से निवृति होती है। यह सत्य है। चैत और फाल्गुन माह तक वर्ष में बारह महीने होते है, इनमें दो दो महीने की छः ऋतुएँ होती है। माघ से अगले वर्ष के फाल्गुन तक चैदह महीने होते हैं। दो दो महीने की एक-एक ऋतु और चार-चार महीने की भी अनुभूति होती है। चैत्र वैशाख में वसन्त ऋतु , ज्येष्ट-आषाढ़ में ग्रीष्म श्रावण-भद्रपद में वर्षा , आश्विन-कार्तिक में शरद मार्गशीर्ष-पौष में हेमन्त और माघ-फाल्गुन में शिशिर ऋतु होती है। माघ से वैशाख पर्यन्त वसन्त का अनुभव होता है , चैत्र से आषाढ तक ग्रीष्म का , आषाढ़ से अश्विन के अन्त तक वर्षा का , भद्रपद से मार्गशीर्ष तक शरद का तथा कार्तिक से माघ तक शीत का अनुभव होता है। वसन्त और शरद ऋतु में योगारम्भ करने से सिद्धि का होना कहा गया है।

(3) मिताहार

प्राणायाम हेतु तृतीय महत्वपूर्ण तत्व मिताहार है। जो साधक प्राणायाम करने के काल में मिताहार नहीं करता उसके शरीर में अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं और उसको योग की सिद्धि नहीं होती।

साधक को चावल जौ का सतु, गेहुँ का आटा, मूँग, उड़द चना आदि का भूसी रहित स्वच्छ करके भोजन करना चाहिए। परवल कटहल ओल , मानकन्द, कंकोल, करेला, कुदरू, अरवी, ककड़ी, केला, गुलर और चैलाई आदि का शाक भक्षण करें। कच्चे या पक्के केले के गुच्छे का दण्ड और उसका मूल , बैंगन, ऋद्धि, कच्चा शाक, ऋतु का शाक, परवल के पत्ते, बथुआ और हुरहुर का शाक खाया जा सकता है। उसे स्वच्छ, सुमधुर स्निग्ध और सुख द्रव्य से सन्तोषपूर्वक आधा पेट भरना और आधा खाली रखना चाहिये। विद्धानों ने इसे मिताहार कहा है। पेट के 1/2 भाग को अन्न से शेष आधे के आधे को जल से भरना चाहिये तथा शेष आधे अर्थात 1/4 भाग को संचालन हेतु खाली छोड़ देना चाहिये।

प्राणायाम में मिताहार के अलावा निषिद्ध आहार का भी ज्ञान होना चाहिये। ये निषिद्ध आहार इस प्रकार है। कड़वा , अम्ल, लवण और तिक्त - ये चार रस वाली वस्तुएं भुने हुए पदार्थ , दही, तक्र शाक, उत्कट, मद्य, ताल और कटहल का त्याग करें। कुलथी मसूर , प्याज, कुम्हड़ा, शाक-दण्ड, गोया, कैथ, कफोड़ा, ढाक, कदम्ब, जम्बीरी, नीबू, कुदरू, लहसुन, कमरख, पियार हींग, सेम, और बंड़ा आदि का भक्षण योगारम्भ में निषिद्ध है। मार्ग-गमन , स्त्री-गमन तथा अग्नि-सेवन (तपना) भी योगी के लिए उचित नहीं। मक्खन, धृत, दूध, गुड़ शक्कर, दाल, आँवला, अम्ल रस आदि से बचें। पाँच प्रकार के केले, नारियल, आनार, सौंफ आदि वस्तुओं का सेवन भी न करें।

इलाइची लौंग, जायफल, उत्तेजनात्मक पदार्थ जामुन , जाम्बूल, हरड़ और खजूर का सेवन न करें। शीघ्र पचने वाले प्रिय , स्निग्ध, धातुओं को पुष्टिदायक मनोनुकूल पदार्थ ही खाने चाहिये। कड़ी वस्तुएँ, दूषित वस्तुएँ, उत्तेजना उवं वासना उत्पन्न करने वाली उष्ण, बासी, अधिक ठण्ढ़ी और अति गरम वस्तुओं को न खायें। प्रातः कालीन स्नान एवं उपवासादि शरीर को कष्ट पहुंचाने वाली क्रियाएँ छोड़ देनी चाहिए। एक बार भोजन करना , निराहार रहना अथवा प्रत्येक पहर बाद भोजन करना भी योगाम्यास में त्याज्य है। इस प्रकार विधि विधान से प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिये। प्राणायाम आरम्भ करने के पूर्व नित्य-प्रति दूध-धृत का सेवन और मध्यान्ह एवं सायं दोनों समय का भोजन करना चाहिये।

(4) नाड़ी शुद्धि

प्राणायाम के अभ्यास के पूर्व सबसे महत्वपूर्ण तत्व नाड़ी शुद्धि। बिना नाड़ी शुद्धि के प्राणायाम हानिकारक हो सकता है। महर्षि घेरण्ड कहते है प्राणायाम हेतु कुश या माटा आसन, मृगचर्म या सिंहचर्म अथवा कम्बल में से किसी प्रकार के आसन पर पूर्व या उत्तर की दिशा में मुख करके नाड़ी शुद्धि होने पर ही प्राणायाम की साधना करना चाहिये। नाड़ी शुद्धि के सम्बंध में चण्डकपालि ने दो महत्वपूर्ण प्रश्न महर्षि घेरण्ड से उठाये।

(1) नाड़ी शोधन किस प्रकार किया जावे?

(2) नाड़ी शोधन का स्वरूप क्या है?

इनका समुचित समाधान महिर्षि घेरण्ड न इस प्रकार किया है।

नाड़ियाँ मल से भरी हुई होती है। इसके कारण उनमें वायु का प्रवाह नहीं हो पाता, तब प्राणायाम की सिद्धि कैसे हो सकेगी। तथा तत्व ज्ञान कैसे उत्पन्न हो ? इस हेतु नाड़ी शोधन अनिवार्य है। नाड़ियों के दो प्रमुख भेद है- (1) समनु (2) निर्मनु।

(1) समनु नाड़ी:- इनका शोधन बीज मंत्र के द्वारा होता है।

(2) निर्मनु नाड़ी:- इनका शोधन धौतिकर्म के द्वारा होता है। इसका स्वरूप हमने शोधन क्रिया रूपी प्रथम अंग में विस्तार से अध्ययन कर लिया है। अतः यहां समनु नाड़ी शुद्धि की प्रक्रिया का वर्णन इस प्रकार है।

समनु नाड़ी शोधन की प्रक्रिया

(1) साधक उपयुक्त आसन एवं दिशा में बैंठकर पद्यासन लगाकर और गुर्वादि न्यास करें। फिर गुरू उपदिष्ट विधि से प्रणायाम के साधनार्थ नाड़ी शोधन का संकल्प लें। वायु बीज मंत्र यं का ध्यान कर 16 बार जपता हुआ बायीं नासिका द्वारा वायु खींचे। ध्यान में इस वायु बीज को तेजयुक्त धूम्रवर्ण का माने। इस प्रकार चन्द्र मार्ग से पूरक करने के पश्चात चैंसठ बार जप करता हुआ कुम्भक करे और फिर बत्तीस बार जपता हुआ दायीं नसिका द्वारा रेचक करे , अर्थात वायु को निकाले।

(2) इसके बाद नाभि में अग्नि तत्व को प्रकट कर लं बीज युक्त पृथ्वी तत्व सहित ध्यान करना चाहिये। सोलह मात्रा रं बीज का ध्यान करते हुए सूर्य नाड़ी (दयीं नासिका) से पूरक, चैंसठ मात्रा से कुम्भक और बत्तीस मात्रा से जप करता हुआ चन्द्र नाड़ी (बायीं नासिका) से रेचक करें।

(3) नासिका के अग्रभाग में चन्द्र बिम्ब के ध्यान पूर्वक 16 मात्रा तक है। बीज का जप करता हुआ इड़ा नाड़ी से यं बीज का पूरक करे। चैंसठ मात्रा तक षं बीज जपता हुआ सुषुम्ना में कुम्भक करे। उस समय नासिका से अमृत के टपकने और उससे शरीर की सब नाड़ियों के धुलने का ध्यान करे। फिर लं बीज का 32 मात्रा तक जप करता हुआ पिंगला नाड़ी से रेचक करें। इस प्रकार नाड़ी शुद्धि करके एक स्थिर आसन में बैठकर प्राणायाम का अभ्यास किया जा सकता है।

घेरण्ड संहिता के अनुसार प्राणायाम भेद

घेरण्ड संहिता में महर्षि घेरण्ड ने प्राणायाम के निम्नलिखित8 भेद निरूपित कीये है -

सहितः सूर्यभेदश्च, उज्जायी शीतली तथा।
भस्त्रिका भ्रामरी मूर्च्छा ृ केवली चाष्ट कुम्भकाः।।

(घे. सं. 5/45)

1	2	3	4	5	6	7	8
सहित	सूर्यभेदी	उज्जायी	शीतली	भस्त्रिका	भ्रामरी	मूर्च्छाभ	केवली

(1) सहित कुम्भक (प्राणायाम):-

यह प्राणायाम दो प्रकार का होता है -

(i) सगर्भ कुम्भक - यह बीज मंत्र द्वारा किया जाता है।

(ii) निगर्भ कुम्भक - यह बिना बीजमंत्र के किया जाता है।

(i) सगर्भ कुम्भक की विधि - पूर्वमुख या उत्तरमुख बैठकर लाल वर्ण रजोमुखी ब्रह्य का ध्यान करते हुये बाये नासिका रन्ध्र से अँ बीज मंत्र को 16 बार जपते हुऐ वायु का पूरक करे कुम्भक के पहले और पूरक के बाद में उड्डीयन बन्ध लगावें। फिर सत्वगुण युक्त उकार बीज रूप कृष्ण वर्ण हरि का ध्यान और जप करते हुए चैंसठ मात्रा तक कुम्भक करें। फिर तमोगुण युक्त मकार रूपी शुक्ल वर्ण के शिवजी के ध्यान के साथ म बीज मत्र जपते हुऐ रेचक करें। इसके बाद इसी प्रकार से दायीं नसिका से पूरक कुम्भक और बायीं नासिका से रेचक करें। इस प्रकार अनुलोम विलोम के अभ्यास करते हुऐ तर्जनी और मध्यमा अंगुलियों को न लगायें।

(ii) निगर्भ कुम्भक की विधि:- यह बीज मन्त्र के बिना ही किया जाता है। पूरक कुम्भक और रेचक वाले प्राणायाम की एक से सौ तक मात्राएँ होती है। इसी प्रकार उत्तम प्राणायाम की बीस मात्राएं, मध्यम की सोलह और अधम की बारह होती है। इस प्रकार प्राणायाम के तीन अंग होते है। अधम प्राणायाम से स्वेद निकलता है , मध्यम से मेरूकम्प होता है और उत्तम से पृथ्वी से उठकर आकाश होना और पृथ्वी से उठना तीनों लक्षण सिद्धि के समझने चाहिये।

प्राणायाम के साधन से आकाश-गमन रोग-नाशन और कुण्डलिनी जागरण होता है। प्राणायाम का साधन करने वाले पुरूष के चित्त में परमानन्द की उत्पति होती है। और वह सुखी बनता है।

(2) सूर्यभेदी कुम्भक

(1) सर्वप्रथम सूर्य नाड़ी से यथा शक्ति वायु भरकर , जालन्धर बन्ध लगाकर कुम्भक करें ओर जब तक पाँव से केश पर्यन्त पसीना न आ जाये, तब तक कुम्भक द्वारा वायु धारण किये रहें।

(2) प्राण अपान, समान, व्यान, उदान, नाग, कूर्म कृकंल देवदत्त और धनंजय ये 10 प्राण है। हृद्य में प्राण, गुदा में अपान, नाभि में समान, कष्ठ में उदान और पूरे शरीर में व्यान, ये पाँच प्राण प्रमुख हैं नागादि पाँच उपप्राण हैं उदर में नाग उन्मीलन में कूर्म , भूख में कृकंल , जँभाई लेने में देवदत्त और मरने पर भी जो नहीं छोड़ता वह धनंजय कहलाता है। नाग से चैतन्य , कूर्म से निमेषण , कृकंल से भूख प्यास, देवदत्त से जंभाई और धनंजय कभी भी नहीं निकलने वाला हैं तथा उससे वाणी निकलती है।

(3) कुम्भक करने के समय उक्त प्राणादि वायुओं को पृथक करके सूर्य नाड़ी द्वारा नाभिमूल से समान वायु को उठाना चाहिये और बांयी नासिका से धीरे-धीरे रेचक करना चाहिए। फिर दाहिनी नासिका से वायु पूरित कर विधिवत् कुंभक करें और वायीं नासिका से रेचक करें। इस क्रिया को बार-बार करना चाहिये। यही क्रिया सूर्यभेदन कहलाती है। यह सूर्यभेदन संज्ञक प्राणायाम जरा-मृत्यु का नाश करने वाला है। इससे कुण्डलिनी का जागरण होता है शरीरस्थ अग्नि प्रदीप्त होती है। इस प्रकार यह सूर्य नामक श्रेष्ठ प्राणायाम है।

(3) उज्जायी कुम्भक:- इसमें बाह्य वायु को दोनों नासिका छिद्रों से खींचकर , आन्तरिक वायु को हृद्य एवं कंठ से खीचें और कुम्भक द्वारा धारण करें। फिर मुख का प्रक्षालन कर जालन्धर बन्ध लगा कर विध्नरहित विधि से यथाशक्ति वायु को धारण करें। यह उज्जायी कुम्भक कहलाता हैं

इससे सभी कार्य सिद्ध हो जाते है। कफ रोग क्रूर वायु और आजीर्ण की उत्पत्ति नहीं होती। आम वात क्षय कास ज्वर प्लीहा राग नहीं रहते। यदि उज्जायी कुम्भक को सिद्ध कर लें तो जरा-मरण भी नष्ट हो जाते हैं।

(4) शीतली कुम्भक:- इसमें जिह्वा के द्वारा वायु को खींचकर उदर को परिपूर्ण करें। फिर कुछ काल तक कुम्भक द्वारा वायु को धारण कर दोनों नासिका छिद्रों से निकाल दें। यह शीतली प्राणायाम कहलाता है। इसका साधन सदैव करना चाहिये। इससे अजीर्ण तथा कफ-पित्त के विकार उत्पन्न नहीं होते।

(5) भस्त्रिका कुम्भक:- इसमें लोहार द्वारा धौकनी से वायु भरने के समान नासिका द्वारा वायु के उदर को पूरित करें और उदर में ही धीरे -धीरे चलायें इस प्रकार बीस बार करके कुम्भक द्वारा वायु धारण करें। तत्पश्चात लोहार की धौकनी से वायु निकलने के समान नासिका द्वारा वायु निकाल लें। विद्वानों ने इसे भस्त्रिका कुम्भक कहा हैं इस प्रकार तीन बार करना चाहिये। इससे किसी प्रकार के रोग नहीं होते और दिनों दिन आरोग्य की वृद्धि होती हैं

(6) भ्रामरी कुम्भक:- अर्ध रात्रि व्यतीत होने पर जब किसी जीव जन्तु का शब्द सुनायी न दें , तब एकान्त स्थान में जाकर योगी को अपने हाथों से दोनों कानों को बंद करके पूरक-कुम्भक करना चाहिये। इसमें साधक को दायें कान में अनेक प्रकार की ध्वनियाँ सुनायी देती है। प्रथम झीं ुगुर की ध्वनि, फिर बंशी की ध्वनि , फिर मेघ गर्जन का शब्द फिर बाजे बजने का झर्झर शब्द फिर भौरों का गुजंन घण्टा, घड़ियाल, तुरही भेरी, मृदंग, दुढ़भी आदि का निनाद सुनायी देता है। इस प्रकार नित्य अभ्यास करने से अनेक प्रकार के नादों के श्रवण का अनुभव होता है और अनाहत में शब्द की ध्वनि होती है। निमीलित नेत्रों से हृद्य में बारह दल के कमल की प्रति ध्वनि के मध्य जो ज्योति दिखाई देती है, वही ब्रह्म है। इसमें मन का विलय होकर विष्णु भगवान के परमपद की पा्रप्ति होती हैं इस प्रकार भ्रामरी कुम्भक सिद्ध होने पर समाधि की सिद्धि हो जाती है। जप से आठ गुना उत्तम ध्यान है, ध्यान से आठ गुना तप है तथा तप से आठ गुना संगीत (नाद) हैं संगीत से बढ़कर कुछ नहीं हैं

(7) मूर्च्छा कुम्भक:- सर्वप्रथम सुखपूर्वक पूर्वोक्त्त कुम्भक का अभ्यास करके मन को विषयों से हटाकर भौंहों के मध्य में स्थित आज्ञा चक्र में लगायें और इस प ù में विद्यमान परमात्मा में लींन कर दें। यह मूर्च्छाय कुम्भक कहलाता है। इस कुम्भक की सिद्धि से आनन्द की प्रप्ति होती है।

(8) केवली कुम्भक:- इसमें प्रत्येक पूरक क्रिया के साथ हर जीव की आत्मा ''सो'' एवं रेचक के साथ हं मंत्र का जप करती है। प्रत्येक जीव 24 घंटे में इक्कीस हजार छः सौ 21,600 श्वास लेता है यह दिन-रात में श्वासों की संख्या हैं इसे 'ह' सो' अथवा विलोम से सोऽहं ' अजपा गायत्री कहते हैं प्राणी इसे सदा जपता रहता है। मूलाधार, हृद्य कमल और नासापुट, इन तीनों स्थानों में वायु का आवागमल होता है। स्थूल शरीर छियानवे अँगुल , परिणाम का है और स्वाभाविक बहिर्गत वायु की गति द्वादश अँगुल होती है। यह गति गायन में सोलह अँगुल , भोजन में बीस

अँगुल, मार्ग चलने में चैबीस अँगुल, निद्रा में तीस अँगुल , मैथुन में छत्तीस अँगुल और व्यायाम में और भी अधिक होती है।

स्वाभाविक प्राण की गति बाहर अँगुल है। यदि इससे न्यून गति हो जाये तो आयु वृद्धि होती है। बारह अँगुल से अधिक होने पर आयु का क्षय होता है। शरीर में जब तक प्राणवायु की स्थिति रहती है , तब तक मृत्यु नहीं होती। कुम्भक के अभ्यास से प्राणवायु को मुख्य समझें। जब तक शरीर स्थित रहे, तब तक केवली कुम्भक करता हुआ अजपा मन्त्र जपता रहे। केवली करने, अर्थात इक्कीस हजार छः सौ बार जप पूर्ण हाने पर गति घट जाती है और आयु में वृद्धि होती है। इसलिए योगियों को इसे अवश्य करना चाहिए। अजपा की संख्या से दुगना जप करें तो मन में अत्यन्त आनन्द उत्पन्न हो जाता है। ।90-93।।

नांसापुटों से वायु को खींचकर केवली संज्ञक इस कुम्भक को करें। प्रथम दिन साधना करने पर चैंसठ बार तक श्वास-प्रश्वास को धारण करें , केवली कुम्भक का नित्यप्रति आठ प्रहर में आठ बार अभयास करना चाहिए। प्रातःकाल , मध्याह्न, सांयकाल, तीनो समय समान संख्या में साधन करे। जब तक इस कुम्भक की सिद्धि न हो जाये तब तक अजपा गायत्री के साथ प्रमाण से पाँच-पाँच बार वृद्धि करते जायें।

8.8 घेरण्ड संहिता ध्यान एवं समाधि का स्वरूप

महर्षि घेरण्ड ने सप्तांगयोग के छठवें अंग के रूप में ध्यान का उपदेश निम्नलिखित प्रकार से किया है।

स्थूलं ज्योतिस्थासूक्ष्मं ध्यानस्य त्रिविधं विदुः।
स्थूलं मूर्तिमयं प्रोत्कं ज्योतिस्तेजोमयं तथा।
सूक्ष्मं बिन्दुमयं ब्रह्म कुण्डली परदेवता।।

(घे.सं. 6/1)

(1) स्थूल ध्यान (2) ज्योर्तिध्यान (3) सूक्ष्म ध्यान

घेरण्ड ने ध्यान के तीन विभाग कर विस्तार से उनका वर्णन किया है। ये तीन ध्यान (1) स्थूल ध्यान (2) ज्योर्तिध्यान एवं (3) सूक्ष्म ध्यान है। इनमें स्थूल ध्यान से सौ गुना उत्तम ज्योर्तिध्यान या तेजोध्यान को कहा जाता है। और तेजोध्यान से लाख गुना उत्कृष्ट सूक्ष्म ध्यान को कहा गया है। इसमें एक विशेषता यह है कि सूक्ष्मध्यान की प्रक्रिया में इन्होंने कुण्डलिनी जागरण के बाद शाम्भवी मुद्रा की प्रक्रिया के साथ इस ध्यान की सम्भावना का वर्णन किया है।

(1) स्थूल ध्यान:- नेत्र बन्द करके अपने हद्रय में सुधा-सागर का ध्यान करें। कल्पना करे कि वहां एक बड़ा सागर अमृत से भरा हुआ है। उसके बीच में एक द्वीप है, जो रत्नों से भरा हुआ है और वहाँ की बालू भी रत्न चूर्णो की है। इस द्वीप में फलों से लदे अनेक वृक्ष है। जो द्वीप की शोभा बढ़ा रहे हैं। ये पुष्प द्वीप की खाइयों की भाँति प्रतीत होते हैं। बहुत सारे वृक्ष सुगन्धित पुष्प , मालती, मल्लिका, चमेली, केशर, चम्मा, पारिजात, स्थल पद्म आदि बिखरे हुए है। द्वीप के कोने-कोने में

इन पुष्पों की सुगन्ध फैली हुई है। इस द्वीप के मध्य में कल्पवृक्ष नामक पेड़ है। इसकी चार शाखायें चारों वेदों का प्रतिनिधित्व करती है। यह वृक्ष सुन्दर फल-फूलों से लदा हुआ है। सम्पूर्ण द्वीप में कोयल पक्षी की मधुर बोली एवं भ्रमर के गुंजन की ध्वनि सुनायी दे रही है। इस द्वीप में एक चबूतरा है। यह चबूतरा हीरे , नीलम आदि अनेक प्रकार के रत्नों से सजा हुआ है। पुनः कल्पना करें उस चबूतरे के ऊपर आपके इष्ट देव का सतत् ध्यान करना होता है। जैसेः- आपके इष्ट आपके गुरू है , तो उनके स्वरूप को स्मरण कीजिये। उनके शरीर में ध्यान वस्तुओं जैसे- वस्त्र, माला आदि पर ध्यान को क्रमशः एकाग्र करते जाते है। इस प्रकार स्थूल रूप ध्यान किया जाता है।

स्थूल ध्यान की द्वितीय विधि (प्रकारान्तर)

स्थूल ध्यान की उपरोक्त वर्णित विधि के अलावा भी एक और विधि है इसमें ब्रहा्रन्ध में सहस्त्रार नामक सहस्त्र दल वाला महापद्य है, उसके मध्य में बारह दल का एक कमल है यह शुभ्र वर्ण तथा परम तेज सम्पन्न है। इसके बारह दल में क्रमशः ह स क्ष म ल व र यूँ ह स ख फ्रें - ये बारह अक्षर लिखे है। उसकी कर्णिका में अ क थ इन तीन अक्षरों की तीन रेखायंे है , मध्य में ह ल क्ष इन त्रिकोणाकार अक्षरों के मण्डल में ऊँ बना है। पुनः नादविन्दुमय एक पीठ विराजमान है। उस पीठ पर दो हंस खड़े हैं। वहीं पादुका भी है। इसी स्थल पर गुरूदेव विराजित होते हैं। उनकी दो भुजाएँ है। श्वेत रंग के शुक्र वस्त्र पहने हैं। शुभ्र चन्दन चर्चित हैं। शुभ्र वर्ण की माला धारण कीये हुए है। उनके बायें भाग में रक्त वर्ण की शक्ति शोभा दे रही है। ऐसा ध्यान करने से स्थूल ध्यान सिद्ध होता है।

(2) ज्योतिर्ध्यातन

ज्योतिर्ध्यातन या तेजोध्यान वह ध्यान है जिसमें योग-सिद्धि तथा आत्म-प्रत्यक्ष होता है। इसमें मूलाधार में सर्पाकार कुण्डलिनी शक्ति है। इस स्थान में दीपक की लौ के रूप में आत्मा का निवास है। यहां तेजोमय परात्पर ब्रहा् का ध्यान करना ही तेजोध्यान होता है इसे ज्योति ध्यान भी कहते है। भौहों के बीच और मन के उर्ध्व भाग में जो प्रणवात्मक रूप (ऊँ आकार) ज्योति है उस ज्योति (लौ) रूप का ध्यान ज्योतिर्ध्यापन है।

(3) सूक्ष्म ध्यान

महर्षि घेरण्ड ने सूक्ष्म ध्यान की बड़ी प्रभावशाली व्याख्या अपने उपदेश में की है। उन्होंने बतलाया कि बड़े प्रयत्न से विरले पूर्व सुकृत कर्मों वालों की ही कुण्डलिनी जाग्रत होती है। तथा यवृ कुण्डलिनी शक्ति आत्मा के साथ मिलकर नेत्ररन्ध्र से निकालकर उर्ध्विभागस्थ राजमार्ग नामक स्थान (मेरू दण्ड पर्वत) में धूमती है। घूमते समय सूक्ष्मतत्व चंचलतत्व (वायु रूप) के कारण उसे देखना दुर्लभ होता है। योग साधक शाम्भवी मुद्रा के अभ्यास के द्वारा कुण्डलिनी का ध्यान करता है। इस ध्यान को ही सूक्ष्म ध्यान कहते है। यह दुर्लभ एवं गोपनीय ध्यान है। अर्थात इसकी साधना कठिन एवं गुप्त रखी जाना चाहिये। इससे आत्मसाक्षात्कार तथा ध्यान सिद्धि होती है।

घेरण्ड संहिता में समाधि

घेरण्ड संहिता में उपदेशित सप्तांगों में समाधि सातवाँ एवं अन्तिम अंग बतलाया गया है। महर्षि घेरण्ड ने राजा चण्ड को उपदेशित किया कि समाधि सबसे बड़ा योग है। अच्छे कर्मफलों एवं भाग्योदय के बल पर समाधि गुरू भक्ति एवं उनकी कृपा से ही प्राप्त है। विद्या की प्रतीति , स्वगुरू की प्रतीति और आत्मा की प्रतीति एवं मन का प्रबोध जिसको दिन-दिन बढ़ता है- वही योगी समाधि-योग-साधन के अभ्यास का अधिकारी होता है। मन को शरीर से पृथक करके परमात्मा में लगाने से योगी संसार से मुक्त हो जाता है। मैं ब्रहा्र से भिन्न नहीं हूँ। मैं ब्रहा्र ही हूँ , शोक युक्त नहीं हूँ। मैं सच्चिदानन्दरूप नित्यमुक्त स्वभाव वाला हूँ ऐसी प्रतीति होना ही समाधि है।

शाम्भव्या चैव भ्रामर्या खेचय्र्या योनिमुद्रया।
ध्यानं नादं रसानन्दं लयसिद्धिश्चतुर्विधा।।
पन्चधा भक्ति योगेन मनोमूच्र्छा् च षड्विधा।
षड्विधोयं राजयोगः प्रत्येकमवधारयेत्।।

(घे. स. 7/5-6)

1	2	3	4	5	6
ध्यानयोग	नादयोग	रसानन्दयोग	लयसिद्धियोग	भक्तियोग	राजयोग
शाम्भवीमुद्रा	खेचरीमुद्रा	भ्रामरीमुद्रा	योनिमुद्रा	मनोमूच्र्छार	कुम्भक

इस श्लोक के अनुसार समाधि के छः भेद है। तथा ये छः भेदों वाली समाधि साधना हेतु छः अलग-अलग मुद्राओं का विधान भी महर्षि घेरण्ड ने स्पष्ट कर दिया है। समाधि के भेद और भेद के अनुसार समाधियां निम्नलिखित है-

(1) ध्यान योग समाधि इसकी साधना हेतु शाम्भवी मुद्रा का अभ्यास।

(2) नादयोग समाधि इसकी साधना हेतु खेचरी मुद्रा का अभ्यास।

(3) रसानन्द योग समाधि इसकी साधना हेतु भ्रामरी मुद्रा का अभ्यास।

(4) लयसिद्धियोग समाधि इसकी साधना हेतु योनि मुद्रा का अभ्यास।

(5) भक्तियोग सामाधि इसकी साधना हेतु मनोमूच्र्छार मुद्रा का अभ्यास।

(6) राजयोग समाधि इसकी साधना हेतु कुम्भक का अभ्यास।

(1) ध्यानयोग समाधि

शाम्भवी मुद्रा करके आत्मा को प्रत्यक्ष रूप में देखने का प्रयत्न करें , और फिर बिन्दुमय ब्रहा्र का साक्षात्कार करते हुए मन को बिन्दु में लगा दें। तत्पश्चात् मस्तक में विद्यमान ब्रहा्रलोकमय आकाश के मध्य में आत्मा को ले जायें और जीवात्मा में आकाश को लय करें तथा परमात्मा में जीवात्मा का लय करें। इससे योगी सदानन्दमय एवं समाधिस्थ हो जाता है।।7-8।।

(2) नादयोग समाधि

मन्द वेग से वायु लेकर भ्रामरी-प्राणायाम करते हुए मन्द वेग से ही क्रमशः वायु को निकालें , अर्थात् रेचक करें। रेचक करते समय भौरे के गुन्जार के समान ध्वनि उत्पन्न होती है। यह नाद् जहाँ हो रहा हो, वहां मन को लगा दें। यह नाद् समाधि है।।9-10।।

(3) रसानन्दयोग समाधि

जब खेचरी मुद्रा लगायी जाती है और जिह्वा ऊपर की ओर मुड़ती है। तब इस साधारण यौगिक क्रिया के अभ्यास से समाधि की सिद्धि होती है।।11।।

(4) लयसिद्धियोग समाधि

योनिमुद्रा का साधन करके योगी स्वयं में शक्ति की भावना और परमात्मा में पुरूष की भावना करे। फिर यह भावना करे कि मुझमें और परमात्मा में शक्ति और पुरूष का विहार हो रहा है। तत्पश्चात् आनन्दमय ऐक्य स्थापित करता हुआ यह चिन्तन करे कि ' मैं अद्वैत ब्रहा्र हूँ।' इससे जो समाधि होती है, उसे लयसिद्धि योग समाधि कहते हैं।।12-13।।

(5) भक्तियोग समाधि

अपनें हद्रय में परम आह्लाद सहित भक्तियोग के द्वारा इष्टदेव के स्वरूप का चिन्तन करना चाहिए। इससे आनन्द के आँसू बहने लगते और शरीर पुलकायमान होता है तथा मन में चैतन्य और एकाग्रता आकर ब्रहा्र से साक्षात्कार होता है। यह भक्तियोग समाधि कहलाती है।।14-15।।

(6) राजयोग समाधि

मनोमूर्च्छाय कुम्भक करता हुआ योगी मन को एकाग्र करके ब्रहा्र में लगाये। इस प्रकार परमात्मा के साथ समायोग होने को मनोमूर्च्छाआ या राजयोग समाधि कहते हैं।16।।

8.9 **सारांश**

प्रस्तुत इकाई में महर्षि घेरण्ड का परिचय, घेरण्ड संहिता की विषयवस्तु सप्तांग विषय, षट्कर्म, आसन, मुद्राएं, प्रत्याहार, प्रणायाम, ध्यान एवं समाधि का महर्षि घेरण्ड के अनुसार संक्षेप में वर्णन किया गया है।

8.10 **बोधात्मक प्रश्न**

1. महर्षि घेरण्ड एवं घेरण्ड संहिता का परिचय दीजिए।

2. घेरण्ड संहिता में सप्तांग विषय का स्वरूप् का वर्णन करो।
3. घेरण्ड संहिता में मुद्राओं का स्वरूप को समझाइये।
4. घेरण्ड संहिता में प्रत्याहार एवं प्रणायाम का स्वरूप विस्तार से समझाओं।
5. घेरण्ड संहिता ध्यान एवं समाधि का स्वरूप का वर्णन करो।
6. ज्योतिध्र्यान का वर्णन कीजिए।
7. स्थूल एवं सूक्ष्म ध्यान का वर्णन कीजिए।

8.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

- राजयोग स्वामी विवेकानंद, अद्धैत आश्रम, 5-देही एन्टाली रोड, कलकत्ता - 700014
- लाईट ऑनयोग महर्षि अरविंद, अरविंद आश्रम पाण्डिचेरी
- अष्टांग योग - चरणदास अनुवादक , श्री ओ. पी. तिवारी , प्रकाशक कैवल्यधाम-एस. एम. वाई. एम. समिति , कैवल्यधाम लोनावाला पूना
- योग परिचय - डॉ पीताम्बर झा , प्रका. गुप्ता प्रकाशन डी- 35 साउथ एकसटैंशन भाग I नई दिल्ली - 49
- योग का परिचयात्मक - डॉ ओमनारायण तिवारी स्वरूपप्रकाशक पं. सुन्दरलाल शर्मा (मुक्त) विश्वविद्यालय छत्तीसगढ़, बिलासपुर (छ.ग.)
- Secrets of Hatha Vidya - Dr. Vijayendra pratap SKY FoundationPhiladelphia Pennsylvania U.S.A.
- योगासन एवं हठयोग विज्ञान - डॉ. ओम नारायण तिवारी, विलासपुर (छत्तीसगढ़)
- पतनजल योग दर्शन - डॉ. नित्यानन्द शर्मा, कोटा (राजस्थान - 324005)
- योग और अनुसंधान स्वामी कुवलयानन्द, कैवल्यधाम लोनावाला पूना 410403
- साधना स्वामी शिवान्द , दिव्य जीवन संघ , पत्रालय शिवानन्द नगर 249192 , जिला टिहरी गढ़वाल हिमालय (उ.प्र.)

इकाई –9

घेरण्ड संहिता में आसनों का स्वरूप

इकाई की रूपरेखा

9.1 उद्देश्य
9.2 प्रस्तावना
9.3 घेरण्ड संहिता में षट्कर्म आसनों का स्वरूप
9.4 घेरण्ड संहिता में आसनों का वर्णन
9.5 सुखासन, वज्रासन, गुप्तासन, मत्यासन, गोरक्षसन, उत्कटासन, संकटासन, वृक्षासन आदि का नामकरण, विधि, लाभ एवं सावधानियाँ
9.6 मण्डुकासन, उत्तानमण्डूकासन, गरूड़ासन, वृशासन, शलभासन, मकरासन, उश्ट्रासन, भुजंगासन आदि का नामकरण, विधि, लाभ एवं सावधानियाँ
9.7 सारांश
9.8 बोध प्रश्न
9.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

9.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जान सकेगे की -

- घेरण्ड संहिता में षट्कर्म आसनों का स्वरूप
- घेरण्ड संहिता में आसनों का वर्णन
- सुखासन, वज्रासन, गुप्तासन, मत्यासन, गोरक्षसन, उत्कटासन, संकटासन, वृक्षासन आदि का नामकरण, विधि, लाभ एवं सावधानियाँ
- मण्डुकासन, उत्तानमण्डूकासन, गरूड़ासन, वृशासन, शलभासन, मकरासन, उश्ट्रासन, भुजंगासन आदि का नामकरण, विधि, लाभ एवं सावधानियाँ

9.2 प्रस्तावना

योग विद्या का उद्भव हजारों वर्श प्राचीन है। श्रुति पंरपरा के अनुसार भगवान शिव योग विद्या‌ा के प्रथम आदि गुरू, योगी या आदियोगी हैं। हजारों हजारों वर्श पूर्व हिमालय में कांति सरोवर झील के किनारे आदियोगी ने योग का गूढ ज्ञान पौराणिक सप्त ऋशियों को दिया था।

योग के अलग-अलग सम्प्रदायों, परंपराओं, दर्षनों, धर्मो एवं गुरू-षिश्य परंपराओं के चलते भिन्ल-भिन्न पारंपरिक पाठशालाओं का मार्ग प्रषस्त हुआ इनमें ज्ञानयोग, भक्तियोग, पातंजलयोग, कुंडलिनीयोग, ध्यानयोग, मंत्रयोग, लययोग, राजयोग, जैनयोग, बौद्धयोग एवं विषेश रूप से हठयोग का महत्व है। व्यक्ति की शारीरिक क्षमता उसके मन एवं भावनाएं तथा उर्जा के स्तर के अनुरूप हठयोग कार्य करता है।

9.3 **घेरण्ड संहिता में षट्कर्म आसनों का स्वरूप**

महर्षि घेरण्ड द्वारा वर्णित हठयोग साधना के सात अंगों में सर्वप्रथम अंग क्रिया (शोधन) है। शोधन अर्थात शरीर की शुद्धि इस हेतु षट्कर्मो का विधान बतलाया गया है। षटकर्मो के द्वारा शरीर और मन को विकार रहित निर्मल एवं स्वच्छ बनाया जा सकता है।

षटकर्म दो मुख्य प्राण प्रवाहों, इड़ा और पिंगला को समायोजित करते है। फलस्वरूप शारीरिक और मानसिक शुद्धि एवं संतुलन की प्राप्ति होती है। ये क्रियायें शरीर में उत्पन्न त्रिदोषों-वात , पित्त और काफ को संतुलित करते है। इन त्रिदोषों के शरीर में असन्तुलन से रोगों (ब्याधियों) की उत्पत्ति होती है। इन षट्कर्मों का अभ्यास आसन प्रायाणम तथा अन्य उच्च अभ्यासों के पूर्व किया जाता है। जिससे शरीर बिना किसी व्यावधान के साधक की साधना में सुख एवं स्थिरता प्रदान करता रहें। ये षटकर्म निम्नलिखित हैः-

धौतिर्वस्तिस्था नेतिः लौलिकी त्राटकं तथा।
कपाल भातिश्चैतानि षट्कर्माणि समाचरेत्।। 2 ।।

(घे. स. 1/12)

(1) (2) (3) (4) (5) (6)

धौति वस्ति नेति नौली त्राटक कापालभाति

(1) धौति क्रियाः- छः कर्मो (षटकर्मों) में पहला कर्म धौति क्रिया है। धौति क्रिया से अमाशय और अन्ननलिका की सफाई होती है। यह सफाई पानी से भी की जा सकती है तथा इसे मुलायम कपड़े से भी किया जा सकता है साथ ही केवल हवा (वायु) के द्वारा भी इस विधि से शोधन किया जा सकता है। कुल 13 प्रकार की धौति क्रियायें घेरण्ड ने बतलाई है जो निम्नांकित है-

अन्तधौतिर्दन्तधौतिर्हद्धौतिर्मूल शोधनम्।
धौतिं चतुर्विधां कृत्वा धटं कुर्वन्ति निर्मलम्।

(धे. स. 2/13)

(1) (2) (3) (4)

अन्तधौंति दन्तधौति कृद्धौति मूलशोधन

(i) वातसार (i) दन्तमूल (i) दण्डधौति

(ii) वारिसार (ii) जिव्हाशोधन (ii) वमनधौति

(iii) अग्निसार (iii) दो कर्णरन्ध्र धौति (iii) वस्त्रधौति

(iv) बहिष्कृत

अर्न्तचधौति का अर्थ है आन्तरिक सफाई अर्न्त धौति में तीन चीजों का प्रयोग होता है -हवा,पानी और कपड़ा। दन्तधौति का शाब्दि अर्थ होता है दाँतो की सफाई करना। दंतधौति का केवल शब्दिक अर्थ यहां नही है बल्कि इसका अर्थ शीर्ष प्रदेश के सभी रन्ध्रों (छिन्द्रों) की सफाई से है। तृतीय धौति क्रिया कृद्धौत का अर्थ होता है हृद्रय प्रदेश की सफाई। अन्न नलिका और फेफड़े हृद्रय प्रदेश में आते हैं , अतः इनकी सफाई कृद्धौति के माध्यम से होती है। चैथा है मूलशोधन शरीर के मूल भाग की सफाई। गुहा द्वारा बड़ी आँत मूत्र नलिकाओं इत्यादि की सफाई। ये धौति क्रिया सम्बन्धित शरीरांगों को स्वच्छ कर शरीर को शुद्ध हल्का एवं निरोगी बनाती है।

(2) वस्ति क्रिया:- षटकर्मो में वस्ति कर्म दूसरा शोधन उपाय है। इसे यौगिक एनीमा समाझा जा सकता है। इस क्रिया में गुदा द्वार से जल खींचकर थोड़ी देर तक बड़ी आंत में रखते है। इसके बाद जल को बाहर निकाल देते है। एनिमा में यंत्र की सहायता ली जाती है यह स्वतः ही किया जाता हैं वस्ति क्रिया के निम्ननांकित प्रकार है -

जल वस्तिः शुष्क वस्तिर्वस्ती च द्विविधौ स्मृतौ।
जल वस्तिं जले कुर्याच्छुकवस्तिं सदाक्षितौ।।

(धे. सं. 1/45)

(1) (2)

जल वस्ति शुष्क वस्ति (थल)

जल वस्ति उत्कटासन में नाभितक भरे जल में बैंठकर गुदा के अंकुचन प्रसरण द्वारा जल को आँतों में भरते है। जबकि शुष्क या थलवस्ति में पश्चिमोतान आसन लगाकर गुदा का परिचालन करते है।

चूकि वस्ति कर्म गुल्म, प्लीहा, उदर रोग तथा वात-पित्त-कफ का शमन करता है। इसके अभ्यास से कोष्ठबद्धता सदा के लिये दूर हो जाती है आमवात नष्ट हो जाता है। गठिया रहने पर आसन नहीं हो सकते तथा कोष्टबद्धता होने पर मन में विषाद रहता है अतः योग साधकों के लिऐ यह एक अनिवार्य क्रिया है। इससे शक्ति का विकास होता है , उदरस्थ स्नायुओं पर नियन्त्रण प्राप्त होता है। पानी या वायु को ऊपर खींचने के लिए स्नायु-नियन्त्रण आवश्यक है। इसमें उदर अंगों के स्वास्थ्य एवं क्षमता में वृद्धि होती है। रक्तपरिसंचरण सुचारू रूप से होता है। आंतरिक अंगों की मालिश होती है। इस कारण नाड़िया स्वस्थ होकर रक्त का प्रवाह सुचारू होता है। गुदा द्वार के रोगों में यह अभ्यास श्रेष्ठतम है।

(3) नेति क्रिया:- नेति क्रिया षट्कर्मो में तीसरी क्रिया है। इस क्रिया का उद्देश्य शीर्ष, कपाल के क्षेत्रों की सफाई करना है। नेति क्रिया आन्तरिक नाड़ियों को संवेदनशील बनाने में सहायक है। दृष्टि

सम्बन्धित नाड़ियों का इस क्रिया द्वारा शोधन होता है। नासिका मार्ग शुद्ध स्वच्छ होता हैं घेरण्ड ऋषि द्वारा केवल सूत्र नेति का विधान बताया गया है।

वर्तमान में लोग सूत्र के स्थान पर केथेटर टूयूब का प्रयोग करते है। नेति के अन्य प्रकारों में जल नेति धृत नेति, दुग्ध नेति तेल नेति एवं मूत्र (शिवाम्बू) नेति का प्रयोग करते है। सूत्र नेति के पूर्व जल या अन्य नेति करना अच्छा होता है।

वितस्तिमानं सूक्ष्मसूत्रं नासानाले प्रवेशयेत्।
मुखान्निर्गमयेत्पश्चात् प्रोच्यते नेतिकर्मकम्।।

(घे. सं. 1/50)

नेति क्रिया के प्रकार

1. सूत्र नेति 2. जल नेति 3. धृत नेति 4. दुग्ध नेति 5. तेल नेति 6. मूत्र नेति

यह क्रिया नसिका के अन्दर सायनस को साफ कर देती है। जिन लोगों को साइनासाइटिस , राइनाइटिस, सरदर्द या माइग्रेन है। या अग्र ललाट में जिन्हें हमेशा दर्द होता रहता है। या जिन लोगों की दृष्टि कमजोर हैं, आँखे जल्दी थक जाती हैं, कुछ देर पढ़ने के बाद आँखों में पानी आ जाता है, लाल हो जाती हैं , दर्द देती हैं, या कान से सम्बन्धित समस्यायें है। तब इसका प्रयोग उपयोगी है। महर्षि घेरण्ड इसके तीन लाभ बतलाते है।

(1) कफ दोष दूर होता है।

(2) दृष्टि दोष दूर होता है। तथा दिव्य दृष्टि प्राप्त होती है।

(3) खेचरी मुद्रा की सिद्धि प्राप्त होती है। खेचरी मुद्रा की सिद्धि से आकाश गमन सहित अनेक सिद्धियां प्राप्त होती है।

(4) लौलिकी (नौलि क्रिया): षट्कर्मो में चैथा अभ्यास नौलि क्रिया है जिसे लौलिकी भी कहते हैं। यह क्रिया पेट के अन्य अंगों की मालिश कर उन्हें शक्तिशाली बनाने की क्रिया है।इसका अभ्यास अपचन, भूख की न्यूनता , भूख कम लगना , पेट में कीडे होना इत्यादि समस्याओं में इसका अभ्यास अत्याधिक लाभकारी है। वायुदोष भी इससे दूर हो जाते है । सभी रोगों की नाशक है यह जठराग्नि को प्रदीप्त करती है। कुण्डलिनी योग की महत्वपूर्ण क्रिया है।

अमन्दवेगेन तुन्दं भ्रामयेदुभपाश्र्वयोः।
सर्वरोगान्निहन्तीह देहानल विवर्द्धनम्।।

(घे. सं. 1/52)

(1)	(2)	(3)	(4)
मध्य नौलि	वाम नौलि	दक्षिण नौलि	भ्रमरनौलि

नौलि क्रिया पेट को दोनों पाश्र्वो में तीव्र गति से घुमाने के लौलिकी (नौली) कहा जाता है। प्रारंम्भ में इसे मध्य नौलि निकालकर दक्षिण एवं वाम नौली का अभ्यास किया जाता है। नियंत्रण होने पर इसे भ्रमर के समान घुमाया जाता है। यह अग्निसार क्रिया का प्रकारान्तर है।

इस क्रिया का कार्य स्थूल और सूक्ष्म शरीर को शुद्ध करना , संयत अवस्था में लाना, उनसे रोगों को दूर करना यह क्रिया देहाअग्नि को (जठराग्नि को) तीव्र करती है अतः अन्य रोग स्वयं ही नष्ट हो जाते है। इस क्रिया का प्रभाव सम्पूर्ण शरीर पर पड़ता है।

(5) त्र्राटक क्रिया:- षट् कर्मो में पाचवाँ कर्म त्राटक कर्म है। आँखों और तन्त्रिका तन्त्र के अंगीय एवं कार्यात्मक विकारों को दूर करने के लिए यह अभ्यास बहुत उपयोगी है। यदि किसी अंग में , आँखों में या तान्त्रिका तंन्त्र में कुछ विकार उत्पन्न हो जाते हैं , जैसे बहुत से लोगों को 'टिक' होता है कभी-कभी हाथ एकदम हिल जाता है, कभी, कभी एक आँख की पलक हमेशा जल्दी जल्दी झपकती रहती है , जिसे अनियन्त्रित तन्त्रिका क्रिया कहते है , इसके लिए त्राटक बहुत उपयोगी है। त्राटक के अभ्यास से निकट दृष्टि दोष , दूर दृष्टि दोष , मायो पिया या आँखों से सम्बन्धित अन्य दोष, स्वस्थ शरीर में बहुत हद तक नियन्त्रित रखे जा सकते हैं। शाम्भवी मुद्रा के लाभ इससे प्राप्त कीये जा सकते है। यह मुद्रा इससे सिद्व की जा सकती है यह क्रिया निम्नलिखित तीन प्रकार से की जा सकती है:-

निमेषोन्मेकं त्यक्त्वा सूश्मलक्ष्यं निरीक्षयेत्।
पतन्ति यावदश्रूणि त्राटंक प्रोच्यते बुधैः।।

(घे. सं. 1/53)

(1)	(2)	(3)
अन्तः त्राटक	मध्य त्राटक	बाह्य त्राटक

त्राटक कर्म यौगिक साधना में एक उच्च साधना है। इसका प्रभाव आश्चर्यजनक रूप से होता है। साधक की सभी इच्छाएँ पूर्ण होती है। साधक में दिव्य दृष्टि उत्पन्न हो जाती है। शाम्भवी शक्ति सिद्ध से कुण्डलनि शक्ति के जागरण का अर्थ होता है। कुण्डलिनि शक्ति अर्थात शाम्भवी या वायवी या प्राण शक्ति भी अर्थ होता है इसकी सिद्धि सर्वसिद्धि प्रदायनि होती है। अपनी प्रकृति के अनुरूप साधक को अन्तः मध्य या बाहा्र त्राटक की साधना करना चाहिये। सती द्वारा त्राटक सिद्धि को फलस्वरूप ही योगाग्नि में स्वयं को भस्म किया गया था।

(6) कपालभांति क्रिया:- षटकर्मो में अन्तिम छटवां अभ्यास कपालभति क्रिया है। यह श्वसन संस्थान का अभ्यास है। इससे श्वासनली विकार रहित बनती है तथा रक्त की शुद्धि होती है। इस क्रिया में अधिक मात्रा मे आँक्सीजन अन्दर जाती है। स्नायविक अव्यवस्था और मस्तिष्क से सम्बन्धित विकारों में भी कपालभाति एक लाभदायक शुद्धि क्रिया है। जिन लोगों की स्मरण शक्ति कम हो जाती हैं उन्हें यह क्रिया बहुत लाभ पहुचाती है। अर्थात स्मृति वृत्ति को ठीक करती है।

वातक्रमेण व्युत्क्रमेण शीत्क्रमेण विशेषतः।

भालभातिं त्रिधा कुर्यात्कफदोषं निवारयेत्।।

(घे.से. 1/55)

(1)	(2)	(3)
वातक्रम	व्यूतक्रम	शीतक्रम
कपालभाति	कपाल भाति	कपाल भाति
(अनुलोम विलोम क्रिया)		
या		
भाल भाति (यहाँ भाल = ललाट)		

कपाल भाँति का महर्षि घेरण्ड सर्वाधिक महत्वपूर्ण लाभ यह बतलाते है कि इन तीनों प्रकारों को जो भलीभाँति अभ्यास में लाता है उसके कफदोष का निवारण हो जाता है। कफ दोष के निवारण से वात एवं पित्त भी सम्यक हो जाता है। काया कुंदन की भाँति आभायुक्त हो जाती है।

इस क्रिया का सम्बंध हमारे प्राणमय कोश से है। इस क्रिया से तंत्रिका तंत्र का विभिन्न आयामों में उत्तेजन किया जाता है जिससे वह सक्रिय बनें।

घेरण्ड संहिता में आसनों का स्वरूप

महर्षि घेरण्ड द्वारा प्रतिपादित सप्तांग योग में से आपने पिछली इकाई में षट्कर्मो का अध्ययन किया। इस इकाई में आप सप्तांग योग के द्वितीय अंग आसनों के बारे में जानकारी हासिल करेगें।

योगासनों का सर्वप्रथम उपदेश आदिनाथ योगीश्वर भगवान शिव ने सर्वप्रथम जगत् जननी माता पार्वती को दिया था। परम्परा के अनुसार चैरासी लाख आसन माने जाते हैं। अर्थात् प्रत्येेक योनि का एक आसन जगत् में जीवों की चैरासी लाख योनियां मानी गई है। वर्तमान युग में चैरासी लाख आसनों का अभ्यास कदापि संभव नहीं। अतः चैरासी लाख में से चैरासी (84) आसन मुख्य माने गये है। इन चैरासी आसनों में से भी महर्षि घरेण्ड ने मृत्युलोक के अनुसार बत्तीस (32) आसनों का अभ्यास योग साधना में पर्याप्त महत्व का बतलाया है। ये 32 आसन निम्नांकित है -

सिद्धं पद्यं तथा भद्रं मुत्कं वज्रं च स्वस्तिकम्।

सिहं च गोमुखं वीरं धनुरासनमेव च ।।

(घे. सं. 2/37)

1	2	3	4	5
सिद्धासन	पद्यासन	भद्रासन	मुक्तासन	वज्रासन
6	7	8	9	10

स्वास्तिकासन सिंहासन गोमुखासन वीरासन धर्नुरासन

मृतं गुप्तं तथा मात्स्यं मत्स्येन्द्रासनमेव च।
गोरक्षं पश्चिमोत्तानमुत्कटं सकटं तथा।।

(घे. स. 2/4)

11	12	13	14	15	16	17	18
मृतासन	गुप्तासन	मत्स्यासन	रक्षासन	पश्चिममोतानासन	उत्कटासन		सकंटासन

मयूरं कुक्कुटं कूर्मं तथा चोत्तानकूर्मकम्।
उत्तानमण्डुकं वृक्षं मण्डुकं गरूडं वृषम्।।

(घे. सं. 2/5)

19	20	21	22	23	25	25
मयूरासन	कुक्कुटासन	कूर्मासन	उत्तानकूर्मासन	मण्डूकासन	उत्तानमण्डूकासन	वृक्षासन
26	27					
गरूडासन	वृषभासन					

शलभं मकरं चोष्ट्रं भुजगं योगमासनम्।
द्धात्रिंशदासनान्येव मत्र्ये सिद्धिप्रदानि च।।

(घे. स. 2/6)

28	29	30	31	32
शलभासन	मकरासन	उष्ट्रासन	भुजांगासन	योगासन

ध्यान दें - उपरोक्त वर्णित आसनों में से पन्द्रह (15) आसनों

(1) सिद्धासन, (2) पद्यमासन (3) स्वास्तिकासन (4) श्वासन (5) धर्नुरासन (6) मयूरासन (8) पश्चिमोत्तासन (8) मत्सयेन्द्रासन (9) गोमुखासन (10) सिंहासन (11) भद्रासन (12) वीरासन (13) कुकुटासन (14) कूर्मासन (15) उत्तानकूर्मासन को आप विस्तार सहित खण्ड 7 में हठप्रदीपिका में अध्ययन कर चुकें है। इन्हें यहाँ नहीं दिया गया है। इन्हें आप खण्ड 7 से अध्ययन कर सकते हैं।

घेरण्ड संहिता में वर्णित शेष सत्रह (17) आसनों में (1) मुक्तासन (2) वज्रासन (3) गुप्तासन (4) मत्स्यासन (5) गोरक्षासन (6) उत्कटासन (7) संकटासन (8) मण्डुकासन (9) उत्तान मण्डुकासन (10) वृक्षासन (11) गरूड़ासन (12) वृषभासन (13) शलभासन (14) मकरासन (15) उष्ट्रासन (16) भुजंगासन (17) योगासन। इन आसनों का अध्ययन आप यहाँ करेगें नामकराण , विधि, लाभ एवं सावधानियाँ के क्रम से करेंगें।

9.5 सुखासन, वज्रासन, गुप्तासन, मत्यासन, गोरक्षसन, उत्कटासन, संकटासन, वृक्षासन आदि का नामकरण, विधि, लाभ एवं सावधानियाँ

(1) सुखासन **(Liberation pose or Easy pose)**

पायु मूले बाम गुल्फं दक्ष गुल्फं तथोपरि।
शिरोग्रीवासमं कार्य मुक्तासनं तु सिध्विदम्।।

(घे. सं. 2/10)

नामकरण

इस आसन को लगाने पर शरीर एकदम हल्का (मुक्त) महसूस होता है। इस कारण इसे मुक्तासन या सुखासन कहते है।

विधि

- बाँयें पाँव की एड़ी को पायुमूल में लगाकर उस पर दाँये पाँव की एड़ी रखें।
- शिर तथा ग्रीवा कंठ प्रदेश को समान रखें।
- शरीर को सीधा रखते हुऐ बैठे।
- हाथ सामान्यतः ज्ञानमुद्रा या चिन्मुद्रा में रखें।
- आँखें बंद रखते हुऐ शरीर को एकदम ढीला छोड़ दें।

लाभ

- इसका प्रयोग ध्यान हेतु श्रेष्ठ एवं सुविधाजनक है।
- अन्य आसनों में जो नहीं बैठ सकते उनके लिये बिना शारीरिक तनाव या कष्ट के किया जा सकता है।
- यह शारीरिक और मानसिक संतुलन प्रदान करता है।
- सावधानियाँ
- मेरूदण्ड के निचले भाग में दर्द या पीड़ होने पर नहीं करना चाहियें।

- साइटिका की शिकायत में भी इससे बचना चाहिये।

(2) वज्रासन (Pelvic Pose)

जंघाभ्यां वज्रवत् कृत्वा गुदपाश्र्वे दवाकुभौ।
वज्रासनं भवेदेतत् योगिनां सिद्धिदायकम् ।।

(घे. सं. 2/11)

नामकरण

इस आसन में दोनों जंघाओं की स्थिति वज्र के समान दृढ़ होने से इसे वज्रासन कहते है।

विधि

- सर्व प्रथम आसन में घुटनों के बल खड़े हो जावें।
- घुटने एक दूसरे से मिले होने चाहिये।
- धारे-धीरे नितम्बों को नीचे फैली हुई दोनों एड़ियो के बीच टिका दें। दोनों पैरों के अगुंठे एक दूसरे पर हो।
- सिर, गरदन एक सीध में हथेलियां नीचे सहजता से रखें।

लाभ

- वज्र नाड़ी पर जोर पड़ता है। जिससे प्रजनन एवं मूत्र निष्कासन प्रणाली के स्नायविक आवेग सहजता से मस्तिष्क में पहुचते है।
- यौन भावनाओं और ब्रम्हचर्य को नियंत्रित करने में सहायक है।
- शरीर की जैविक ऊर्जा चेतना के विकास की ओर बढ़ती है।
- मूलाधार चक्र के जागरण में सहायक है।
- हर्निया एवं बवासीर के उपचार में सहायक है।
- पुरूषों के हाइड्रोसिल तथा महिलाओं के मासिक धर्म की अनियमितता के उपचार में सहायक है।
- ध्यान एवं मानसिकशान्ति हेतु उपयोगी है।
- साइटिका एवं सेक्रल इन्फेक्शन से पीड़ित व्यक्तियों के लिए ध्यान में सहायक आसन है।
- कुण्डलिनी योग में सुषुम्ना जागरण हेतु इसका अभ्यास किया जाता है।

- घेरण्ड जी इसे योग सिद्धि हेतु बतलाते है।

सावधानियाँ

- जाँघों पर ज्यादा जोर पड़ने पर घुटनों को थोड़ा फैलाना पड़ता है।
- यदि अभ्यास या अन्य कारण से बैठने में कठिनाई हो या पैर या टखनों में दर्द हो तो इसे न करें। तथा टखनों एवं पैर के बीच तकिया रखा जा सकता है।

(3) गुप्तासन (Secret Pose)

जानूनोरन्तरे पादौ कृत्वा पादौ च गोपयेत्।
पादोपरि च संस्थाप्य गुदंगुप्तासनं विदुः।।

(घे. सं. 2/18)

नामकरण

इस आसन में पैर के पंजे एड़िया और पिण्डलियां जाँघ के नीचे छुपी हुई होती है। इस कारण इसे गुप्त (छुपा) आसन कहते है।

विधि

- दोनों पंजों के ऊपर बैठकर अर्थात् गुदा को दोनों पंजों के ऊपर रखते है।
- हाथ घुटनों पर ज्ञान या चिन मुद्रा में रखते है।

लाभ

- सीवनी नाड़ी पर जोर पड़ने से तथा कटि प्रदेश के ऊपर रक्त संचरण बढ़ने से मूलाधार चक्र, एवंजननांग से सम्बंधित लाभ प्राप्त होते है।

सावधानियाँ

- मेरूदण्ड के निचले भाग में दर्द या पीड़ा होने पर नहीं करना चाहिये।
- साइटिका की शिकायत में भी इससे बचना चाहिये।

(4) मत्स्यासन (Fish Pose)

मुक्तपद्यासनं कृत्वा उत्तानशयनं चरेत्।
कूर्पराभ्यां शिरो वेष्टयं रोगध्नं मात्स्यमासनम्।।

(घे. सं. 2/19)

नामकरण

इस आसन को करने पर शरीर की स्थिति मत्स (मछली) के समान दिखाई देती है। इस कारण इसे मत्स्यासन कहते है।

विधि

- सर्वप्रथम पद्मासन लगाकर बैठते है।
- केहुनियों के सहारे धीरे-धीरे पीछे झुककर सिर को जमीन पर रखते है।
- दोनों हाथों की सहायता से ब्रम्हा्ररन्ध्र को जमीन पर टिकाते है।
- दोनों हाथों से दोनों पैरों के अगूठें पकड़ते है।
- शरीर का भार सिर , नितम्बों एवं पैरों पर डालकर भुजाओं एवं पूरे शरीर को शिथिल बनाते है।
- पैरों को बदलकर अभ्यास करें किया जाना चाहिये।

लाभ

- इस आसन के अभ्यास से सभी रोगों का निदान होता है।
- आँतों और आमाशय के रोगों में बहुत लाभकारी है।
- यह प्रदाह, एवं खूनी बवासीर को दूर करता है।
- थायमस ग्रंन्थि को उद्धीप्त कर प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाता है।
- यौवन एवं प्राणशक्ति की वृद्धि करता है।
- श्वसन रोगों , दमा, ब्रोंकाइटिस, कफ दोष , टाँसिलाइटिस तथा सरवाइकल स्पांण्डिलाटिस और गर्भाधान के दर्द को कम करने में सहायक है।

सावधानियाँ

- गंभीर रोगों या हद्रय रोग , पेप्टिक अल्सर , हर्निया, मेरूदण्ड के रोग तथा गर्भवती महिलाओं को इसे नहीं करना चाहियें।

(5) **गोरक्षासन (Throne Pose)**

जानुर्वोरन्तरे पादौ उत्तनाव्यक्त संस्थितौ।
गुल्फौ चाच्छाद्य हस्ताभ्यामुत्तानाभ्यां प्रयत्नतः।।
कंठ संकोचन कृत्वा नासाग्रमवलेकयेत्।

गोरक्षासन मित्याहुर्योगिनां सिद्धिकारणम्।।

(घे. सं. 2/22)

नामकरण

इस आसन को लगाने पर शरीर की स्थिति सिंहासन में बैठे भद्र पुरूष के समान दिखाई देती है। वीर्यवान तेजस्विता प्रदान करने के कारण इसे गोरक्षासन् कहते है।

विधि

- दोनो घुटने जाँघों के बीच में मोड़कर तलवों को मिलाकर एड़ियों को ऊपर उठाकर रखते हैं।
- घुटने और पैर के पंजे जमीन पर रखते हैं।
- इसमें श्रेणि प्रदेश, नितम्ब, और प्रजननेन्द्रियां एड़ी के पीछे रहती है।
- हाथों को नितम्बों के पीछे रखा जाता है कि अंगुलियां बाहर की ओर रहें।
- दोनों हाथों को कलाइयों से विपरीत करके विरूद्ध ऐड़ियों को पकड़ते है।
- दृष्टि नासिकाग्र रखते है।

लाभ

- इसके अभ्यास से प्रजनन इन्द्रियों के रोगों , काम वासना , और वीर्य स्खलन पर नियन्त्रण किया जा सकता है।
- पैरों को लचीला बनाता है। तथा अपान वायु के प्रवाह को उर्ध्वसगामी करता है। गले के रोगों का निदान करता है।
- उर्ध्वकगामी अपान वायु ध्यान में सहायक है। इस कारण इस आसन को ध्यान हेतु प्रयोग किया जा सकता है।

सावधानियाँ

- पैरों की बीमारियाँ , कमर के निचले भाग में दर्द तथा साइटिका के रोगियों को नहीं करना चाहिये।

(6) उत्कटासन (Monkey Pose)

अंगुष्ठाभ्यामवष्टभ्य धरां गुल्फे च खे गतौ।

तत्रौपारि गुदं न्यस्य विज्ञेयमुत्कटासनम्।।

(घे. सं. 2/23)

नामकरण

इस आसन को लगाने पर शरीर की स्थिति दोनों पैरों पर बैठे बंदर (उत्कट) के समान दिखाई देने से इसे उत्काटासन कहते है।

- एक अर्थ उत्सुकता से भी लिया जाता है। किसी कार्य को शीघ्र शुरू करने की उत्सुकता में ब्यक्ति की शरीरिक दशा इसी प्रकार की होती है।

विधि

- सीधे खड़े होकर पैरों की दूरी कमर की चैड़ाई के बराबर रखते है।
- दोनों हाथ दोनों घुटनों में रखकर धीरे-धीरे बैठते है।
- पैरों के पंजों पर शरीर का सारा भार होता हैं। एड़िया जमीन से उठी हुई तथा ऐड़ियों पर गुदा को रखते है।

लाभ

- इससे शरीरिक सन्तुलन बढ़ता है। मांसपेशियों और नाड़ियों की सुग्राहिता बढ़ती है।
- नाड़ियों की क्रियाशीलता बढ़ाने से शरीर निरोग होता है।

सावधानियाँ

- पैरों के रोगों से ग्रसित व्यक्ति न करें।
- साइटिका मेरूदण्ड के निचले भाग में दर्द, कष्ट पीड़ा हो तो न करें।
- गर्भवती महिलाये इसे न करें।

(7) संकटासन (Difficult Pose)

वाम पादचितेर्मूलं विन्यस्य धरणीतले।
पाद दण्डेन याभ्येन वेष्टये द्धाम पादकम्।
जानुयुग्मे कर युग्मेतत्संकटासनम्।।

(घे. सं. 2/29)

नामकरण

इस आसन को लगाने पर व्यक्ति की शारीरिक स्थिति इस प्रकार दिखाई देती है जैसे कोई व्यक्ति किसी आसन संकट या विपदा में हाथ पैर सुकोड़कर बैठ जाता है। इस कारण घेरण्ड ने इसका नाम संकटासन दिया है। एक अन्य अर्थ अधिक थकान की स्थिति में एक पैर पर खड़े होना या पैर पर पैर रखकर बैठना से भी है।

विधि

- बायाँ पांव और घुटना पृथ्वी पर रखें।
- इसके बाद दाहिने पैर से बायें पांव को लपेटते हुएं दोनों घुटनों पर दोनों हाँथ रखें।

लाभ

- स्नायुओं को दक्ष बनाता है।
- मांसपेशियों को सबल बनाता है।
- पैरों के जोड़ों को ढीला बनाता है।

सावधानियाँ

- पैरों के रोगों चोट घाव की स्थिति में न करें ।
- कमर की बीमारियों मेरूदण्ड के नीचे भाग के रोगों में न करें।

(8) वृक्षासन (Tree Pose)

वामोरूमूलदेशे च याम्यं पादं निधाय वै।
तिष्ठेत्तु वृक्षपद्भूमौ वृक्षासनमिदं विदुः।।

(घे. सं. 2/30)

नामकरण

इस आसन में शरीर की स्थिति वृक्ष के समान दिखाई देने के कारण इसे वृक्षासन कहते है।

विधि

- सर्व प्रथम सीधे खड़े होकर दृष्टि स्थिर करें।
- इसके बाद दहिने पैर को उठाकर बाँयी जाँघ में अर्द्धपद्यमासन जैसी स्थिति में रखें।
- धीरे-धीरे बांयें पैर को झुकाकर घुटने को जमीन में रख देते है।
- दोनों हाथों को प्रणाम की मुद्रा में छाती के सामने रखते हैं।

लाभ

- शरीरिक संन्तुलन तथा पैरों की माँस पेशियों को सबल बनाता है।
- पेट के अंगों को सबल बनाने तथा किडनी और ब्लडर की अत्याधिक सक्रियता को संतुलित करने में सहायक है।

- वीर्य के रोगों में न करें।

सावधानियाँ

- पैर के रोगों में न करें।
- कमर के तथा मेरूदण्ड के नीचे के हिस्से के रोगों में नहीं करना चाहिये।

9.6 मण्डुकासन, उत्तानमण्डूकासन, गरूड़ासन, वृशासन, शलभासन, मकरासन, उश्ट्रासन, भुजंगासन आदि का नामकरण, विधि, लाभ एवं सावधानियाँ

(9) मण्डुकासन (Frog Pose)

पृष्ठदेशों पादतलावड.गुष्ठौद्वौच च संस्पृशेत्।
जानुयुग्मं पुरस्कृत्य साध्येन्मण्डूकासनम्।।

(घे.सं. 2/31)

नामकरण

इस आसन को लगाने पर शरीर की स्थिति दोनों पैरों पर बैठे मेढ़क (मण्डूक) के समान दिखाई देने के कारण इसे मण्डूकासन कहते है।

विधि

- सर्वप्रथम वज्रासन में बैठ कर घुटनों को यथासम्भव दूर-दूर फैला लेते है।
- इसके उपरांत पैरों की एड़ियों को धीरे-धीरे फैलाते हुऐ नितम्बों को जमीन पर टिका देते है।
- पंजों की अंगुलियाँ बाहर की तरफ रखते है। दोनों हाथ घुटनों पर शरीर सीधा आखें बंद एवं शरीर को शिथिल छोड़ देवें।

लाभ

- वीर्य रक्षा के लिये इसका अभ्यास श्रेष्ठ उपाय है।
- स्फूर्ति एवं बल बुद्धि के विकास हेतु भी इसका अभ्यास किया जाना चाहियें।

सावधानियाँ

- पैरों में घाव या मांसपेशियों के कड़ेपन में एकाएक नहीं करना चाहियें।
- मेरूदण्ड के नीचे के हिस्से में परेशानी होने पर न करें।

(10) उत्तान मण्डूकासन (Excited Frog Pose)

मण्डूकासनमध्यस्थं कूर्पराभ्यां घृतं शिरः।

एतद्भेकवदुत्तानमेतदुत्तान मण्डूकम्।।

(घे. सं. 2/29)

नामकरण

इस आसन को लगाने पर शरीर की स्थिति उत्थित मण्डूक (Excited Frog Pose) के समान दिखाई देने के कारण इसे उत्तान (खिंचा हुआ) मण्डूकासन कहते है।

विधि

- सर्वप्रथम वज्रासन में बैठें।
- वज्रासन से सुप्त वज्रासन की स्थिति में धीरे-धीरे आये।
- सुप्तवज्रासन में धीरे-धीरे लेट जावें।
- दोनों हाथों की कुहनियों के ऊपर सिर को रख लें।

लाभ

- छाती के विस्तार में सहायक।
- श्वसन प्रणाली में सम्बंधित सभी रोगों के निदान में सहायक ।
- स्पाँण्डिलाइटिस, स्लिपडिस्क तथा साइटिका के उपचार में विशेष लाभकारी है।

सावधानियाँ

- नाड़ी तंतुओं पर अत्याधिक खिचाव होने से इस आसन को लगाने एवं छोड़ने में अत्याधिक सावधनी बरतनी चाहिये।

(11) गरूड़ासन (Eagle Pose)

जड़धोरूभ्यां धरां पीडय स्थिरकायों द्विजानुना।।

जानूपरि करद्वन्द्वं गररूडासनमुच्यते।।

(घे. सं. 2/32)

नामकरण

इस आसन को लगाने पर शरीर की स्थिति भगवान विष्णु के वाहन गरूड़ (मूंहसम) पक्षी के समान दिखाई देती है। इस कारण इसका नामकरण गरूड़ासन हुआ।

विधि

- सर्व प्रथम सीधे खड़े होकर दाहिने पैर पर बायें पैर को ऊपर से पीछे ले जाते हुऐ पूरा लपेटते है।

- बायें पैर के पंजे को दाहिने पैर पर ठीक प्रकार से फँसा देते है। दहिना पैर घुटने से थोड़ा झुका हुआ रखते है।
- पैरों की भाँति हाँथों को भी आपस में लपेट लेते है।
- शरीर की सभी माँसपेशियाँ ऊपर की तरफ खिचीं हुई रखी जाती है।

लाभ

- हाथों तथा पैरों की माँसपेशियों को सबल बनाता है तथा जोड़ों को ढ़ीला करता है।
- स्नायुओं की दक्षता एवं स्वस्थ्यता बढा़ता है।
- साइटिका, आमवात, तथा हाइड्रोसिल के उपचार में बहुत सहायक है।
- इसका अभ्यास कुण्डलिनी शक्ति के जागरण में भी किया जाता है।

सावधानियाँ

- पैरों के रोगों में सावधानी सें अभ्यास करें।
- आसन को लगाने तथा छोड़ने में संतुलन का विशेष ध्यान रखें।

(12) वृषासन (Bull Pose)

याम्यगुल्फे पादमूले वामभागे् पदेतरम्।
विपरीतं स्पृशेद् भूमिंवृषासनमिदं।।

(घे.स. 2/33)

नामकरण

इस आसन को लगाने पर शरीर की स्थिति बैठे वृष अर्थात बैल (Bull) के समान दिखाई देती है। इस कारण इसे वृषासन नाम दिया गया हैं।

विधि

- सर्वप्रथम दोनों पैर सामने कर बैढ जावें। तथा दायें पावँ की एड़ी पर गुदा को रखें।
- दूसरे पाँव की एड़ी को घुमाकर बाँयी ओर रखें।
- दोनों हाथों की हथेलियाँ नीचे करते हुऐ सामने रखे।
- दोनों पैर बदलकर आसन करें।

लाभ

- अजीर्ण अफरा इत्यादि में लाभकारी।
- शरीरिक क्रियाओं को व्यवस्थित करने में सहायक।
- अत्याधिक श्रम को दूर करने वाला।

सावधानी

- सहज एवं सरल आसन होने से विशेष साँवधानी की आवश्यकता नहीं।
- फिर भी समय एवं दोनों पैरों से अवश्य किये जाने का ध्यान रखना चाहिये।

(13) शलभासन (Locust Pose)

अध्यास्यः शेते कर युग्मं वक्षे, भूमिभवष्टभ्यकर योस्तलाभ्याम्।
पादौ च शून्ये च वितस्तिचाध्र्य, पदन्ति पीढंशलभं मुनीन्द्राः।।

(घे. सं. 2/34)

नामकरण

- इस आसन को करने पर शरीर की स्थिति शलभ अर्थात एक कीट टिड्डी के समान दिखाई देती है। इस कारण इसे शलभासन कहते है।

विधि

- सर्वप्रथम पेट के बल लेटकर दोनों हाथों को शरीर के लम्बवत् शरीर से सटाकर रखते है। ठुड्डी जमीन पर रखते है।
- दोनों पैरों को मिलाकर नीचे खींचते हुऐ एक सथ धीरे-धीरे नाभि तक उठाते है। तथा कुछ देर रूकते है। पैर जमीन से एक बीता (दस इंच) ऊपर रखते है।

लाभ

- यह आसन पूरे शरीर की स्वैच्छिक तंत्रिका तंत्र को विशेष रूप से परानुकम्पी तंत्र को उद्धीप्त करता है।
- पीठ तथा मेरूदण्ड के समस्त रोगों को दूर करने की क्षमता रखता हैं।
- साइटिका, स्लिपडिस्क, पीठ दर्द, कमर दर्द, यकृत और अमाश्य के स्वास्थ्य हेतु बहुत लाभकारी है।

सावधानियाँ

- यह आसन सम्पूर्ण शरीर के संतुलन एवं शक्ति पर आधारित होता है। अतः सावधानी से करना चाहियें
- हृदय रोग, कमजोर हृदय, धमनी की संकुचितत्ता,उच्च रक्तचाप के रोगियों को इसे नहीं करना चाहिये।

(14) मकरासन (Crocadile Pose)

अध्यास्त शेते हृद्यं निधाय, भूमौ च पादौ प्रसार्यमाणौ।

शिरश्च धृत्वा करदण्डयुग्मे, देहाग्निकरं मकरासनं तत्।।

(घे. सं. 2/35)

नामकरण

इस आसन को लगाने पर शरीर की स्थिति मकर (मगरमच्छ) के सादृश्य दिखाई पड़ती है। इस कारण इसे मकरासन कहते है।

विधि

- पेट के बल सीधा लेटकर दोनों पैरों को कमर की चैड़ाई के बराबर फैलाकर रखते है।
- दोनों हाथों को कोहुनियों से मोड़कर दोनों हथेलियों को दोनों गालों पर रखते हुऐ सिर को ऊपर उठाकर रखते है। केहुनियां ऐसी संन्तुलित हो कि गर्दन वक्ष एवं कमर पर समान तनाव हो।
- आँखों को बंद कर शरीर को शिथिल छोड़ दें।

लाभ

- इस आसन का सार्वाधिक महत्वपूर्ण लाभ शरीर अग्नि को उद्दीप्त करना है।
- छाती फेफड़े श्वसन नली, अन्ननली के विकारों में बहुत लाभकारी आसन है।
- स्लिपडिस्क, साइटिका, पीठ के निचले भाग में दर्द सम्बन्धी रोगों में बहुत प्रभावी लाभ करता है।
- सावधानियाँ
- पीठ के दर्द में तथा आसन से पीठ में दर्द की स्थिति में इसे नहीं करना चाहिये।

15 उष्ट्रासन (Camel Pose)

अध्यास्य शेते पदयुग्मव्यस्तं पृष्ठे निधायापि धृतं कराभ्याम्।

आकुंञ्च्य सम्यग्ध्युदरास्यगाठं उष्ट्रंच पीठं यततो वदन्ति।।

(घे. सं. 2/36)

नामकरण

इस आसन को करने पर शरीर की स्थिति उष्ट्र अर्थात ऊँट के समान दिखाई देती है। इस कारण इस आसन को उष्ट्रासन कहा गया है।

विधि

- सर्वप्रथम घुटनों के बल बैंठ जावें।
- दोनों हाथों को ऊपर सीधे खींचकर धीरे-धीरे सिर को पीछे की तरफ झुकाते हुऐ दोनों हाथों से दोनों पैरों के टखनों को पकड़ना चाहियें।

लाभ

- हद्रय रोग के रोगियों हेतु यह एक उत्तम आसन है।
- चूकि पीछे झुकने से सभी रक्तवाहिकाओं का विस्तार होता है अतः रक्तधमनियों का संकुचन, चर्बी बढ़ना, हद्रय की अनियमित धड़कन आदि में यह बहुत उपयोगी आसन है।
- पाचन, प्रजनन, कब्ज, मेरूदण्ड के स्नायुओं, कमर का वातदर्द कूबड़ तथा झुके कंधों के उपचार में बहुत लाभकारी आसन है।

सावधानियाँ

- उच्च रक्तचाप से पीड़ित रोगियों, तथा ऊपर से नीचे देखने पर चक्कर आने वाले व्यक्ति इसे न करें।
- लगाने और छोड़ने में बहुत ध्यान रखें।

16 भुजंगासन (Serpent Pose or Cobra Pose)

अंगुष्ठ नाभियर्यन्तम धोभूमौविनिन्यसेत्।

करतलाभ्यांधरां धृत्वा उर्ध्वूशीर्ष फणीवहि।।

देहाग्नि वर्धते नित्यं सर्वरोग विनाशनम्।

जागति भुजगी देवी भुजगासन साधनात्।।

(घे. सं. 2/37)

नामकरण

इस आसन को करने पर शरीर की स्थिति फण उठायें हुऐ भुजंग अर्थात सर्प ;ब्वइतंद्ध जैसी दिखाई देती है इस कारण इसे भुजंगासन कहा जाता है।

विधि

- सर्वप्रथम पेट के बल सीधे लेट जाते है। पूरा शरीर पेर के अंगुठे से मस्तक तक जमीन से सटा होना चाहिये।
- दोनों हाथों को छाती के बाजू में इस प्रकार रखते है कि कहुनियाँ सीधी खड़ी रहें।
- फिर धीरे-धीरे सिर को उठाते जाते है नाभिपर्यंत अग्रभाग को भुजंग के फन की भाँति उठाते है। एवं सिर को पीछे की तरफ खींचते है।

लाभ

- स्लिपडिस्क को पुनः अपने स्थान पर बैठाने में सहायक।
- पीठ दर्द दूर करने तथा मेरूदण्ड को लचीला बनाने में सहायता करता है।
- शरीर एवं मस्तिष्क के बीच रक्तसंचार को संयमित करता है।
- डिम्ब ग्रन्थि एवं गर्भाशय को स्वस्थ बनाकर मासिक धर्म तथा अन्य स्त्री रोगों में सहायता प्रदान करता है।
- यह आमाशय, यकृत, एवं वृक्क के लिए लाभकारी है।
- थायराइड ग्रंथि के स्त्राव को सम्यक् बनाता है।

सावधानियाँ

- पेप्टिक अल्सर, हार्नियाँ आँतों के यक्ष्मा या हाइपर थायराइड से ग्रस्त ब्यक्तियों को इस आसन के करने में विशेष सावधानी की आवश्यकता होती है। अतः अच्छा है इसे न ही किया जावें।

17 योगासन Yoga Pose)

उत्तानौचरणौ कृत्वा संस्थाप्योपरि जानुनोः। आसनोपरि संस्थाव्य चोत्तानं करयुग्मकम्।।
पूरकै वार्युमाकृष्य नासाग्रमवलोकयेत्। योगासनं भवेदेतद्योगिनां योगसाधने।।

(घे. सं. 2/44-45)

नामकरण

इस आसन में व्यक्ति की शरीरिक स्थिति ध्यानस्थ व्यक्ति के समान होती है। इस कारण इसे योगासन नाम दिया गया है।

विधि

- सर्वप्रथम उपयुक्त आसन में बैठ जाते है।
- पैरों को अर्ध पद्यासन में अर्थात एक पैर जाँघ के ऊपर और दूसरा जाँघ के नीचे रहता है।
- हाथ घुटनों पर ज्ञान या चिन मुद्रा में रखें होते हैं।
- दृष्टि नासिकाग्र रखते हुऐ वायु से पूरक कर कुंम्भक करते है।

लाभ

- सबसे सहज एवं सरल आसन है।
- एकाग्रता बढ़ाकर मन की चंचलता दूर करता है।
- ध्यान को स्थिर कर शांति लाम करवाता है।

सावधानियाँ

- अत्याधिक उदवेग गतिशीलता या शीघ्रता की स्थिति में इसका अभ्यास न करें।

इस प्रकार उपर्युक्त आसनों के विधिवत् अभ्यास से शारीरिक दृढ़ता रूपी इस द्वितीय सप्तांग को सिद्ध करना चाहिये।

9.8 **सारांश**

प्रस्तुत इकाई में सुखासन, वज्रासन, गुप्तासन, मत्यासन, गोरक्षसन, उत्कटासन, संकटासन, वृक्षासन , मण्डुकासन, उत्तानमण्डूकासन, गरूड़ासन, वृशासन, शलभासन, मकरासन, उश्ट्रासन, भुजंगासन आदि का नामकरण, विधि, लाभ एवं सावधानियों एवं घेरण्ड संहिता में षट्कर्म आसनों का स्वरूप, घेरण्ड संहिता में आसनों संक्षेप में वर्णन किया गया है।

9.9 **बोधात्मक प्रश्न**

1- घेरण्ड संहिता में षट्कर्म आसनों का स्वरूप को समझाइये।
2- घेरण्ड संहिता में आसनों का वर्णन करो।
3- निम्न में से किसी चार की व्याख्या कीजिए -
सुखासन, वज्रासन, गुप्तासन, मत्यासन, गोरक्षसन, उत्कटासन, संकटासन, वृक्षासन आदि का नामकरण, विधि, लाभ एवं सावधानियाँ लिखो।

4- निम्न में से किसी छ: की व्याख्या कीजिए -

मण्डुकासन, उत्तानमण्डूकासन, गरूड़ासन, वृशासन, शलभासन, मकरासन, उश्ट्रासन, भुजंगासन आदि का नामकरण, विधि, लाभ एवं सावधानियाँ

1.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

- योग परिचय - डॉ पीताम्बर झा, प्रका. गुप्ता प्रकाशन डी-35 साउथ एकसटैंशन भाग I नई दिल्ली - 49
- योग का परिचयात्मक - डॉं ओमनारायण तिवारी स्वरूपप्रकाशक पं. सुन्दरलाल शर्मा (मुक्त) विश्वविद्यालय छत्तीसगढ़, बिलासपुर (छ.ग.)
- Secrets of Hatha Vidya - Dr. Vijayendra pratap SKY FoundationPhiladelphia Pennsylvania U.S.A.
- योगासन एवं हठयोग विज्ञान - डॉ. ओम नारायण तिवारी, विलासपुर (छत्तीसगढ़)
- पतनजल योग दर्शन - डॉ. नित्यानन्द शर्मा, कोटा (राजस्थान - 324005)
- योग और अनुसंधान स्वामी कुवलयानन्द, कैवल्यधाम लोनावाला पूना 410403
- साधना स्वामी शिवान्द , दिव्य जीवन संघ , पत्रालय शिवानन्द नगर 249192 , जिला टिहरी गढ़वाल हिमालय (उ.प्र.)
- राजयोग स्वामी विवेकानंद, अद्धैत आश्रम, 5-देही एन्टाली रोड, कलकत्ता - 700014
- लाईट ऑनयोग महर्षि अरविंद, अरविंद आश्रम पाण्डिचेरी
- अष्टांग योग - चरणदास अनुवादक , श्री ओ. पी. तिवारी , प्रकाशक कैवल्यधाम-एस. एम. वाई. एम. समिति , कैवल्यधाम लोनावाला पूना

इकाई – 10

हठयोग एवं मंत्रयोग

इकाई की रूपरेखा

10.1 उद्देश्य

10.2 प्रस्तावना

10.3 हठयोग की विषय वस्तु

10.4 हठयोग का उद्देश्यए प्रमुख ऋषिए और हठयोग के अंग

10.7 मंत्र योग का स्वरूपए मंत्रों के प्रकारए मन्त्रयोग का सिद्धांत

10.8 सारांश

10.9 बोधात्मक प्रश्न

10.10 संदर्भ ग्रंथ सूचि

10.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में हम जान सकेंगे कि

- हठयोग की विषय वस्तु
- हठयोग का उद्देश्य प्रमुख ऋषि और हठयोग के अंग
- हठयोग का परमलक्ष्य
- मंत्र योग का स्वरूप मंत्रों के प्रकार मन्त्रयोग का सिद्धांत

10.2 प्रस्तावना

मंत्र योग एवं लययोग का प्रमुख आधारभूत सिद्धांत यह है कि यह समस्त दृश्य जगत् (विश्व) स्पंदनों से बना है। इन स्पंदनों को मंत्रों के जप से प्रभावित करके मनुष्य इच्छानुसार कुछ भी कर सकने में समर्थवान हो सकता है। मंत्रों में प्रमुखता से गायत्री मंत्र, प्रणव-जप, हंस-जप, आदि प्रमुखता से जानें जाते है।

10.3 हठयोग की विषय वस्तु

हठयोग का संबंध मुख्यतया शरीर और प्राण से है। हठयोग प्राणसाधना की विद्या है। इस प्राणसाधना का अंतिम लक्ष्य राजयोग की सिद्धि प्राप्त करना है। ऐसा स्वात्माराम भी हठयोग प्रदीपिका में मत रखते है।

''केवलं राजयोगाय हठविद्योपदिश्यते''

महर्षि पंतजलि ने अपने योगानुशासन के धरातल पर चित्त वृत्तियों का निरोध करने हेतु मन और प्राण के संगम को साधने का उपदेश किया है। यह संयम करना ही हठयोग है , ''ह'' प्राण का वाचक है,

तथा ''ठ'' अपान का वाचक है। प्राण और अपान का नाभिस्थान में आकर्षण कर उनका उध्र्वमुखीकरण ही प्राण और मन का संयम है, प्राण और मन के संयमित होने पर चित्तथवृति-निरोध रूप योग ही योगी की समाधि अवस्था में राजयोग की सिद्धि करता है। अतएव स्पष्ट है कि मन और प्राण के संयम से ही स्वरूपावस्था की उपलब्धि होती है।

हठयोग से शरीर समस्त व्याधियों से दूर होकर मन की निर्मल अवस्था को प्राप्त करता है। हद्रय की गति संतुलित होती है, चित्त की चंचलता का क्षय होता है और इस तरह साधक स्वस्थ होकर अपनी योगसाधना में तत्पर रहता है। साधनारत् योगी धीरे-धीरे इतना समर्थशाली हो जाता है कि वह जीवन्मुक्ति का आस्वादन करते हुए मृत्यु को टाल देता है , इस स्थिति को योग शब्दावली में ''कालवचन' कहा जाता है। किन्तु मृत्यु को टालना मृत्यु को रोकना नहीं है , योगी प्राकृतिक विधान का उल्लंघन कर मृत्यु को रोकने का प्रयास नहीं करता , वह इसे जीवन की असंगति मानता है। मृत्यु को टालना एक दूसरी अस्थायी प्रक्रिया है। हठयोग की साधना प्रक्रिया परम्परा से प्राप्त होती आयी है, आदिनाथ शंकर द्वारा माँ पार्वती को उपदिष्ट योगज्ञानामृत की परम्परा मत्स्येन्द्रनाथ , से क्रमशः गोरखनाथ आदि की श्रृंखला में प्रज्जवलित होती आ रही है। श्रुति स्मृति आगम तथा तन्त्रादि में वर्णित योगविद्या यही स्वसंवेद्य हठयोग (i)ति है। अपरोक्षानुभूति ग्रंथ में आचार्य शंकर ने कहा है कि हठयोग उनके लिए है जिन्हें अपने शरीर और मन को मलदोषों से मुक्त और निर्मल करने की आवश्यकता है। मनोनाश के लिए दो क्रम योग और ज्ञान है। योग से वृति निरोध और ज्ञान से वास्तविक स्वरूप का दर्शन होता है। किसी के लिए योग असाध्य है तो किसी के लिए ज्ञान असाध्य है। हठयोग इन दोनों की सहायता करता है। योग और ज्ञान को हठयोग और राजयोग का अर्थ समझना कोई त्रुटि नहीं है। योग का तात्पर्य है जीवात्मा और परमात्मा की एकता, यही योग विज्ञान है। यह योग विज्ञान श्रद्धा से प्राप्त होता है। श्री कृष्ण ने श्रद्धा की महिमा का गीता में प्रकाशन किया है।

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः

(गीता 4/39)

इस श्लोक में 'संयतेन्द्रियः' का तात्पर्य है हठयोग साधना में दक्ष और ''ज्ञान'' का तात्पर्य राजयोग की सिद्धि है।

हठयोग के प्रमुख ग्रंथ - हठयोग के प्रमुख ग्रंथों में निम्नलिखित ग्रंथ सम्मिलित है

1. मूलग्रंथ -

(i) शिवसंहिता (ii) गोरक्षसंहिता (iii) विवेकमार्तण्ड (iv) योगबीज (v) सिद्धसिद्धान्त (vi) महर्षि धेरण्ड की धेरण्डसंहिता

2. उपनिषद -

(i) अद्वयतारकोपनिषद् (ii) अमृतनादोपनिषद् (iii) अमृतबिन्दूपनिषद्

(iv) मुक्तिकोपनिषद्

(i) तेजोबिन्दूपनिषद् (vi) त्रिशिखिब्रह्मणेपनिषद् (vii) दर्शनोपनिषद्

(viii) ध्यानबिन्दूपनिषद् (ix) नादबिन्दूपनिषद् (x) पाशुपतब्रह्मोपनिषद्

(xi) मण्डलब्रह्मणोपनिषद् (xii) ब्रह्मविद्योपनिषद् (xiii) महावाक्योपनिषद्

(xiv) योगकुण्डल्योपनिषद् (xv) योगचूड़ाण्युपनिषद् (xvi) योगतत्वोपनिषद्

(xvii) योगशिखोपनिषद् (गअपपप)वाराहोपनिषद् (xix) शाण्डिल्योपनिषद्

(xx) हंसोपनिषद्

(xxi) योगराजोपनिषद्

3. परिवर्ती ग्रंथ-

(i) हठयोग प्रदीपिका (ii) योगचिन्तामणि (iii) हठरत्नावली (iv) हठसंकेतचन्द्रिका

(i) हठतत्वकौमुदी

हठयोग साधना क्रम के मूल विषय

1. आसन , 2. षट्कर्म, 3. युक्ताहार विहार, 4. प्राणायाम, 5. बन्ध, 6. मुद्रायें , 7. चक्रभेदन, 8. कुण्डलीजागरण तथा 9. नादानुसंधान

10.4 हठयोग का उद्देश्यए प्रमुख ऋषिए और हठयोग के अंग

हठयोग का परम लक्ष्य हठयोग प्रदीपिका (4/58) में स्पष्ट किया गया है कि संकल्पमात्र का त्याग ही मनोदृश्य का लय अथवा क्षय है , यही राजयोग, समाधि, उन्मनी, मनोन्मनी, अमरत्व, लय, शून्याशून्य, परमपद अमनस्क, अद्वैत निरालम्ब निर´जन, जीवन्मुक्ति, सहजाअवस्था (परमकैवल्य) है।

हठयोग के प्रमुख ऋषि

महर्षि , मार्कण्डेय, महर्षि भरद्वाज, महर्षि मरीचि, महर्षि जैमिनि, महर्षि पाराशर, महर्षि भृगु और महर्षि विश्वमित्र।

हठयोग के अंग

षट्कर्मासनमुद्राः प्रत्याहारश्च प्राणसंयामः।
ध्यानसमाधी सप्तैवाङंनि स्युर्हढस्य योगस्य।।

अर्थात् षट्कर्म , आसन, मुद्रा, प्रत्याहार, प्राणायाम, ध्यान और समाधि। इन सात अंगों से शरीर की शुद्धि सात प्रकार से होती है धेरडं संहिता के अनुसार - 1. शोधन , 2. दृढ़ता, 3. स्थैर्य, 4. धैर्य, 5. लाघव 6. प्रत्यक्ष, और 7. निर्लिप्त इत्यादि सात प्रकार से शरीर की शुद्धि होती है।

सारांशतः हठयोग स्थूल और सूक्ष्म प्राणिक स्पन्दनों के जागरण और सन्तुलन को निरूपित करता है। हठ शब्द वस्तुतः दो मंत्रों के योग से बना है जो इड़ा और पिंगला शक्तियों के द्योतक है। ह या हं पिंगला नाड़ी की ध्वनि है और ठं या क्षं हड़ा नाड़ी की ध्वनि है। यह आज्ञाचक्र का भी प्रतीक हैं। आज्ञाचक्र के कमल के दोनों दलों में ये ध्वनि स्पन्दन या तरंग निहित हैं। ह प्राणिक शक्ति को और ठ मानसिक शक्ति को प्रदर्शित करता है। ये दोनों एक ही शक्ति के दो रूप हैं जिससे संपूर्ण सृष्टि का सृजन एवं लय संचालित होता है हठयोग की प्रक्रिया से शारीरिक सहज विकास और मानसिक सूक्ष्म स्तरों की

शुद्धि होकर व्यक्ति जीवन के चतुर्थ आयाम या तुरीय अवस्था की ओर प्रासृत होता है। जो सिद्ध होने पर राजयोग में परिणित होने के स्तरों पर बढ़ता जाता है।

10.7 मंत्र योग का स्वरूपए मंत्रों के प्रकार एमन्त्रयोग का सिद्धांत

मंत्रयोग का स्वरूप

मंत्रयोग दो शब्दों से मिलकर बना है। मंत्र $योग योग का विस्तृत अर्थ हम खण्ड 1 , खण्ड 2 में अध्ययन कर चुके है। यहां मंत्र एवं मंत्रों द्वारा योग को प्राप्त करने पर ध्यान केन्द्रित करेगें।

मंत्र का सामान्य अर्थ हम अक्षरों या शब्दों की ध्वनियों के कम्पन से ग्रहण करते है। शाब्दिक अर्थ के अनुसार मंत्र 'वह शक्ति है जो मन को बंधन से मुक्त करती है। ' मन के अनेक व्युत्पात्तिक अर्थ प्राप्त है, उदाहरणार्थ

''मननात् त्रायते इति मन्त्रः''

1. मननात् त्र मन का बंधन
2. त्रायते त्र मुक्त
3. इति त्र द्वारा या इस प्रकार और
4. मन्त्रः त्र कम्पन की शक्ति

अर्थात वह शक्ति जो मन को बंधन से मुक्त करती है मंत्र शक्ति है। जड़ एवं चेतन से सेतु रूप मन जो अत्यंत चंचल एवं हठी है विषयों से जो कभी पूर्ण नहीं हो सकता है। इस मन का निग्रह करना अर्थात् परिष्कार करना। यह परिष्कार चित्त की वृत्तियों अर्थात मानस-व्यापार के निरोध से संभव है। योग उपनिषदों में योग के अनेकों प्रकार बतायें गये है उनमें एक प्रकार मंत्रयोग भी है योग के अनुसार अणु रूप सूक्ष्म मन या मानसिक प्रकृति के दो निम्नलिखित गुण हैं जो इसे बंधनग्रस्त करते है।

1. मल (राजसिक-तामसिक गुण) अशुद्धियों से है और ,
2. विक्षेप या फैलाव या विखराव।

इन दोनों गुणों से यह अर्थ निकलता है कि व्यक्त मन में अशुद्धियाँ रहती हैं तथा वह विखरा हुआ या फैलाव लिये (चंचलता) रहता है। मन की इस चंचलाता को मंत्रों के द्वारा एकत्र करना अर्थात् विखराव को रोकना एवं उसकी अशुद्धियों को (राजसिक-तामसिक गुणों को शांत करना) मंत्र योग का आशय है। हठयोग के विशेष संदर्भ में यहाँ अध्ययन का कारण हठयोग के अधिकांश अंग मंत्रयोग के अंगों के अन्र्तगत समाहित होते है। मंत्र कम्पन है, तरंग है। अन्तिम कम्पन या तंरग या अन्तिम मंत्र अनहद नाद है। यह एक अणु के अन्दर के कम्पायमान केन्द्र की ध्वनि है। यह वह अनहदनाद है जिसका निश्चय ही कोई अर्थ नहीं होता, क्योंकि यह ध्वनिरहित ध्वनि है। यह यौगिक पदार्थ विज्ञान का क्षेत्र है। जहाँ भी गति होगी वहाँ निश्चय ही कम्पन्न होगा और उससे सूक्ष्म ध्वनि उत्पन्न होगी अणु निरंतर गतिशील रहते हैं और इसलिए वे एक कम्पन-समूह की रचना करते हैं। उस कम्पन-समूह के प्रति हमारी चेतना की

सजगता किस स्तर पर ग्राह हूई होती है यह हम अपने सूक्ष्म शरीर के स्तर की गहराईयों में प्रवेश करके प्राप्त कर सकते है। मंत्रयोग की साधना के तीन पहलू है।

1. मन 2. सूक्ष्म शरीर 3.
ध्वनि कम्पन या तरंग

मंत्रों के प्रकार

मन को मननीय शक्ति प्रदान (एकाग्र) करके जप के द्वारा समस्त भयों का विनाश करके पूर्ण रक्षा करने वाले शब्दों को मंत्र कहा जाता है। मन्-त्र - ये दो शब्द इसमें हैं 'मन' शब्द से मन को एकाग्र करना 'त्र' शब्द से प्राण (रक्षा) करना जिनका धर्म है और जप से जो अभीष्ट फल प्रदान करें, वे मंत्र कहलाते है। मंत्रों के माध्यम से परम लक्ष्य को प्राप्त करना तंत्र आगमों की साधना विधि का नाम मंत्रयोग है। मंत्रों को निम्नलिखित प्रकारों में बाँटा गया है।

1. पिण्ड मंत्र - इन मंत्रों में केवल एक अक्षर होता है
2. कर्तरी मंत्र - इन मंत्रों में दो अक्षर होते है
3. बीज मंत्र - इन मंत्रों में तीन से नौ अक्षर तक होते है
4. मंत्र - इन मंत्रों में दस से लेकर बीस अक्षर तक होते है
5. माला मंत्र - इन मंत्रों में बीस अक्षर से अधिक संख्या वाले मंत्र होते है

मंत्र - अभ्यास की प्रक्रियायें:- मंत्रों के अभ्यास की प्रक्रिया को जप भी कहा जाता है। भारतीय संस्कृति में जप या जाप से सामान्य अर्थ मंत्रों को कई बार दोहराने से भी लिया जाता है। मंत्रों के जाप या दोहराने के चार प्रकार निम्नांकित है -

1. बैखरी।
2. उपांशु या मध्यमा।
3. मनसि या पश्यन्ति और।
4. परा या भावातीत।

मंत्रयोग का सिद्धांत

मंत्रयोग की साधना का सिद्धांत इस तथ्य पर आधारित है कि इस सृष्टि की अंतिम सत्तां परमात्मा है। परमात्मा से भाव -भाव से नाम-रूप, और उसका विकार तथा विलासमय यह जगत् है।
इस कारण जिस क्रम से यह सृष्टि हुई है। उसके विपरीत मार्ग से ही लय होगा। अर्थात् परमात्मा से भाव और भाव से नाम-रूप द्वारा यह सृष्टि हुई है, जिससे समस्त जीव संसार बंधन में आ गये हैं तो यदि इस बंधन से मुक्त होना है तो साधना की एक प्रणाली मंत्रयोग है इसमें प्रथम नाम-रूप का आश्रय लेकर नाम-रूप से भाव मे और भाव से भावग्राही परमात्मा में चित्तमवृत्ति का लय हो जाने से न चित्त रहेगा न वृत्तियाँ उठेंगी न बंधन का कारण जगत प्रंपच ही होगा। इस प्रकार मंत्रयोगी ऋषियों ने नाम और रूप के अवलम्बन से साधना की विधियों का निर्देश किया जो मंत्रयोग के रूप में जानी जाती है।

मंत्रयोग के प्रमुख ऋषि:- मंत्रयोग के प्रमुख ऋषियों मे निम्नलिखित प्रमुख ऋषि है -

1. देवर्षि नारद 4. महर्षि वाल्मीकि

2. देवर्षि पुलस्त्य 5. महर्षि भृगु
3. देवर्षि गर्ग 6. महर्षि वृहस्पति

मंत्रयोग का साधक

मंत्रयोग साधना के प्रमुख अंग:- मंत्रयोग साधना के सोलह प्रमुख अंग है जो निम्नलिखित हैं -

1. भक्ति 2. शुद्धि 3. आसन 4. पचांगसेवन
5. आचार 6. धारणा 7. दिव्य देश सेवन 8. प्राण क्रिया
9. मुद्रा 10. तर्पण 11. हवन 12. बलि
13. याग 14. जप 15 ध्यान और 16. समाधि

उपरोक्त अंगों का समावेश हठयोग के अंगों के सादृश्य ही है अन्तर केवल समाधि प्राप्त करने की स्थिति को लेकर ही है।

10.8 सारांश

प्रस्तुत इकाई में हठ योग कि सैद्धांतिक पृष्भूमि हठयोग के प्रमुख ऋषि हठयोग के अंग तथा मंत्रयोग के स्वरूप ए मंत्रयोग का सिद्धांत मंत्र योग कि साधना के प्रमुख अंग एवं मंत्रों के प्रकार का वर्णन किया गया है

10.9 बोधात्मक प्रश्न

1. हठयोग की विषय वस्तु का वर्णन कीजिए
2. हठयोग का उद्देश्य का वर्णन कीजिए
3. हठयोग के अंग के बारे में बताइए
4. मंत्र योग का स्वरूप का वर्णन कीजिए
5. मंत्रों के प्रकार के बारे में बताइए
6. मन्त्रयोग का सिद्धांत का वर्णन कीजिए

10.10 संदर्भ ग्रंथ सूचि

- योग और अनुसंधान स्वामी कुवलयानन्द, कैवल्यधाम लोनावाला पूना 410403
- साधना स्वामी शिवान्द , दिव्य जीवन संघ , पत्रालय शिवानन्द नगर 249192 , जिला टिहरी गढ़वाल हिमालय (उ.प्र.)
- राजयोग स्वामी विवेकानंद, अद्धैत आश्रम, 5-देही एन्टाली रोड, कलकत्ता - 700014
- लाईट ऑनयोग महर्षि अरविंद, अरविंद आश्रम पाण्डिचेरी

- अष्टांग योग - चरणदास अनुवादक , श्री ओ. पी. तिवारी , प्रकाशक कैवल्यधाम-एस. एम. वाई. एम. समिति , कैवल्यधाम लोनावाला पूना
- योग परिचय - डॉ पीताम्बर झा , प्रका. गुप्ता प्रकाशन डी- 35 साउथ एकसटैंशन भाग I नई दिल्ली - 49
- योग का परिचयात्मक - डॉ ओमनारायण तिवारी स्वरूपप्रकाशक पं. सुन्दरलाल शर्मा (मुक्त) विश्वविद्यालय छत्तीसगढ़, बिलासपुर (छ.ग.)
- Secrets of Hatha Vidya - Dr. Vijayendra pratap SKY FoundationPhiladelphia Pennsylvania U.S.A.
- योगासन एवं हठयोग विज्ञान - डॉ. ओम नारायण तिवारी, विलासपुर (छत्तीसगढ़)
- पतनजल योग दर्शन - डॉ. नित्यानन्द शर्मा, कोटा (राजस्थान - 324005)

इकाई – 11

लययोग एवं तारकयोग

इकाई की रूपरेखा

11.1 उद्देश्य

11.2 प्रस्तावना

11.3 लय योग का स्वरूपए प्रकार एवं लय योग के प्रमुख आचार्य

11.4 लय योग का सिद्धांत एवं कुण्डलिनी का सहस्त्रार चक्र में लय

11.5 तारकयोग का स्वरुप एवं साधना

11.6 पातंजल योग में तारक योग का स्वरूप

11.7 सारांश

11.8 बोधात्मक प्रश्न

11.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में हम जान सकेंगे

- लय योग का स्वरूप एवं प्रकार
- लय योग का सिद्धांत एवं कुण्डलिनी का सहस्त्रार चक्र में लय
- तारकयोग का स्वरुप एवं साधना पातंजल योग में तारक योग

11.2 प्रस्तावना

लययोग अपना पृथक साधना परख अस्तित्व रखता है। जीव शरीर रूपी पिण्ड और समष्टिरूपी ब्रह्मण्ड ये दोनों समष्टि - व्याष्टि संबंध से एक ही हैं। अतः दोनों को एक समझकर अपने भीतर जो प्रकृति शक्ति है उसे अपने शरीरस्थ पुरूषभाव में लय करने की जो शैली है और उसके सहायक जितनी साधना प्रक्रियाये है, उनको लययोग कहते है।

तारक योग योग के विषय गूढ़ तथा व्यापक हैं। इस योग में अन्य योगों की भाँति क्रिया-प्रक्रियायें नहीं है। इसमें योग का साधक एक ऐसा दीपवत् होता है, जिसमें दीपक के समान सभी सामथ्र्य विद्यमान होता है केवल लौ लगाने की देर रहती है। जैसे एक दीपक दूसरे को प्रकाशित कर अपने समान प्रकाशवान् करते चले जाता है तथा उसका कुछ भी प्रकाश कम नहीं होता है। उसी प्रकार तारक योग का मुख्य साधन ‘प्रेम’ है। इसे पराब्रह्यविद्या भी कहा जाता है। इसके उत्पन्न होने से साधक निर्भय पद पर आसीन हो जाता है तथा तत्क्षण ब्रम्हीभावना में युक्त हो जाता है।

11.3 लय योग का स्वरूप एवं प्रकार

मन के विभिन्न स्तरों का चेतना में विलय होने को लययोग कहते है। जैसे कुण्डलिनी योग में प्राणशक्ति का विलय कर चेतना शक्ति को जाग्रत किया जाता है। लययोग का स्वरूप क्रियायोग और कुण्डलिनीयोग के सादृश्य हे। जहाँ क्रियायोग और कुण्डलिनी योग की साधना में शक्ति केन्द्रों (चक्रों) और नाड़ियों की जागृति प्रधानतः होती है जिनका अधिकत्तलर संबंध आत्मि शरीर के अनुभवों से संबंधित रहता है। जबकि लययोग की प्रक्रिया प्रधानतः ध्यानात्मक स्वरूप की है तथा चेतना की विभिन्न अभिव्यक्तियों से संबंधित होती हैं तथा शक्ति की अभिव्यक्ति के साथ उन्हें समायोजित करती है। तंत्रों के क्रियायोग एवं कुण्डलिनीयोग के समान ही उपनिषदों की साधना प्रणाली लययोग है। लययोग की प्रणाली में शक्ति के जागरण के साथ-साथ साधक को चेतना के क्षेत्र में हो रहे परिवर्तनों (चिन्तन-प्रक्रिया, विश्लेषण प्रक्रिया एवं सजगता से चेतना में प्रवाह) की साधना को अपनाया जाता है। सिद्धान्तः शक्ति के रूपन्तरण द्वारा (जागरण द्वारा) चेतना के स्तरों का सम्यक प्रकार से समन्वयन (उन्नयन) करना ही लययोग का लक्ष्य है।

लययोग के प्रकार

लययोग के भगवान शिव ने सवा करोड़ प्रकार बतलायें है। इन प्रकारों में स्वात्माराम ने (हठयोग प्रदीपिका 4/66) में नदानुसंधान को एक प्रमुख प्रकार बतलाया है। कुण्डलिनीयोग भी एक प्रमुख प्रकार है।

लययोग के प्रमुख अंग:- लययोग की साधना प्रक्रिया हेतु लययोग के नौ प्रमुख अंग निम्नलिखित बतलाये गये है

1. यम 2. नियम 3. स्थूल क्रिया 4. सूक्ष्म क्रिया

5. प्रत्याहार 6. धारणा 7. ध्यान 8. लयक्रिया

और 9. समाधि

लययोग के प्रमुख आचार्य:- लययोग की साधना प्रणाली को उपदेशित करने वाले प्रमुख आचार्य निम्नांकित है -

1. अगिंरा
2. याज्ञवल्कय
3. कपिल
4. पंतजलि
5. वशिष्ठ
6. कश्यप और
7. वेदव्यास

11.4 लय योग का सिद्धांत एवं कुण्डलिनी का सहस्त्रार चक्र में लय

लययोग का सिद्धांत

प्रकृति और पुरूष के श्रंगार से उत्पन्न हुए ब्रह्माण्ड और पिण्ड दोनों एक ही है। समष्टि और व्यष्टि भाव से ब्रह्माण्ड और पिण्ड में केवल प्रतिकृति आकार भेद भर है। अतः पिण्ड के ज्ञान से ब्रह्माण्ड का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता हे। साधना प्रक्रिया में श्रीगुरू उपदिष्ट शक्ति सहित पिण्ड का ज्ञान लाभ अर्जन करके प्रकृति को पुरूष में लय करने की प्रणाली लययोग कहलाती है, इस अर्थ में इसे ज्ञान योग (सांख्य) या राजयोग के स्वरूप में भी देखा जा सकता है। प्रकृति (शक्ति) और पुरूष (शिव) का योगांगो द्वारा कुलकुण्डलिनी नाम की महाशक्ति जो आधारपद्म में (मूलाधार चक्र) में प्रसुप्त अवस्था में रहती है। इस प्रसुप्त अवस्था को ही बर्हिमुखी सृष्टि क्रिया कहते है। इस प्रसुप्त शक्ति को जाग्रत कर (अन्तः मुखी कर) उध्र्वगति से सहस्त्रार चक्र में स्थिर पुरूष (व्यष्टि चेतना का समष्टि चेतना में समाहन) से मिलाप या संयोग कर देना लययोग है।

कुण्डलिनी का सहस्त्रार चक्र में लय

लययोग के अंगों का स्वरूप:- लययोग के उपरोक्त वर्णित अंगों का संक्षिप्त क्रियात्मक स्वरूप निम्नांकित हैं

1.यम - बहिरिन्द्रियों को वश में (नियंत्रण) के साधन को यम कहते है

2.नियम - अन्तः इन्द्रियों को वश में (नियंत्रण) के साधन को नियम कहते है

3.स्थूल क्रिया - शरीर की विशेषस्थितियों (आसन) और मुद्राओं की साधना को स्थूल क्रिया कहते है।

4.सूक्ष्म क्रिया - आठ प्राणायामों और स्वरोदय की साधना को सूक्ष्म क्रिया कहते है। स्वरोदय से सिद्धियाँ भी प्राप्त होती है

5.प्रत्याहार - मन को इन्द्रियों के आलम्बन से मुक्त कर स्थिर करने को प्रत्याहार कहते है।

6.धारणा - प्रकृति के सूक्ष्म से सूक्ष्म बिन्दूरूप की कल्पना करने को धारणा कहते है।

7.ध्यान - प्रत्याहार और धारणा का अभ्यास सध जाने पर योगी बिन्दू नाद के श्रवण में खो जाता है जिसे ध्यान कहते है।

8.लयक्रिया - मूलाधार से लेकर सहस्त्रार चक्र तक सात शक्ति केन्द्र है जिन्हें लाघता हुआ साधक जब सहस्त्रार चक्र में विश्रांति पाता है उस स्थिति को लयक्रिया कहते है।

9.समाधि - लयक्रिया से विश्रांत चित्तच का स्वरूप में स्थित हो जाना समाधि है। इस प्रक्रिया में बिन्दु के नाद को श्रवण करने पर बिन्दू (प्रकृति) शुद्ध रूप में शेष रह जाती है इसे ही प्रकृति का लय या सम्यक् अधिष्ठित समाधि होना कहते है। इस अवस्था में प्रकृति का स्पंदन मूल स्पंदन हो जाता है। इसे ''महालय'' कहते है।

उपरोक्त लययोग के अंगों का स्वरूप को निम्नतालिका (क्रमांक 02) द्वारा दर्शाया गया है।

चेतना के लोक या स्तर :-

क्र.	चेतना का स्तर	लोक
1.	मूलाधार	भू
2.	स्वाधिठान	भुवः
3.	मणिपुर	स्वः
4.	अनाहत	महः
5.	विशुद्ध	जनः
6.	आज्ञा	तपः
7.	सहस्त्रार	सत्य

11.5 तारकयोग का स्वरुप एवं साधना

तारक योग का स्वरूप

मण्डल ब्राह्मणोपनिषद् में तारकयोग एवं अमनस्कयोग नाम से दो प्रकार के योगों का उल्लेख प्राप्त होता है।

पूर्वं तु तारकं विद्यादमनस्कंतदुत्तकरमिति

(मण्डल ब्रा. 1.3)

तारक योग के भेद:- मण्डल ब्रह्माण्ड उपनिषद् के अनुसार तारक योग के दो प्रमुख भेद निम्नलिखित है।

1. मूर्तितारक योग तथा
2. अमूर्तितारक योग।

तारक योग का सिद्धांत:- तारक योग के उपरोक्त दो प्रकार के भेदों में इन्द्रियान्त को मूर्तितारक योग कहते है। तथा भ्रूयुगातीत को अमूर्तितारक योग कहते है। इन दोनों योगों का अभ्यास मन सहित करना चाहिए। भ्रूयुग के मध्य ध्यान करने से तेज का आविर्भाव होता है। इस प्रकार यह पूर्वतारक योग कहलाता है। उत्तयर तारक योग को अमनस्क योग कहते है। तालु के मूल तथा उर्ध्वभाग में महाज्योति विद्यमान है। इसके दर्शन से अणिमदि की सिद्धि होती है।

तालूमूलोध्र्वभागे महाज्योतिर्विद्यते

तदर्शनादणिमादि सिद्धिः।

(मण्डल ब्रा. 1.3)

इन दोनों प्रकार के योगों में ध्यान को प्रमुखता दी गई है। इस कारण भ्रूमध्य आदि स्थानों में ध्यान करने का विधान इन योगों की साधना प्रक्रिया का प्रमुख अंग है। इस उपनिषद् में इन योगों की एक विशेषता यह है कि जहाँ पांतजल योग में विभिन्न स्थानों में ध्यान करने का निर्देश है तो इसमें कर्म भी करते रहने का उपदेश है। सूर्योदय से सूर्यास्त पर्यन्त कर्म करते रहना चाहिए किन्तु यदि नासाग्र में दृष्टि जमाकर प्रणव का जप करते हुए उसकी ध्वनि में ही मन को लीन कर लिया जावे तो ऐसे साधक पर कर्म

के संस्कार नहीं पड़ते है।

''तस्य न कर्मलेपः

रवेरूदयास्तमयमोः किल कर्म कर्त्त व्यम्।

तारक योग में एक प्रकार से निष्काम कर्म करते रहने का उपदेश किया गया है। गीता में इसी निष्काम कर्म का प्रतिपादन इतने बल से किया गया है कि इसे निष्काम कर्मयोग ही कहा जाने लगा।

मण्डल ब्राम्हणोपनिषद् के अनुसार उक्त दोनों प्रकार के योगों को करने का उद्देश्य मन को सर्वथा विषय रहित बना देना है क्योंकि निर्विषय मन ही मोक्ष प्राप्त कराता है तथा विषयों से युक्त मन बंधन का कारण बनता है।

सविषयं मनो बन्धाय निर्विषयं मुक्तये भवति

(मण्डल ब्रा. 4.1)

उपनिषदों में तारक योग का स्वरूप

उपनिषदों में तारक योग का वर्णन निम्नानुसार किया गया है -

1. गर्भजन्म जरामरण संसार महभ्दयात् संतारयति तस्मात् तारकम्।

(अद्वयतारकोपनिषद्)

अर्थात् इस नश्वर जगत् से बिना श्रम तारने वाला होने के कारण ''तारतम'' ज्ञान भी इसी तारक योग का नाम है। तारक योग शक्तिसम्पन्न योगी को गभर्, जन्म, जरा-मरण आदि सांसारिक भय नहीं रहते संसार जन्य कर्म क्लेश , विपाक, जन्म मरण आदि यावद् दुःख परम्परा से तारने के कारण ही ''तारक'' नाम अन्वर्थक है। इस तारतम्य से रहस्मय योग को प्राप्त कर मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है , उसे कुछ कर्त्तजव्य शेष नहीं रहता, वह जीवन्मुक्त दशा में विचरने लगता है तब फिर साधने या कर्म करने को शेष क्या रहेगा। इसे ''मद्धक्तियुक्त्तोव भुवनं पुनाति' उसकी कौन कहे, वह तो विश्व को पावन करने लगा अब उसमें और ब्रम्ह में अन्तर शेष नहीं रह जाता है। ''ब्रम्हविद् ब्रह्मैव भवति'' अर्थात् वह स्वयं ही ब्रह्म तुल्य हो जाता है।

2. तस्मादन्तर्दृष्टया तारक एवानुसंधेयः

(अद्वयतारकोपनिषद्)

अर्थात विद्वानों को आत्मदृष्टि द्वारा तारक योग का अनुसंधान करना चाहिये। ऐसा श्रुति कहती है इसे ही स्मृति भी अनुमोदित करती है। स्मृति के अनुसार -

गुरूविश्वेश्वरः साक्षात् तारकं ब्रह्म निश्चितम्

इस तारक ज्ञान के प्रदान करने वाले गुरू को साक्षात् ईश्वर स्वरूप समझना चाहिए और तारक ज्ञान योग निश्चय ही ब्रह्मस्वरूप है।

तारक योग की साधना

तारक योग एक मंत्र विशेष द्वारा प्राप्त ज्ञान को कहते है। जिसमें ब्रह्मसाक्षात्कार का भेद बताया गया है। इसे परा ब्रह्मविद्या भी कहते हैं। इसका मुख्य साधन प्रेम है। जब तक सच्चा प्रेम उत्पन्न नहीं होता, वहाँ तक तारक योग सिद्ध नहीं होता। इसका बल प्रेम बिना प्रकट नहीं होता। अन्य क्रियाओं द्वारा सहायता तो मिलती है किन्तु इसका प्राण तो 'प्रेम' ही है। प्रेमपुट लगते ही तारक ज्ञान अपूर्व योग को प्राप्त हो जाता है। प्रेम में दबाव न सही किन्तु आकर्षण है। भंयकरता नहीं किन्तु तल्लीनता है , अभिमान नहीं किन्तु अपनापन है , नैराशय नहीं अपितु विश्वास है। अतएव 'तारक योग' प्राप्त करने के लिए प्रधान साधनभूत सच्चा प्रेम ही माना गया है।

प्रेम द्वारा इसे प्राप्त करते विलम्ब नहीं। इस योग में एक अपूर्व विशेषता यह है कि इसका सम्यक् ज्ञान होते ही मनुष्य पद्मपलाशवत् निर्लिप्त होकर निर्भय विचरने लग जाता है और सच्चिदानन्द के ज्ञान का अनुभवी होकर किसी प्रकार के विक्षेप को प्राप्त नहीं होता है। भावातीत हो जाना इसकी प्रमुख विशेषता है।

11.6 पातंजल योग में तारक योग

पातंजल योग सूत्र में तारक योग

महर्षि पतंजलि ने भी तारक योग की महत्ता को प्रतिपादित किया है। महर्षि पतंजलि के अनुसार क्षण (वर्तमान) और उसके क्रमों में संयम करने से विवेकज्ञान उत्पन्न होता है। जिस प्रकार द्रव्य का सबसे छोटा विभाग जो भागरहित है, वह परमाणु है, वैसे ही समय की सबसे छोटी विभाग रहित गति क्षण है। उन क्षणों के प्रवाह का विच्छेद न होना अर्थात् बने रहना क्रम कहलाता है। एक वर्तमान क्षण ही सत्य है। उसी एक वर्तमान क्षण का परिणाम यह सारा ब्रह्माण्ड है। ऐसा जो एक वर्तमान क्षण है और उसका जो यह कल्पित क्रम है, उसका संयम करने से विवेक ज्ञान उत्पन्न होता है।

तारकं सर्वविषयं सर्वथाविषयमक्रमं चेति विवेकजं ज्ञानम्।

(योगसूत्र 3/54)

इस प्रकार विवेकज ज्ञान के चार लक्षण है -

1. तारकम् - बिना ब्राह्य निमित्त के अपनी प्रभा से स्वयं उत्पन्न होने वाला संसार सागर से तारने वाला है।
2. सर्वविषयम् -महदादिपर्यन्त सब तत्वों का विषय करने वाला।
3. सर्वथाविषयम् - सब तत्वों को सब अवस्था में स्थूल , सूक्ष्म आदि भेद से उनके तीनों परिणामों सहित सब प्रकार से विषय करने वाला।
4. अक्रमम् - क्रम की अपेक्षा से रहित होकर सबको एक क्षण में सब प्रकार से विषय करने वाला।

ये चारों पूर्ण विवेक ज्ञान हैं। इस ज्ञान की तुलना में ऋतंभरा प्रज्ञा वाली मधुमती भूमि इसका एक अंश है। यह ज्ञान की अन्तिम गति है, क्योंकि इसमें कोई वस्तु इसका अविषय नहीं रहती है।

विवेक द्वारा किया गया 'तारक योग ज्ञान' बिना क्रम सब विषयों को प्रकाशित करता है। अर्थात् जैसे अन्य विद्या या योग क्रमशः धीरे-धीरे प्राप्त होते हैं , जबकि तारक योग तो काल से परे , अतीत-

अनागत समस्त प्रपंच का प्रकाशक होते हुए ब्रह्मसाक्षात्कार कराने वाला है। इस कारण इसे तारक योग कहते है।

11.7 सारांश

प्रस्तुत इकाई में लय योग का स्वरूप, प्रकार लय योग के प्रमुख आचार्य, लय योग का सिद्धांत, कुण्डलिनी का सहस्त्राव चक्र में लय, तारक योग का स्वरूप एवं तारक योग कि साधना तथा पातंजल योग में तारक योग के स्वरूप का संक्षेप में वर्णन किया गया है

11.8 बोधात्मक प्रश्न

1. लय योग का स्वरूप का वर्णन कीजिए
2. लय योग के प्रकार एवं लय योग के प्रमुख आचार्यों के नाम लिखिये
3. लय योग का सिद्धांत के बारे में बताइये
4. कुण्डलिनी का सहस्त्रार चक्र में लय को समझाइये
5. तारकयोग का स्वरुप एवं साधना का वर्णन कीजिए
6. पातंजल योग में तारक योग का स्वरूप लिखिये

11.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- योग और अनुसंधान स्वामी कुवलयानन्द, कैवल्यधाम लोनावाला पूना 410403
- साधना स्वामी शिवान्द , दिव्य जीवन संघ , पत्रालय शिवानन्द नगर 249192 , जिला टिहरी गढ़वाल हिमालय (उ.प्र.)
- राजयोग स्वामी विवेकानंद, अद्धैत आश्रम, 5-देही एन्टाली रोड, कलकत्ता - 700014
- लाईट ऑनयोग महर्षि अरविंद, अरविंद आश्रम पाण्डिचेरी
- अष्टांग योग - चरणदास अनुवादक , श्री ओ. पी. तिवारी , प्रकाशक कैवल्यधाम-एस. एम. वाई. एम. समिति , कैवल्यधाम लोनावाला पूना
- योग परिचय - डॉ पीताम्बर झा , प्रका. गुप्ता प्रकाशन डी- 35 साउथ एकसटैंशन भाग I नई दिल्ली - 49
- योग का परिचयात्मक - डॉ ओमनारायण तिवारी स्वरूपप्रकाशक पं. सुन्दरलाल शर्मा (मुक्त) विश्वविद्यालय छत्तीसगढ़, बिलासपुर (छ.ग.)
- Secrets of Hatha Vidya - Dr. Vijayendra pratap SKY FoundationPhiladelphia Pennsylvania U.S.A.
- योगासन एवं हठयोग विज्ञान - डॉ. ओम नारायण तिवारी, विलासपुर (छत्तीसगढ़)
- पतनजल योग दर्शन - डॉ. नित्यानन्द शर्मा, कोटा (राजस्थान - 324005)

इकाई -12

स्वामी चरणदास : अष्टांगयोग ग्रंथ परिचय

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.2 प्रस्तावना

12.3 स्वामी चरणदास का परिचय

12.4 स्वामी चरणदास एवं अष्टांगयोग ग्रन्थ का परिचय

12.5 स्वामी चरणदास के अनुसार अष्टांग योग में संयम का स्वरूप

12.6 स्वामी चरणदास के अनुसार यम नियम का स्वरूप

12.7 स्वामी चरणदास के अनुसार प्रत्याहार धारणा ध्यान समाधि का स्वरूप

12.8 स्वामी चरणदास के अनुसार प्राणनाडियां, प्रणायाम एवं चक्रभेदन का स्वरूप

12.9 स्वामी चरणदास के अनुसार त्रिबंध एवं अश्ट सिद्धियों का स्वरूप

12.10 सारांश

12.11 बोधात्मक प्रश्न

12.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

12.0 **उद्देश्य**

प्रस्तुत इकाई में हम जान सकेंगे

- स्वामी चरणदास का परिचय
- स्वामी चरणदास एवं अष्टांगयोग ग्रन्थ का परिचय
- स्वामी चरणदास के अनुसार अष्टांग योग में संयम का स्वरूप
- स्वामी चरणदास के अनुसार यम नियम का स्वरूप
- स्वामी चरणदास के अनुसार प्रत्याहार धारणाए ध्यानए समाधि का स्वरूप
- स्वामी चरणदास के अनुसार प्राणनाडियां, प्रणायाम एवं चक्रभेदन का स्वरूप
- स्वामी चरणदास के अनुसार त्रिबंध एवं अष्ट सिद्धियों का स्वरूप

12.2 **प्रस्तावना**

इस काल में भारत अनेकों सामाजिक कुरीतियों का शिकार था। ऊँच नीच जाति पांति का विकृत स्वरूप था। जनता मनसबदारों से त्रस्त थी। समाज में समाजिक मूल्यों का पतन हो चुका था। तांत्रिक बौद्धों के प्रभाव अभी जीवित बने हुऐ थे। छोटे-छोटे राजा आपस में लड़कर पाश्चात्य राजसत्ता के समक्ष अपना

सब कुछ गवाँ रहे थे। अषतोष असुरक्षा सांस्कृतिक धार्मिक शून्यता फैलती जा रही थी। ऐसे समय में चरणदास जी कृष्ण भक्ति की सशक्त डोर लिए जीवन के लक्ष्य साधन हेतु अष्टांग योग की साधना का प्रचार करने लगे। 712 वर्ष की अवस्था में सन् 1785 ई0 में चरणदास जी समाधिस्थ हुए। एक ही स्थान पर जीवन पर्यन्त इनकी योगसाधना चलती रही।

12.3 **स्वामी चरणदास का परिचय**

स्वामी चरण दास जी योगाचार्यो की श्रृंखला में सबसे अर्वाचीन योगी के रूप में जाने जाते है। इनका जन्म् सन् 1706 ई0 में डेहरा ग्रांम राजस्थान प्रदेश के जिला अलवर (मेवात क्षेत्र) में हुआ था। बचपन में इनकी माता का देहान्त हो गया था। इनके पिता ने भी इस समय गृह त्याग दिया था। इस कारण चरणदास जी को उनके नाना जो कि दिल्ली में निवास करते थे अपने साथ दिल्ली ले कर आ गये। इस समय चरणदास जी मात्र 7 वर्ष की आयु के थे। इस काल में भारत अनेकों सामाजिक कुरीतियों का शिकार था। ऊँच नीच जाति पांति का विकृत स्वरूप था। जनता मनसबदारों से त्रस्त थी। समाज में समाजिक मूल्यों का पतन हो चुका था। तांत्रिक बौद्धों के प्रभाव अभी जीवित बने हुऐ थे। छोटे-छोटे राजा आपस में लड़कर पाश्चात्य राजसत्ता के समक्ष अपना सब कुछ गवाँ रहे थे। अषतोष असुरक्षा सांस्कृतिक धार्मिक शून्यता फैलती जा रही थी। ऐसे समय में चरणदास जी कृष्ण भक्ति की सशक्त डोर लिए जीवन के लक्ष्य साधन हेतु अष्टांग योग की साधना का प्रचार करने लगे। 79 वर्ष की अवस्था में सन् 1785 ई0 में चरणदास जी समाधिस्थ हुए। एक ही स्थान पर जीवन पर्यन्त इनकी योगसाधना चलती रही। आज भी जामा मस्जिद के पास इनका आखाड़ा इनके बतायें अनुशासनों के अनुसार सक्रिय है। हजारों योग अनुयायी आज भी इनके बताये मार्ग पर साधना शील है।

12.4 **स्वामी चरणदास एवं अष्टांगयोग ग्रन्थ का परिचय**

स्वामी चरण दास का परिचय

स्वामी चरण दास जी योगाचार्यो की श्रृंखला में सबसे अर्वाचीन योगी के रूप में जाने जाते है। इनका जन्म् सन् 1706 ई0 में डेहरा ग्रांम राजस्थान प्रदेश के जिला अलवर (मेवात क्षेत्र) में हुआ था। बचपन में इनकी माता का देहान्त हो गया था। इनके पिता ने भी इस समय गृह त्याग दिया था। इस कारण चरणदास जी को उनके नाना जो कि दिल्ली में निवास करते थे अपने साथ दिल्ली ले कर आ गये। इस समय चरणदास जी मात्र 7 वर्ष की आयु के थे। इस काल में भारत अनेकों सामाजिक कुरीतियों का शिकार था। ऊँच नीच जाति पांति का विकृत स्वरूप था। जनता मनसबदारों से त्रस्त थी। समाज में समाजिक मूल्यों का पतन हो चुका था। तांत्रिक बौद्धों के प्रभाव अभी जीवित बने हुऐ थे। छोटे-छोटे राजा आपस में लड़कर पाश्चात्य राजसत्ता के समक्ष अपना सब कुछ गवाँ रहे थे। अषतोष असुरक्षा सांस्कृतिक धार्मिक शून्यता फैलती जा रही थी। ऐसे समय में चरणदास जी कृष्ण भक्ति की सशक्त डोर लिए जीवन के लक्ष्य साधन हेतु अष्टांग योग की साधना का प्रचार करने लगे। 79 वर्ष की अवस्था में सन् 1785 ई0 में चरणदास जी समाधिस्थ हुए। एक ही स्थान पर जीवन पर्यन्त इनकी योगसाधना चलती रही। आज भी

जामा मस्जिद के पास इनका आखाड़ा इनके बतायें अनुशासनों के अनुसार सक्रिय है। हजारों योग अनुयायी आज भी इनके बताये मार्ग पर साधना शील है।

अष्टांग योग ग्रंथ चरणदास जी द्वारा उनके योग शास्त्र में लिखे गये ग्रंथों में दो ग्रंथों का एक साथ सम्मिलित रूप में प्रकाशन है। अष्टांग योग ग्रंथ मूलतः साधुक्कड़ी भाषा में लिखा गया है जिसमें कई भाषाओं के शब्दों का सम्मिश्रण होता है। कृष्णमार्गी होने के कारण चरणदासजी का योग से संबंध नैसर्गिक ही रहा है। यौगिक उपनिषदों एवं अन्य यौगिक ग्रंथों जैसे हठप्रदीपिका इत्यादि के मूल उद्देश्य के अनुरूप ही जाति-पांति , धर्म सम्प्रदाय की संकीर्णताओं को दूर करते हुऐ योगाचार्य चरणदास जी ने अष्टांयोग नामक पद्यानुवाद ग्रंथ की रचना की जन समान्य को इस ग्रंथ की व्यवहारिकता , सहजता एवं साधना की उच्चता सटीक एवं बेजोड़ है। संवाद शैली में लिखा गया यह ग्रंथ अपनी मौलिक विशेषताओं से युक्त है। जिसमें संयम को नया अर्थ सर्वप्रथम अष्टांग योग ग्रंथ में ही दिया गया है। संयम की साधना साधक को शरीरिक एवं मानसिक दोनों ही स्तरों पर योग के अन्य अंगों की साधना में बढ़ने के लिये तैयार करता है। हठयोग साधना के सभी अंगों का सुन्दर समन्वय चरणदास जी ने अपने दृष्टिकोण से किया है जिसमें उन्होंने उपनिषदों , वशिष्ठ संहिता वृहदयोगियज्ञवल्कयस्मृति पंतजलि योगसूत्र आदि अनेक ग्रंथों के विषयों का यथास्थान उपयोग किया है। जैसे यम नियम के दस अंग उन्होंने वसिष्ठ संहिता के अनुसार ही प्रस्तुत कीये है।

अष्टांग योग में चरणदास जी ने योग के आठ अंगों यम , नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि की सरल एवं स्पष्ट व्याख्या तो की है। साथ ही साथ तांत्रिक साधना एवं हठयौगिक साधना के सम्मिश्रण नाड़ी, वायु (प्राण), चक्र, कुण्डलिनी, मुद्रा बंध, एवं अष्टसिद्धियों आदि पर भी अपने दृष्टिकोण से पर्याप्त विवेचन प्रस्तुत कर दिया है। 4 बहिरंग एवं 4 अन्तरंग साधना के क्रम को इन्होंने भी अन्यपूर्ववर्ती योगियों के अनुरूप सिद्धांतः माना है। प्राणायाम में मात्रा (समय) और आवृति का विस्तारपूर्वक विवेचन भी इनकी अपनी एक और मौलिक विशिष्टता है। इस प्रकार हम कह सकते है कि चरणदास जी योग विज्ञान की विविध विधाओं के व्यवहारिक ज्ञाता एवं कुशल उपदेशक रहे है। इस कारण इस ग्रंथ की लोकप्रियता योग शिक्षण के सभी उपक्रमों में आवश्यक बन गई है।

अष्टांग योग ग्रंथ शिष्य की जिज्ञासाओं का समाधान गुरूवचनों द्वारा की जाने वाली संवाद शैली मे प्रस्तुत किया गया है। शिष्य का प्रश्न शुरू होता है कि मैं योग साधना में पूर्णतः (निपट) आज्ञानी हूँ कृपया मुझे योग के आठ अंगों के बारे में समझाइये तथा उनको साधने की (अभ्यास करने की) विधि बतलाइये। यह भी स्पष्ट कीजिये की इसे अष्टांग योग क्यों ? कहा जाता है। गुरू वंदना के बाद शिष्य के इस प्रश्न के उत्तर में चरणदास जी गुरूवचन के रूप में अष्टांग योग तथा उनके अलग-अलग अंगों की साधना विधि को बतलाने का आश्वासन इस आधार पर देते है कि पहले साधक को इन्हें समझने के लिए संयम का पालन करना होता है जिससे योग के अभ्यास में बाधा नहीं होती है।

स्वामी चरणदास के अनुसार यम नियम का स्वरूप

- **अष्टांग योग में यम**

- अष्टांग योग में चरणदास जी ने यमों की संख्या 10 बतलाई है। ये 10 यम निम्नलिखित है। जिनका प्रभाव शारीरिक एवं मानसिक दोनों प्रकार का होता है।

(1) अहिंसाः- मन वचन और कर्म (क्रिया) द्वारा हिंसा न करना ही अहिंसा कहलाता हे। यहां तक की वाणी के द्वारा भी हिंसा नहीं करना चाहिये (कठोर वाणी बोलकर)।

(2) सत्यः- मन वचन और कर्म से कभी भी असत्य न सोचना न बोलना और न ही करना सत्य कहलाता है। इस कारण बोलने से पहले बोले जाने वाले विषय का अच्छी प्रकार विचार कर बोलना चाहिये।

(3) अस्तेयः- मन वचन और कर्म से किसी की कोई भी वस्तु की चोरी नहीं करना अस्तेय है। इससे धीरे- धीरे त्याग की भावना उत्पन्न होती है।

(4) ब्रह्मचर्यः- किसी भी प्रकार से वीर्य (शक्ति) का क्षरण नहीं होने देना ब्रह्मचर्य है। इस हेतु अपनी इन्द्रियों पर संयम (नियंत्रण) दृढ़ता से करते हुऐ लंगोट धारण कर यातियों की जीवन चर्या का पालन करना चाहिये। सदैव मैथुन से बचना चाहिये। चरणदास जी ने मैथून के आठ प्रकार बतलाये है।

(i) परस्त्री या परपुरूष का स्मरण करते रहना।

(ii) उनके विषय में सुनना या सोचने की इच्छा करना।

(iii) श्रृंगारिक साहित्य पढ़ना।

(iv) एक दूसरे को देखकर हसँना।

(v) सतत् टकटकी लगाकर देखते रहना।

(vi) अकेले में बात करने की इच्छा करना।

(vii) मिलने के लिए उत्सुक रहना।

(viii) शारीरिक स्पर्श (छूने) का प्रयास करना।

उपरोक्त आठ प्रकार के मैथुन से मन , वचन एवं कर्म (क्रिया) से सदैव दूर रहने का प्रयास ब्रह्मचर्य साधना है।

(5) क्षमाः- क्षमा साधक के मन में उत्पन्न सभी प्रकार की ईर्ष्यार (जलन) को दूर करते तथा सभी प्रकार के पापों से मुक्त कर सुख प्रदान करने में समर्थ होता है। किसी दुष्ट की दुष्टता, गाली, खींझ या शरीर पर किसी प्रकार आक्रमण गंदी वस्तु डालना या कोई अन्य दुख या कष्ट देने पर भी उसके प्रति किसी प्रकार का बैंर भाव न रखकर उल्टे उसकों सिर झुकार नमन करना। इस प्रकार की विनम्रता का मन वचन एवं कर्म से व्यवहार करना क्षमा कहा जाता है।

(6) धीरजः- योग साधना में साधक को धीरज रूपी यम का लम्बे समय तक पालन करना पड़ता है क्योंकि योग के अतिंम लक्ष्य की प्राप्ती तक योग साधना सतत चलती रहे उसमें कोई विध्न या बाधायें न आने पावे इस हेतु मन , वचन और कर्म (क्रिया) से धैर्यवान बनकर सतत् साधना करना होता है।

(7) दयाः- मन वचन एवं कर्म से सभी प्राणियों के उपर दया का भाव रखना जिससे उनके जीवन की रक्षा हो सके। प्राणिमात्र के हित के प्रति सोचना तथा किसी से भी वैर भाव न रखना दया है।

(8) आर्जवः- आर्जव शब्द की व्युतपत्ति ऋतु शब्द से बनी है। ऋजुता अर्थात कोमलता बनाये रखना ही आर्जव है। जिस प्रकार कोमल धरती पर बीज शीघ्र बढ़ने और फूलने-फलने लगते है उसी प्रकार कोमल हद्रय योग साधक को शीघ्र ही साधना में सफलता प्रदान करता है।

(9) मिताहारः- चरणदास जी ने मिताहार का बड़ा व्यावहारिक विवरण प्रस्तुत किया है। इनके अनुसार खद्य अखाद्य का ज्ञान रखना चाहिये। कम मात्रा में चिकनाई युक्त सात्विक भोजन करना तथा अपने भोजन की मात्रा का 1/4 छोड़कर पेट का तीन भाग ही भोजन एवं पानी से भरना मिताहार है। वानप्रस्थ या सन्यासी को मात्र सोलह ग्रास (कौर) गृहस्थ को बत्तीस ग्रास तथा ब्रहा्रचारी को जितने से शक्ति बनी रहे उतना ही भोजन लेना चाहिये। इससे नीद कम तथा श्वास की मात्रा (आवृति) कम होती है।

(10) शौचः- चरणदास जी के अनुसार शौच के दो प्रकार है-

(i) ब्राह्य शौच (ii) आभ्यान्तर शौच।

(i) ब्राह्य शौचः- सदैव दातून आदि से मूंह साफ कर स्नान करना एवं पवित्रता बनाये रखना ब्राह्य शौच कहलाता है। इसे बीमारी की अवस्था में भी जितना संभव हो अवश्य बनाये रखना चाहिये।

(ii) आभ्यान्तर शौचः- शौच उसे कहते है जिसमें हृद्य से राग द्वेष तथा मन के सभी खोटे कर्मो को दूर किया जाता है।

उपरोक्त दस यमों का वर्णन चरणदासजी ने अपने दृष्टिकोण से किया है। इनका आचरण में प्रयुक्त होना योग साधना में सफलता प्राप्त करवाता है।

नियम

चरणदास जी ने नियम भी 10 प्रकार के बतलाये है। जिससे साधक को योग साधना में सफलता मिलती है। ये 10 नियम निम्नांकित है-

(1) तपः-सभी इन्द्रियों को उनके विषयों के स्वाद से सर्वथा दूर रखना तथा सोते-जागते , खाते-पीते, सतत् इन्द्रियों को वश में रखना, इस प्रकार प्रथम तन को वश में करना, फिर मन को वश में करना तप है।

(2) सन्तोषः- हानि होने पर शोक नहीं तथा लाभ होने पर हर्ष नहीं प्रकट करना , इस प्रकार की समझ यदि हृदय में आ जाय और जो भी होता है वह प्रारब्ध के अनुसार होता है , यह जानकर किसी भी प्रकार का संकल्प-विकल्प न रहे, तो वह सन्तोष कहा जाता है।

(3) आस्तिकताः- शास्त्रीय बातों पर विश्वास कर एक मात्र ब्रहा्र को सत्य समझना और संसार को असत्य समझना, इस प्रकार का आत्मनिश्चय आस्तिकता है।

(4) दानः- पात्र-कुपात्र का विचार कर जरूरतमंद व्यक्ति की सहायता करना दान है। पहला और उत्तम दान ऐसे उपदेश का दान है , जिससे जीव इस भवसागर (संसार) से पार होकर

परमगति को प्राप्त कर सके। अन्न-पानी आदि का दान द्वितीय कोटि का दान है तथा दूसरे के दुःख में सहभागी होना भी दान ही है।

(5) ईश्वरपूजनः- निष्काम होकर दास्यभाव से तन-मन से ईश्वर के प्रति पूर्णतः समर्पित हो जाना ईश्वरपूजन है। भावपूर्वक पान, फूल और सुगन्धित द्रव्यों से पूजा करना भी ईश्वरपूजन है।

(6) सिद्धान्तश्रवणः- शास्त्रीय-विषयों को पढ़-सुनकर उस पर गहन विचार करना और तब उसमें से सार-विचार को ग्रहण करना सिद्धांत श्रवण है। गृहीत विचार को सदगुरू से भी विचार कर तब हृदय में धारण करना, ज्ञानी के साथ जो क्रियावान् भी हों, ऐसे योगी से ही मिलना तथा क्रियारहित योगी की बात पर ध्यान नहीं देना चाहिए।

(7) लाजः- सभी प्रकार के बुरे कर्मो का त्याग करना और शरीर एवं मन को उधर नहीं जाने देना, हृदय और आखों में लज्जा का भाव रखना तथा साधु और गुरू से भी लज्जा करना लाज है। परिवार-मित्र एवं अन्य सभी से लाज रखना तथा सबसे बड़ी लाज ईश्वर से रखना चाहिए। अर्थात कभी अकेले में भी बुरे कर्मो को सोचते समय यह ख्याल रखना कि ईश्वर सदा साक्षी है। इस प्रकार के लाज रूपी भवन से सभी काम बनते हैं।

(8) दृढ़मतिः- शुभकर्म पर एक बार आरूढ़ हो जाने पर किसी के भी बहकाने से उससे नहीं हटना चाहिए, सांसारिक सुखों या स्वर्गादि सुखों को भी तुच्छ समझकर अपनी साधना में ही दृढ़ रहना तथा कोई स्तुति करे या गाली दे, दोनो में ही स्थिर रहना दृढ़मति है।

(9) जापः- सामान्यतया जप के तीन प्रकार हैं- बैखरी, उपांशु और मानस। आवाज के साथ किए जप को बैखरी, आवाज रहित किन्तु होठ हिलाकर जप करने को उपांशु तथा मन में ही जप करने को मौन जप कहा जाता है। वैखरी से हजार गुना उपांशु तथा उपांशु से हजार गुना मौन-जप श्रेष्ट है। चरणदास ने इसी मौन जप को प्रधानता देकर प्राणायाम की अवधि में गुरूप्रदत्त-मंत्र का मौन जप को प्रधानता देकर प्रणायाम की अवधि में गुरूप्रदत्त-मंत्र का मौन जाप करना उत्तम माना है। इसके साथ ही ईश्वर या गुरू की स्तुति को भी इन्होने जप ही माना है।

(10) होमः- इसके दो प्रकार हैं- बाह्य और अभ्यन्तर। प्रांगण में कुण्ड बनाकर वैदिक रीति से साकल्य के द्वारा हवन करना बाह्य होम है। तथा ज्ञानरूपी अग्नि में इन्द्रियरूपी साकल्य का सतत् होम करते रहना अर्थात् ज्ञान के द्वारा इन्द्रियजन्य आनन्द को तुच्छ समझकर उसे सर्वथा छोड़ देना आभ्यन्तर होम है।

इस प्रकार चरणदास के इन दोनों यम-नियमों को आचरण में लाने पर ही योग सम्भव हो सकता है, ऐसा उनका कहना है। अन्यथा इसके बिना मनुष्य सांसारिक भोगों के प्रति बहने लगता है। चरणदास ने यहां भी पंतजलि के पाँच नियमों में से चार लिया है और वसिष्ठ संहिता के अनुसार और छः नियमों को अपनाकर दस नियमों का वर्णन किया है।

12.5 स्वामी चरणदास के अनुसार प्रत्याहार धारणाए ध्यानए समाधि का स्वरूप

चरणदास जी ने अपने ग्रंथ अष्टांग योग में प्रत्याहार के स्वरूप का वर्णन अष्टपदी क्रमांक 128 एवं 129 में किया है। इनके अनुसार अष्टांग योग का पाँचवा अंग प्रत्याहार है। चरणदास के अनुसार योग-साधक को यह अवश्य ही होना चाहिए। प्रत्याहार की परिभाषा में वे कहते हैं कि विषयों की ओर जो इन्द्रियां सतत् जाती रहती हैं, उनको उधर न जाने देकर अपने अन्दर ही लौटाकर आत्मा की ओर लगाना या स्थिर रखने का प्रयास करना प्रत्याहार है। जिस प्रकार कछुआ अपने अंगों को समेट लेता है या निर्धन व्यक्ति जाड़े के मौसम में अपने अंगों को सिकोड़कर सोता है या छोटा बच्चा सर्प , आग या घातक अस्त्र को छूने दौड़ता है। और उसकी माँ उसे उधर न जाने देकर लौटाकर अपनी गोद में ले लेती है, उसी प्रकार इन्द्रियों को इन घातक विषय-स्वादों से विमुख कर अपनी आन्तरिकता की ओर लौटाने का प्रयत्न करना चाहिए।

आँख रूप को, नाक गन्ध को, जीभ षडरसों को, कान शब्द को और त्वचा स्पर्श को भोगता है। इन सबसे मन में विकार की वृद्धि होती है। ये भोग ज्यों-ज्यों बढ़ते हैं त्यों-त्यों ये इन्द्रियां और बलवान होकर मन को विक्षिप्त करती रहती हैं। अतः इनको इन भोगों से सर्वथा विरत करने तथा इन्द्रियों को लौटाकर स्थिर रखने के लिए प्राणायाम का पर्याप्त अभ्यास करना चाहिए। प्राणायाम के अभ्यास से प्राण वश में होने पर मन अपने आप वश में आने लगता है। इन्द्रियां स्थिर हो जाती हैं। सभी विषय समाप्त हो जाते हैं। अतः सार वस्तु है प्राणायाम के अभ्यास से प्रत्याहार की स्थिति अपने आप बनने लगती है।

अष्टांग योग में धारणा का स्वरूप

चरणदास जी ने अपने ग्रंथ अष्टांग योग में धारणा के स्वरूप का वर्णन अष्टपदी क्रमांक 130 से लेकर 135 तक में किया है। इनके अनुसार धारणा चित की शांत अवस्था है।

''देशबन्धश्चित्तस्य धारणा'' पतंजलि की इस परिभाषा के अनुसार चित्त का देशविशेष में बँध जाना धारणा है। अर्थात् प्राणायाम के पर्याप्त अभ्यास के बाद श्वास-प्रश्वास के मन्द व शान्त होने पर, इन्द्रियों के विषयों से लौटने पर, मन अपने आप स्थिर होकर शरीरान्तर्गत किसी स्थान विशेष में स्थिर हो जाता है। यही चित का देशबन्ध है। और इसी को धारणा कहा जाता है। चरणदास ने पतंजलि की इस धारणा को लक्ष्य बनाकर इसकों प्राप्त करने के लिए अपने ढंग से इसे सरल बनाने का प्रयास किया है। उनके अनुसार ऐसी स्थिति एकाएक या अल्प अभ्यास से आने वाली नहीं है। अतः उन्होने शरीरनिर्माण के लिए उत्तरदायी पांच महाभूतों में से एक-एक पर अपने मन की धारणा करने को कहा है। इन पांचों महाभूतों का शरीर में भिन्न-भिन्न स्थान , रंग, देवता आदि बताते हुए वे कहते हैं कि इन स्थानों पर इन देवताओं के स्मरण के साथ चित को स्थिर करने का अभ्यास करना चाहिए-

क्र.	महाभूत	नाम	स्थान	आकार	देवता	रंग	अक्षर
1	आकाश	शंखनीधारणा	मस्तक	निराकार	ब्रह्म	भूरा	ह

2	वायु	भ्रामनीधारणा	भ्रूमध्य	षट्कोण	ईश्वर	मेघरंग	म
3	तेज	दहनीधारणा	तालु	त्रिकोण	रूद्र	लाल	र
4	जल	द्रावनीधारणा	कण्ठ	अर्धचन्द्र	हृषीकेश	श्वेत	ब
5	पृथ्वी	थम्भनीधारणा	हृदय	चैकोर	विधि	पीला	ल

उपर्युक्त विवरण देकर चरणदास ने कहा है कि प्रथम हृदयस्थल में पृथ्वीधारणा करके चित का कुछ देर वहीं स्थिर रखने का अभ्यास करना चाहिए। यह अभ्यास बढ़ाते-बढ़ाते दो घण्टे तक चित को स्थिर रखने का अभ्यास करना चाहिए। यह अभ्यास बढ़ते-बढ़ते दो घण्टे तक चित्त को स्थिर रखने का अभ्यास जब हो जाता है तब चित वहीं स्थिर हो जाता है। और पृथ्वी-महाभूत वश में हो जाता है। इसके बाद कण्ठस्थान में जलधारणा , तालु-स्थान में अग्निधारणा , भ्रूमध्य स्थान में वायुधारणा तथा अन्त में मस्तक के सर्वोच्च स्थान में आकाशधारणा में क्रमशः दो-दो घण्टे तक चित्त को स्थिर करने पर चित निरालम्ब होकर स्थिर हो जाने का अभ्यस्त हो जाता है। और अन्त में पतंजलि की धारणा की स्थिति अपने आप आ जाती है। इस प्रकार चरणदास ने पतंजलि की धारणा को लक्ष्य में रखते हुए गोरक्षनाथ के अनुसार अपनी धारणा की व्याख्या की है।

अष्टांग योग में ध्यान का स्वरूप

चरणदास जी ने अपनी कृति अष्टांग योग में ध्यान का स्वरूप का वर्णन सातवें अंग के रूप में दोहा क्रमांक 136 से लेकर 144 तक में किया है। इन्होंने ही सर्वप्रथम ध्यान को भी चार प्रकारों में बटाँ ये प्रकार निमन्लिखित हैः-

(1) पदस्थध्यान।

(2) पिण्डस्थध्यान।

(3) रूपस्थध्यान।

(4) रूपातीतध्यान।

(1) पदस्थध्यानः- सुखासन में बैठकर , कुम्भक लगाकर , प्रणव का जप करते हुए प्रथम अपने हृदयकमल में प्रभु के चरणकमलों का ध्यान करें , फिर उनके सम्पूर्ण शरीर की अलौकिक छवि का ध्यान कर अन्त में पुनः दोनों चरणकमलों में ही स्थायी रूप से ध्यानमग्न हो जाएँ। इससे चित्त स्थिर हो जाता है एवं आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक दुःख नष्ट हो जाते हैं।

(2) पिण्डस्थध्यानः- यह शरीर बह्म का ही निवास स्थान है , यह समझकर अपने शरीर के प्रथम मूलाधारचक्र में ध्यान लगाये। कुछ दिनों तक इस अभ्यास के बाद फिर दूसरे-तीसरे चक्र में क्रमशः ध्यान लगाने का अभ्यास करते हुए अन्त में आज्ञाचक्र में ध्यान लगाकर चित्त को स्थिर करें। इस प्रकार से एक-एक चक्र पर ध्यान के अभ्यास से सम्पूर्ण शरीर सर्वथा शुद्ध हो जाता है।

भ्रूमध्य स्थान में ध्यान लगाने से वहां एक विशिष्ट ज्योति का दर्शन होता है , जिससे जन्मान्तरों का स्मरण होने लगता है। इस अभ्यास के बाद सहस्त्रारचक में सद्गुरू का ध्यान करना चाहिए। यह वह स्थान है जहाँ अमृत का समुद्र लहराता रहता है और उसमें हंस (परमात्मा) स्नान करता रहता है। करोड़ों सूर्य का प्रकाश वहां रहता है तथा उससे भी ऊपर शून्य ही शून्य है , जहाँ योगी स्थायी रूप से ध्यानमग्न हो जाता है।

(3) रूपस्थ ध्यानः- त्रिकुटी (भ्रूमध्य स्थान) में अन्तरदृष्टि लगाकर निश्चल हो जाने के बाद प्रथम आग की चिरगारी जैसी छोटे-छोटे ज्योति-कणों का भान होता है। कुछ दिनों के इस अभ्यास के बाद दीप की ज्योतिशिखा जैसी , फिर दीपशिखा की माला (श्रेणी) जैसी , फिर तारों की माला जैसी, फिर चन्द्र, सूर्य आदि के प्रकाश जैसा अनुभव ध्यान में होने लगता है। फलस्वरूप सम्पूर्ण आन्तरिक संसार ही झिलमिल -झिलमिल प्रकाश जैसा दिखाई देने लगता है, जिससे शरीर और मन अत्यन्त प्रफुल्लित हो आनन्दमग्न हो जाता है। अगाध जल में डुबकी लगाकर आंख खोलकर देखने से जैसे सभी ओर जल ही जल और प्रकाश ही प्रकाश दिखाई देता है , उसी प्रकार इस ध्यान में सभी ओर से आनन्द का ही अनुभव होता रहता है।

(4) रूपातीतध्यानः- इस ध्यान को शून्यध्यान भी कहा जाता है। इसमें उक्त रूप आदि भी समाप्त होकर वहीं त्रिकुटी स्थान के शून्य में चित पूर्णतः स्थिर हो जाता है , जिससे सभी दुःखों का सर्वथा अन्त होकर हृदय में आपार आनन्द का स्त्रोत फूट पड़ता है। जिस प्रकार निरभ्र आकाश में कुछ देर के लिए कोई पक्षी उड़कर आ जाता है और पुनः दृष्टि से ओझल हो जाता है , उसी प्रकार प्रारम्भ में कुछ दिनों तक इस ध्यान में बीच में कुछ विचार क्षणमात्र के लिये आ जाता है। अभ्यास बढ़ने पर यह स्थिति भी समाप्त हो स्थायी रूप से उस परमशून्य का ध्यान होता रहता है। अतः सभी ध्यानों में इस ध्यान को उत्तम और उत्कृष्ट ध्यान माना गया है।

अष्टांग योग में समाधि का स्वरूप

चरणदास जी ने अपने ग्रंथ अष्टांग योग के आठवें अंग के रूप में समाधि का वर्णन दोहा एवं अष्टपदी क्रमांक 145 से 153 तक में किया है। यहां भी उनकी मौलिक विशेषता समाधि के प्रकारों में विभाजन है।

इनके अनुसार समाधि भी तीन प्रकार की होती है। ये प्रकार निम्नलिखित है-

(1) भक्तिसमाधि।

(2) योगसमाधि।

(3) ज्ञानसमाधि।

(1) भक्तिसमाधिः- सभी इन्द्रियों के कार्यो को रोककर मात्र हरि के चरणों में मन को लगाकर ध्यान लगाना चाहिए। इस ध्यान में जब तक बुद्धि काम करती रहे, तब तक वह ध्यान ही है, किन्तु यही अभ्यास बढ़ते-बढ़ते जब ध्याता-ध्यान और ध्येय मिलकर एक हो जाएं , बुद्धि, स्मृति आदि सभी समाप्त हो जाएँ, तब वह भक्तिसमाधि होती है।

(2) योगसमाधिः- आसन-प्राणायाम के अभ्यास से जब प्राण सुषुम्नानाड़ी के द्वारा ऊपर की ओर प्रवाहित होकर, एक-एक कर छः चक्रों को भेदकर सातवें सहस्त्रारचक में पहुंचकर वहीं लीन हो जाता है। तब न स्मृति रहती है , न नाद बचता है और न कोई क्रियाएँ ही बची रहती हैं , अपना आपा भी विस्मृत हो जाता है। यही यह योगसमाधि है।

(3) ज्ञानसमाधिः- विभिन्न तात्विक चिन्तन के आधार पर जब तक आत्मा-परमात्मा आदि की चिन्तनधाराएँ चलती रहती हैं, और परमात्मा या ब्रह्म का ध्यान करने के लिए प्रक्रियाएं चलती रहती हैं, तब तक ध्यान की ही स्थिति होती है। चिन्तन व अभ्यास बढ़ने पर जब मैं, तू, यह, वह आदि का ज्ञान समाप्त हो जाता है और अपना आपा खोकर सहज स्वाभाव की स्थिति प्राप्त हो जाती है, तब वह ज्ञानसमाधि कही जाती है।

12.8 स्वामी चरणदास के अनुसार प्राणनाडियां, प्रणायाम एवं चक्रभेदन का स्वरूप

अष्टांगयोग में प्राण, नाड़ियाँ, प्राणायाम एवं चक्रभेदन

अष्टांगयोग में प्राण

हमारा शरीर पंचमहाभूतों पृथ्वी , जल, वायु, अग्नि और आकाश से निर्मित है। इनमें वायु महाभूत का स्थान प्रमुख है। इस महाभूत का मूलस्थान मानवीय शरीर में हद्रय को माना गया है। मानवीय शरीर में वायु महाभूत के मुख्य 84 स्थान माने जाते है। इनमें भी चरणदास जी 10 वायुओं को प्रमुख मानते है। इनके भी मुख्य एवं उप भेद से दो प्रकार कीये गये है। चरणदास जी के अनुसार निम्नलिखित तालिका क्रमांक 17 में प्राणों के नाम स्थान एवं कार्य को तालिका बद्ध किया गया है-

क्र.	नाम	स्थान	कर्म
1.	प्राण	हृदय	श्वास-प्रश्वास
2.	अपान	गुदा	मल विसर्जन
3.	समान	नाभि	पोषण
4.	व्यान	सम्पूर्ण शरीर	चेष्टा
5.	उदान	कष्ट	उन्नयन
	उप प्राण		
6.	नाग	आस्थिचर्म	वमन
7.	देवदत्त	-	तन्द्रा
8.	धनंजय	-	मुटापा
9.	कूर्म	-	निमीनल

10.   कृकल - छींकना

उपरोक्त तालिका क्रमांक- 17 बद्ध प्राणों को निम्नांकित चित्र क्रमांक-57 द्वारा दर्शाया गया है।

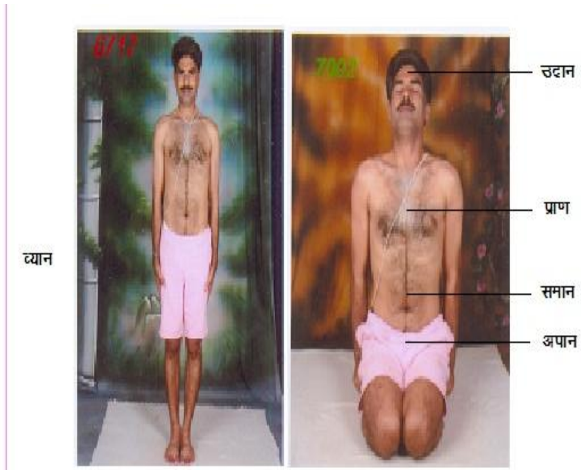

चित्र क्र. 57

उपरोक्त शरीरान्तर्गत प्राण शरीर में विभिन्न रूपों में कार्य करता है जैसे गंगाजी एक ही रहती है पर धाटों के विभिन्न नाम रख दिये जाते है इसी प्रकार शरीर के प्रत्येक स्थान पर प्राणवायु ही है पर इसके कार्यानुरूप पृथक-पृथक नाम कर दिये गये है। ये सभी पांच प्राण एवं पांच उप प्राण शरीर में उचित स्थान पर उचित प्रकार से कार्यशील रहते हैं तब तक मनुष्य शरीर पूर्ण रूप से स्वस्थ रहता है। जब इसमें किसी प्रकार की गड़बड़ी पैदा होती है तब शरीर अस्वस्थ हो जाता है। अतः प्राण की उचित कार्यविधि के लिए योग के अभ्यासों को अपनाकर शरीरिक , मानसिक, एवं भावनात्मक स्वास्थ्य को नियंत्रण में रखा जा सकता है।

विशेष नोटः- बाहा्याकाश का वायु महाभूत (महाप्राण) जब शरीरान्त्तगत अन्तराकाश से सीमित हो जाता है तो उसे प्राण या अन्तः प्राण कहते है। महाप्राण से अन्तः प्राण का सम्बन्ध बनाये रखने की शक्ति या स्पंदन ही श्वास प्रश्वास के रूप में समान्य वायु (जिसे हम स्पर्श द्वारा महसूस करते है) को माध्यम के रूप में प्रयुक्त करके होता है। यह सामान्य वायु प्राण नहीं है। प्राण अव्यक्त है , उसका मात्र अनुमान किया जा सकता है। उसे हम पकड़ नहीं सकतें। किन्तु उसके प्रतिनिधि के रूप में व्यक्त श्वास-प्रश्वास के नियमन या नियंत्रण द्वारा हम उसका नियमन या नियंत्रण कर सकते है।

चरणदास जी कहते है इन दस प्राणों में भी केवल प्राण एवं अपान वायु ही दीर्घ या महत्वपूर्ण प्राण है। प्राण प्राणों में परिवर्तित होकर भी प्राण ही रहते है।

अष्टांगयोग में चक्रभेदन

चरणदास जी ने प्राण (वायु) का विवेचन करने के उपरांत प्राणयाम के विवेचन के पूर्व चक्रों का वर्णन किया है। चक्रों को उन्होंने कमल पुष्प की तरह बतलाया है। प्रत्येक चक्र पर सूक्ष्म प्राणिक संवेदना का अलग -अलग स्वरूप होता है क्रमशः अधार चक्र से सहस्त्रार चक्र तक का भेदन लक्ष्य होता है। निम्नलिखित सारणी क्र. 18 में इन चक्रों के नाम, स्थान, रंग, देवता, दल और असुरों को समाहित किया गया है। जो अध्ययन की दृष्टि से सुविधा जनक होगा।

क्र.	**नाम**	**स्थान**	**रंग**	**देवता**	**दल**	**अक्षर**
1	अधार चक्र	गुदा	लाल	गणेश	चार (4)	व -श-ष-स
2	स्वाधिष्ठान	लिंगमूल	पीला	ब्रह्म-सावित्री-इन्द्र	छः (6)	बा,-भा,-मा,-या,-र-ल
3	मणिपूर	नाभि	नीला	विष्णु-लक्ष्मी	दस (10)	डा,-ढ-णा-ता-था-दा-धा ना-पा-फा
4	अनाहत	हृद्रय	श्वेत	शिव-शक्ति (पार्वती)	बारह(12)	का, खा,-गा-घा-ड. जा-झा-अ-ट-ठ - चा-छा-
5	विशुद्ध	कण्ठ	श्वेत	जीवात्मा	सोलह(16)	अ-आ-इ-ई-उ-ऊ-ऋ-ऋ-लृ-लृ-ए-ऐ-ओ-औ ै-अं-अः
6	आज्ञा	भ्रूमध्य	श्वेत	ज्योति	दो (2)	ह-क्ष
7	सहस्त्रार	मस्तक	श्वेत	श्रीगुरू (सदाशिव)		हजार 20 ग 50 त्र 1000 दल

उपरोक्त सारणी से चक्रों का अध्ययन आपने किया ये सभी चक्र सुषुम्ना नामक नाड़ी के मध्य में होते है। मूलाधार से लेकर सहस्त्रार तक ये सातों चक्र उल्टे कमल की तरह (अधोमुख) स्थित होते है। जब मूलाधार चक्र जहां अपान वायु का निवास है उस अपान वायु को नियंत्रण में लेकर उसके प्रवाह को ऊपर की तरफ करने पर अधोमुख (नीचे की तरफ पंखुड़ियां कीये) कमल खिलने लगते है तथा आपानवायु ऊपर की ओर बढ़ने लगती है। यह वायु जब स्वाधिष्ठान , और मणिपूर को भेद कर अनाहत चक्र पर जाती है तो वहां नाद उत्पन्न होता है। इस नाद को नियंत्रित करना नादानुसंधान कहलाता है।

नादानुसंधान: स्वामीचरणदास जी ने नादानुसंधान के दस प्रकार बतलाये है। जब अपान वायु मूलाधार, स्वाधिष्ठान, और मणिपुर का भेदन कर अनाहत चक्र को सीधा (भेदन) करती है तो यहां पर अपान वायु का कम्पन (नाद) की विभिन्न दस ध्वनियाँ साधक को सुनाई देती है।

(1) प्रथम नाद - इस नाद में छोटी चिड़िया की चीं या चिन जैसी ध्वनि।

(2) द्वितीय नाद - झींगुर का चिन-चिन ध्वानि।

(3) तृतीय नाद - छोटी घण्टी की ध्वानि।

(4) चतुर्थ नाद - शंख की ध्वानि।

(5) पंचम नाद - बीन बजने की ध्वनि।

(6) छटवा नाद - तबले की ताल की ध्वनि।

(7) सतवाँ नाद - मुरली (बांसुरी) की मधुर ध्वनि।

(8) आठवाँ नाद - पखावज की ध्वनि।

(9) नवमाँ नाद - छोटी शहनाई की गूंज की ध्वानि।

(10) दसवाँ नाद - इस अवस्था में सिंहगर्जना के समान ध्वानि या नाद होना।

सिंह गर्जना का गम्भीर नाद (अनहदनाद) होत होते साधक अपना जीवभाव विलोपित कर ब्रहा्रभाव को प्राप्त कर लेता है। इसका आशय भी संसार से पूर्णतः विरक्त सा रहने लगता है। सांसारिक कर्मो के प्रभाव उस पर नहीं पड़ते वह जीवन्मुक्त जैसी अवस्था में आ जाता है। यही नादानुसंधान का फल कहलाता है। जिससे जगत के रहस्य समझ में आने लगते है। इन्द्रियों को वश में किया जा सकता है।अपने पराये की भावना समाप्त हो जाती है। केवल आनन्द शेष रहता है।

नादानुसंधान की प्रक्रिया:- चरणदास जी ने नानानुसंधान की विधि का वर्णन करते हुऐ बतलाया है कि सर्वप्रथम नादानुसंधान हेतु मूलाधार चक्र में अपानवायु को तीन बार घुमाया जाता है। इस हेतु सर्वप्रथम गणेशक्रिया (वस्ति क्रिया) द्वारा मलद्वार (गुदाद्वार) का शोधन किया जाता है। इसके उपरांत अपानवायु को बाँधने हेतु मूलबंध लगाया जाता है। तथा मूलबंध लगाकर मूलाधार में थोड़ा रूककर अर्थात उसे भेदकर दूसरे चक्र स्वाधिष्ठान चक्र पर आते है। यहां अपानवायु को घुमाते है। तीन चक्र (लपेटे) लगाकर उसे मणिपूर पर ले जाते है यहाँ पर प्राण वायु में अपान को लाकर मिला देते है। अपान के प्राण पर मिलते ही अनहदनाद फूटने लगता है। इसे धीरे-धीरे साधकर सिंहनाद तक की अवस्था लाते है। इसके बाद प्राण और अपान को संयुक्त कर ऊपर विशुद्ध चक्र (कंठकूप) पर ले जाना चाहिये वहां पर जालंधर बंध लगाकर इस वायु को नियंत्रित करने हेतु उस पर संयम करते है।

अष्टांगयोग में नाड़ियाँ

स्वामी चरणदास जी ने प्राणायाम के पूर्व नाड़ियों का वर्णन भी कर दिया है। नाड़ी का अर्थ चरणदास जी के अनुसार नस या नव्र्स नहीं है बल्कि संवेदना-प्रवाहों के रूप में उन्होनें नाड़ी शब्द का अर्थ लिया है। नाड़ियों की मानव शरीर में संख्या बहत्तर हजार आठ सौ चैंसठ (72,864) है। तथा इन

सभी नाड़ियों का उद्गम स्थल नाभि स्थान से है। यही से ये सभी नाड़ियाँ शरीर में फैली रहती हैं। इन सभी नाड़ियों में दस (10) नाड़ियों को प्रमुखता दी गई है। इनमें भी तीन नाड़ियाँ इड़ा , पिंगला, और सुषुम्ना प्रमुख है। इनमें भी सर्वाधिक प्रमुख नाड़ी जिसमें सातों चक्र विद्यमान होते है सुषुम्ना है।

इड़ा में यमुना का प्रवाह जहाँ ब्रहा् जी का निवास है। सुषुम्ना में विष्णु जी निवास जिसमें सरस्वती का प्रवाह है। तथा पिंगला जहां शिव का स्थान है तथा जिसमें गंगा का प्रवाह है जो शरीर के दाहिने अंग में प्रवाहमान है। ये तीनों नाड़ियां मिलकर आज्ञाचक्र पर त्रिवेणी के रूप में मिलती है।

इन सभी प्रमुख दस नाड़ियों के नाम एवं उनके कार्यास्थान को तालिका क्रमांक 19 द्वारा दर्शाया गया है-

क्र.	नाम	कार्यास्थान
1.	इड़ा	नाभि से बायीं नासिका
2.	पिंगला	नाभि से दायीं नासिका
3.	सुषुम्ना	नाभि से मध्य
4.	शंखिनी	नाभि से गुदा
5.	कृकंल	नाभि से लिंग
6.	पूषा	नाभि से दायां कान
7.	जसनी (यशस्विनी)	नाभि से बायां कान
8.	गान्धारी	नाभि से बाई आँख
9.	हस्तिनी	नाभि से दाई आँख
10.	लम्बिका	नाभि से जीभ

इड़ा में यमुना का प्रवाह जहाँ ब्रहा् जी का निवास है। सुषुम्ना में विष्णु जी निवास जिसमें सरस्वती का प्रवाह है। तथा पिंगला जहां शिव का स्थान है तथा जिसमें गंगा का प्रवाह है जो शरीर के दाहिने अंग में प्रवाहमान है। ये तीनों नाड़ियाँ मिलकर आज्ञाचक्र पर त्रिवेणी के रूप में मिलती है।

अष्टांग योग में प्राणायाम

अष्टांग योग में शुकदेव जी योगाचार्य चरणदास जी से कहते है कि प्राणायाम करने से मन शान्त होता है। अपने स्थान पर स्थिर होता है। सामान्यतः हमारा या तो बायां स्वर चलता है या दाहिना और कभी-कभी हम देखते है कि हमारे दोनों स्वर चलते है। स्वरों में इस भिन्नता के कारण को योग्य गुरू द्वारा जाना जा सकता है। प्राणायाम तीन प्रकार से होता है-

(1) पूरक - श्वास का इड़ा से खींचना पूरक।

(2) कुंभक - श्वास का रोकना।

(3) रेचक - श्वास का छोड़ना।

इन तीनों प्रकार से एक चक्र पूरा करने को एक प्राणायाम कहते है।

प्राणायाम की प्रक्रिया (प्रथम विधि) - चरणदास जी ने प्राणायाम की प्रक्रिया निम्न क्रमानुसार निर्देशित की है-

(1) इड़ा नाड़ी अर्थात बांयी नासिका से श्वास (पवन) को खींचकर पूरक करने के बाद श्वास को अन्दर रोके रखना चाहिये। इसके उपरांत दाहिने स्वर (पिंगला नाड़ी) से श्वास को धीरे-धीरे छोड़ देने को एक प्राणायाम कहते है इस क्रिया से शरीर के अनेक मल (विकार) दूर हो जाते है।

(2) दाहिने नासिका छिद्र को बंद कर बांयी नासिका (इड़ा) से श्वास खीचं े कुम्भक द्वारा श्वास रोकें और जालंधर बंध लगायें। मन को स्थिर रख कर 16 मात्रा पूरक 64 मात्रा कुम्भक और 32 मात्रा रेचक करे अर्थात 1:4:2 का पालन करते हुऐ श्वास लेना-रोकना-छोड़ना करें।

(3) प्ररम्भ के तीन माह तक उपरोक्त प्रक्रिया आधीमात्रा से करें। अर्थात 8 मात्रा पूरक 32 कुंभक 16 रेचक करें। इसके बाद समय (मात्रायें) बढ़ाना चाहिये और दो पूरक आठ कुंभक और 4 रेचक अर्थात अनुपात 2:8:4 करें। इस प्रकार समय बढ़ाते हुऐ 64 मात्रा तक प्राणायाम करना चाहिये। प्राणों को प्राणायाम द्वारा वश में कर कुंभक का अभ्यास 64 मात्रा से भी अधिक का प्रयास करना चाहियें।

(4) मात्रा का तात्पर्य अनुस्वार सहित ओम का 1 बार जाप एक मात्रा कहलाता है। इसे ही बीज मंत्र भी कहते है। प्राणायाम के दौरान भोजन आधा पेट करना चाहिये।

(5) एक रात एवं एक दिन मिलाकर 60 घटी होती है। 21/2 की 1 घटी तथा तीन घन्टे का 1 याम होता है। 24 घन्टे में 8 घटी होती है। इसका चैथा भाग प्राणायाम हेतु रखे अर्थात 3 धन्टें के भी चार भाग करे अर्थात 45 मिनट तथा 24 घन्टें में चार बार अर्थात् प्रातः दोपहर , शाम, और अर्धरात्रि में 45 मिनट तक प्रत्येक बार प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिये।

द्वितीय विधिः- प्रथम विधि से संभव न हो तो इस विधि का प्रयोग किया जा सकता है।

(1) 12 बार ऊँ का उच्चारण मन ही मन में करते हुए वायु को अंदर खींचते पूरक है। 20 बार ऊँ के उच्चारण तक श्वास को रोके रखते है (कुंभक)। तथा 12 बार ऊँ के उच्चारण तक रेचक करते है। तथा 24 घन्टे में 4 बार इसका अभ्यास करना चाहिये।

(2) उपरोक्त अभ्यास को क्रमशः दुगना एवं तिगुना तक किया जा सकता है।

(3) पिंगला द्वारा पूरक तथा इड़ा द्वारा रेचक करें। दूसरी बार इड़ा द्वारा पूरक तथा पिंगला द्वारा रेचक करें। कभी-कभी उसी से पूरक तथा उसी से रेचक भी करें। तथा पूरक से तीन गुना या अधिक तक कुंभक करें।

तृतीय विधिः- प्राण वायु का प्रवाह नासिका से निकलने के बाद 12 अंगुल की दूरी तक महसूस किया जाता है। इसे धीरे-धीरे घटाते हुये इतना सूक्ष्म करना चाहिये कि इसका स्पर्श भी न जान पडं े।

(1) अपानवायु को ऊपर खींचकर प्राण के स्थान पर लाने का प्रयास करे। इस दौरान मुंह बंद रखे श्वास बाहर न जाने दें।

(2) पूरक के तीन कर्म (दायें बाये व मध्य) तथा कुंभक के तीन कर्म अन्तः बाह्र एवं मध्य तथा रेचक के दो कर्म दायें या बायें।

(3) जब पूरक व रेचक के सभी कार्य क्षीण हो जाते है। तब केवल कुंभक हो जाता है। यह केवल कुंभक तब पूर्ण होता है जब प्राणवायु केवल शरीर में ही आबद्ध होकर गतिमान होती है।

(4) प्रत्येक मनुष्य 1 दिन में 21 लाख 60 श्वास लेता है। जब इन श्वासों का व्यवहार केवल देह (शरीर के भीतर) ही सीमित हो जाता है तथा प्राण अपान में समा जाता है। तब ऐसा होने के बाद सतत् अभ्यास से 100 वें दिन के बाद केवल कुंभक सिद्ध हो जाता है। इसके सिद्ध होने के बाद ही समझना चाहिये की प्राणायाम की प्रक्रिया पूर्ण हुई।

(5) अपान वायु को प्राणवायु में मिलाने के लिये मूलबंध व खेचरी मुद्रा का अभ्यास बहुत महत्वपूर्ण होता है।

प्राणायाम के प्रकार

चरणदास जी ने आठ प्रकार के कुंभकों (प्राणायामों) का वर्णन उनके लक्षण , गुण व स्वाभाव सहित बतलाये है ये प्राणायाम के आठ भेद निम्नलिखित है-

(1) सूर्यभेदन - जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है इसमें सूर्य अर्थात् पिंगला या दायीं नासिका से अधिक से अधिक श्वास लेकर पूरक करें। इतनी अधिक वायु अन्दर भरें कि नख तक कहीं भी स्थान खाली न रहे। फिर दायीं नसिका बंद कर तुरंत मूल और जालन्धरबंध लगा दें और फिर उड्डियानबंध लगावें। यथाशक्ति कुम्भक करने के बाद प्रथम उड्डियान फिर जालन्धर और फिर मूलबंध हटा दें और बायीं नसिका से लेने के समान मात्रा से रेचक करें। अभ्यास बढ़ने पर लेने से दुगने समय में रेचक किया जाता है। इस प्रकार जितनी आवृत्ति सूर्यभेदन की हो , सभी में दायें से ही पूरक फिर कुम्भक और बायीं ओर से रेचक की जाती है।

चरणदास के अनुसार इस कुम्भक से वायु एवं कृमि सम्बंधी सभी शिकायतें दूर हो जाती हैं। साथ ही शरीरान्तर्गत प्राण में हलचल पैदा होकर सुषुम्ना नाड़ी के मुख से प्राण की सूक्ष्म संवेदना के प्रविष्ट होने की सम्भावना बनती है।

(2) उज्यायी- सुखासन में बैठकर बिना हाथ का प्रयोग किए दोनों नासापुटों से थोड़ी आवाज के साथ श्वास लें। अधिक से अधिक वायु- जब पेट से कण्ठ तक-भर जाए तब बिना हाथ का प्रयोग किए ही तीनों बन्धों के साथ यथाशक्ति कुम्भक करें। अन्त में बंध हटाकर दायंे हाथ से दायीं नासिका बन्द कर बायें से थोड़ी आवाज के साथ ही रेचक करना चाहिए। आवाज उत्पन्न करने के लिए पूरक-रेचक के समय कण्ठ की श्वासनलियों को सप्रयास संकुचित करनी पड़ती है , जिससे वायु का घर्षण होन से अपने आप कण्ठ से एक विशिष्ट प्रकार की ध्वनि उत्पन्न होती है।

उज्यायी-कुम्भक से कफ-सम्बंधी सभी शिकायतों में लाभ होता है। विशेष कर छाती से कण्ठ तक के कफ-जन्य रोगों में अधिक लाभ होता है। वायु विकार में भी यह लाभदायक है। इसमें एक विशेष बात यह है कि चलते-फिरते भी इस कुम्भक का अभ्यास किया जा सकता है।

(3) सीत्कार- सुखासन में बैंठकर , दाँत पर दाँत सटाकर (मुंह खुले हुए) उसके पीछे जीभ को लगाकर, धीरे- धीरे मुँह से ही पूरक करें। बाद में त्रिबंधों के साथ कुम्भक करें , फिर बंध हटाकर नासिका से रेचक करें। इसमें पूरक करते समय 'सीत् सीत्' की आवाज निकलती है, इसी कारण इसका नाम सीत्कार-कुम्भक पड़ा है।

चरणदास के अनुसार इस कुम्भक के अभ्यास से शारीरिक तेज में वृद्धि सतत् होती रहती है , सौन्दर्यवृद्धि होती है, भूख-प्यास-नींद आदि नहीं सताते तथा शरीर सतत् स्फूर्तिवान् बना रहता है।

(4) शीतली- सुखासन में बैठने के बाद अपनी जीभ को दोनांे ओर से मोड़कर 'परनाले' की तरह बनाकर फिर उसे मोड़ते ही जीभ के द्वारा मुख से ही पूरा करना चाहिए। पर्याप्त वायु पूरित करने के बाद त्रिबन्धों के साथ शरीर ढीला रखते हुए कुम्भक करना चाहिए। बद में दोनों नासापुटों से रेचक करना चाहिए। लगातार एक मास तक इस प्रकार अभ्यास करने से इसका फल दिखाई देने लगता है।

इससे गर्मी, उदरशूल, वायुगोला, ज्वर आदि की शिकायते दूर होती हैं , शरीर में नवीनता आती है, भूख प्यास आदि की कमी होती है , काले बाल सफेद होने लगती है तथा मन सतत् प्रसन्न रहता है।

(5) भस्त्रिका- 'भस्त्रा' का अर्थ लुहार की भाथी होती है। इस कुम्भक की प्रक्रिया लुहार की भाथी जैसी होती हैं, इसलिए इसे भस्त्रिका कुम्भक कहते हैं।

पद्मासन लगाकर, दोनों हाथों से दोनों घुटनों को दबाकर रखना चाहिए। इससे पूरा शरीर (कमर से ऊपर) अपने आप सीधा बना रहता है। इसके बाद मुख बन्द कर दोनों नासापुटों से पूरक-रेचक झटके के साथ जल्दी-जल्दी करें। श्वास प्रश्वास छोड़ते समय हर झटके से नाभि पर पर्याप्त दबाव पड़ता है। इस प्रकार बार-बार तब तक करते रहना चाहिए जब तक कि थक न जाएँ। (इसकी श्वास-प्रश्वास की मात्रा एक सेकेण्ड में दो अर्थात् एक मिनट में 120 होनी चाहिए)। इसके बाद दायें हाथ से बायें नासापुट को बंद कर दायें से अधिक से अधिक वायु पूरक के रूप में अन्दर भरें। फिर त्रिबन्धों के साथ यथाशक्ति कुम्भक करने के बाद दायें बंध को हटाकर बायें नासापुट से धीरे-धीरे रेचक करें। यह एक भस्त्रिका कुम्भक कहा जाता है। पुनः दुबारा करने के लिए पहले अधिक से अधिक पूरक-रेचक के झटके , फिर दायें नासा से पूरक , फिर यथाशक्ति कुम्भक और फिर बायीं नासा से रेचक करें। इस प्रकार कम से कम तीन भस्त्रिका-कुम्भक का अभ्यास प्रति बैठक में अवश्य करना चाहिए।

इस कुम्भक के नियमित अभ्यास से कफ-पित्त और वायु सम्बंधी सभी दोष दूर हो जाते हैं , जठराग्नि बढ़ती है, जिससे पाचनक्रिया सुव्यवस्थित होती है। एवं शरीर की तीनों ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं।

(6) भ्रामरी- इस कुम्भक के अभ्यास में कुछ-कुछ भ्रमर गुंजन जैसी आवाज होती है , अतः इसे भ्रामरी कुम्भक कहा जाता है। इसमें मुख बंद कर दोनों नाकों से जोर लगाकर श्वास अन्दर

खींचते हुए पूरक किया जाता है रेचक से भंवर की आवाज जैसी आवाज उत्पन्न होती है। पूरक के बाद तीनों बंधों के साथ कुम्भक और फिर बन्ध हटाकर भँवरी जैसी आवाज के साथ रेचक की जाती है।

योगग्रन्थों में यद्यपि उक्त प्रकार का ही वर्णन मिलता है, किन्तु अनुभव के आधार पर यह कहना उचित प्रतीत होता है कि जोर से पूरक करते समय भँवरी जैसी आवाज तथा रेचक करते समय भँवर जैसी आवाज उत्पन्न होती है। इस सौम्य ध्वनि के कारण मन इस ध्वनि के साथ बँध-सा जाता है, जिससे मन की चंचलता समाप्त हो एकाग्रता बढ़ने लगती है।

(7) मूर्च्छात- इस कुम्भक के अभ्यास से वायु मुर्च्छित होती है। परिणामतः मन भी मुर्च्छित होता है, इसी कारण इसे मूर्च्छाि कुम्भक कहा जाता है। इसके अभ्यास में कुछ कृत्रिम प्रक्रिया होती है। प्रथम दोनों नासापुटों से जोर से साँस खींचते हुए पूरक किया जाता है। फिर त्रिबन्ध के साथ कुम्भक तथा बाद में जालन्धरबन्ध लगाये हुए ही रेचक किया जाता है। इससे पानी बरसने जैसी आवाज कण्ठ से उत्पन्न होती है तथा वायु मुर्च्छित होती है जिससे मन मुर्च्छित होकर अन्ततः पूर्ण शान्त हो जाता है।

(8) केवल- उक्त सातों कुम्भक का नियमित व पर्याप्त अभ्यास करने के बाद फलरूप में योगी को जो प्राप्त होता है, वह है- केवलकुम्भक। इस कुम्भक की विशेषता यह है कि इसकी कोई परिभाषा नहीं हो सकती। यह कुम्भक अपने आप लग जाता है। और अधिक देर तक लगा रहता है। इसमें कब पूरक हुआ, कब रेचक हुआ यह पता ही नहीं लगता। अपने-आप कभी भी कुम्भक लग जाता है, परिणामतः एक अपूर्व आनन्द की स्थिति में योगी बैठा रहता है। उसका श्वास-प्रश्वास इतना अधिक लम्बा और मन्द हो जाता है कि यह भी पता नहीं रहता कि वह योगी कभी श्वास-प्रश्वास लेता-छोड़ता भी है। इसी कारण चरणदास ने इसको कुम्भकों का राजा कहा है। इसमें सफलता मिल जाने पर योगी को कुछ भी प्राप्तव्य नहीं रह जाता।

हठप्रदीपिका में अन्तिम प्रकार 'प्लाविनी' बताया गया है। और उसके बाद अलग से केवल कुम्भक का वर्णन किया गया है। यह इस बात का द्योतक है कि आठों कुम्भक के अभ्यास के बाद जो परिणाम रूप में प्राप्त होता है, वह केवल कुम्भक है। वास्तव में यही प्राणायाम का अन्तिम फल है, जो पंतजलि को भी अभिप्रेत है। चरणदास जैसे व्यावहारिक, अनुभवी और सिद्धयोगी ने भी आठवें स्थान पर केवल कुम्भक को रखकर यही सिद्ध किया है कि यह कुम्भक का प्रकार नहीं अपितु उसका परिणाम है।

अन्य हठयोगियों के समान ही चरणदास ने भी कुम्भक का अभ्यास प्रारम्भ करने से पूर्व नाड़ीशुद्धि के लिए प्रथम अनुलोम-विलोम प्राणायाम की चर्चा अप्रत्यक्ष रूप से की है, जिसमें वे बाई नासिका से लेकर, रोक कर, फिर दाई नासिका से छोड़ना तथा पुनः दाई से लेकर, रोक कर, बाई से छोड़ना बतलाते है। साथ ही रेचक के समय उड्डियान करने का निर्देश करते है।

12.9 स्वामी चरणदास के अनुसार त्रिबंध एवं अश्ट सिद्धियों का स्वरूप

अष्टांग योग में बन्ध

स्वामी चरणदास जी ने बन्ध प्रकरण का विवेचन करते हुए सर्वप्रथम महाबंध की प्रक्रिया बतलाई। इनके अनुसार बंध निम्नलिखित है-

1. मूलबन्ध।
2. जलन्धर बन्ध।
3. उड्डियानबन्ध।

किन्तु स्वामी चरणदास जी की अपनी विशेषता उन्होने सर्वप्रथम महाबंध का वर्णन किया है इसके उपरांत उपरोक्त त्रिबन्धों का विवेचन। गोमुखासन में भ्रूमध्यद्वष्टि में इस बन्ध को निम्नलिखित प्रकार से लगाया जाता है।

किन्तु स्वामी चरणदास जी की अपनी विशेषता उन्होंने सर्वप्रथम महाबध का वर्णन किया है इसके उपरांत उपरोक्त त्रिबन्धों की विवेचना। गोमुखासन में भूमध्यदृष्टि में इस बन्ध को निम्नलिखित प्रकार से लगाया जाता है। महाबन्धः- सर्वप्रथम बाँया पाँव उठाकर उसकी एड़ी से सीवनी को दृढ़ता से दबाकर गुदामार्ग को बन्द (मूलबन्ध) करें। फिर दाँया पाँव बायें जाँघ पर रखकर गोमुखासन करें और तब ठोड़ी को छाती पर दृढ़ता से लगाकर रक्खें। इसे महाबन्ध कहा जाता है। इसे प्रति तीन घण्टे पर करें। अभ्यासकाल में स्त्री और अग्नि का सेवन न करें इसके नियमित अभ्यास से जठराग्नि अधिक बढ़ती है , जिससे पाचनशक्ति उत्तम बनी रहती है। जरा-मृत्यु आदि निकट नहीं आ पाते और साधक योगी बन जाता है।

(1) मूलबन्ध- गुदाद्धार को सर्वथा बन्द कर देने को मूलबन्ध कहा जाता है। प्रथम बायें पैर की एड़ी से सीवनी को दबाकर, फिर दायें पैर बायें जाँघ पर रखकर सिद्धासन में बैठें। इसके बाद नीचे की वायु को उपर की ओर (गुदा को संकुचित करते हुए) खींचने का अभ्यास करें। प्रारम्भ में यदि पद्मासन न कर सकें तो कपड़े की एक छोटी सी गेंद बनाकर , गुदाद्धार पर रखकर, उसे कस कर बन्द कर दें। इससे अपानवायु वश में होती है। अभ्यास बढ़ने पर गेंद की आवश्यकता नहीं होती। सिद्धासन में एड़ी के द्वारा ही यह काम लिया जाता है। इस मूलबन्ध का अभ्यास जानकार व्यक्ति के निर्देशन में ही करना चाहिए।

(2) जालन्धरबन्ध- जालन्धर का अर्थ होता है कण्ठ। अतः कहीं-कहीं इसे कण्ठबन्ध भी कहा जात है। इसमें गर्दन को झुकाकर ठोड़ी को छाती पर कसकर दबाकर लगाते है। उपर की ओर जानेवाली वायु इससे रूक जाती है। इस प्रकार उपर की वायु नीचे की ओर तथा नीचे की वायु उपर की और (मूलबन्ध के द्वारा लाने से) आने से प्राण-अपान की एकता होती है। दोनों वायु यदि इस प्रक्रिया से मिल जाय तो सुषुम्ना में प्रवेश की सम्भावना बढ़ जाती है।

(3) उड्डियान - मूलबंध और जालन्धरबंध का एक साथ अभ्यास बन जाने पर उसी समय में अपनी लम्बी जिव्हा को उलटकर कपालकुहर में प्रविष्ट कर वहां स्थिर रखें , तो उड्यिानबंध भी लग जाता है। इससे कान नाक-आँख अदि प्राण के आवागमन के सातों रास्ते बन्द हो जाते हैं। इस प्रकार सुषुम्ना में प्रविष्ट प्राण अन्तराकाश में ही उड़ान भरने लगता है। इसी प्राण के उड़ान भरने के कारण इसका नाम उड्डियानबंध पड़ा है। इस बंध की महत्ता सबसे अधिक प्रतिपादित की गयी है, क्योंकि इस एक ही बंध से सात द्वार बंद हो जाते हैं।

अष्टांग योग में अष्ट सिद्धियाँ

सिद्धियों का स्वरूप

स्वामी चरणदास जी ने बंधों के बाद योग साधना के फलस्वरूप जो प्राप्त होता है। उसे सिद्धि कहा है। सिद्धि का शब्दिक अर्थ भी सफलता है। सामान्यतया योग के क्षेत्र में या अन्य सम्प्रदायों में सिद्धि का अर्थ एक ऐसी चमत्कारिक शक्ति से होता है जो रहस्यात्मक होती है साधारण जन इस सिद्धि से ऐसी आलौकिक शक्ति या चमत्कारिक प्रदर्शन की आशा भी करते है। किन्तु यह प्रदर्शन योगसाधना में बाधक ही होता है। इससे कोई लाभ नही होता बल्कि साधना में कठिनाई ही उत्पन्न होती है। योग साधना की सतत् प्रक्रियाओं से सहज ही कुछ विशेष शक्तियां या क्षमताएँ साधक में उत्पन्न हो जाती है यह साधना के स्वाभाविक परिणामों कारण हैं न कि चमत्कार जैसा लोग समझाते या आश करते है। कुछ तामसिक प्रकृति के साधक इन परिणामों का प्रदर्शन कर सामान्य जनों को भ्रम में डाल उन्हें ठगते या अपनी श्रेष्ठता लादते है। अतः इनसे चमत्कृत नहीं होना चाहियें। योग साधक की साधना के परिणाम स्वरूप साधक के मानसिक धरातल पर काफी अच्छे , उत्कृष्ट एवं अदभुत अनुभव उत्पन्न होते हैं। जिनके विभिन्न स्वरूप होते है। इन्हें चरणदास जी ने आठ प्रकार से विभेदित किया है।

सिद्धियों के प्रकार

चरणदास जी ने सिद्धियों को उनके स्वरूपों के आधार में पर आठ प्रकार बतलायें है। ये आठ प्रकार अष्ट सिद्धियों के नाम से जाने जाते है। ये है- (1) अणिमा (2) महिमा (3) लघिमा (4) गरिमा (5) प्राप्ति (6) पराकम्य (7) ईशिता (8) वशीकरण।

(1) आणिमा - योगाभ्यास से यह सिद्धि प्राप्त होने पर योगसाधक को अपने मन में अनुभव होता है। कि वह अत्यन्त छोटा अणु के समान बन गया है। ऐसे ही अनुभव बार-बार मन में हों , तो उसे अणिमा सिद्धि प्राप्त योग साधक कहा जाता है।

(2) महिमा- इस सिद्धि में साधक को अनुभव होता है कि उसका व्यक्तित्व इतना विस्तृत हो गया है कि वह हर जगह व्याप्त हो गया है।

(3) लघिमा- इसमें ऐसा लगता है कि वह फूल के समान अत्यन्त हल्का बन गया है।

(4) गरिमा- इस सिद्ध के प्राप्त होने पर योगसाधक को अनुभव होता है कि उसका वजन बहुत अधिक बढ़ गया है।

(5) प्राप्ति- इसमें मन में अनुभव होने लगता है कि मैं जो चाहूँ वह प्राप्त कर सकता हूँ। इससे प्राप्त करने की चाह ही समाप्त हो जाती है।

(6) पराकाम्य- इस सिद्धि में यह अनुभव होता है कि वह अत्यन्त शक्तिशाली बन गया है। अतः अजेय हो गया है।

(7) ईशिता- यह सिद्धि प्राप्त होने पर मन में ऐसा अनुभव होता है कि वह जिसे चाहे अपने आदेश के अनुसार चला सकता है।

(8) वशीकरण- योग के अभ्यास से प्राप्त होने पर इस अन्तिम सिद्धि के प्राप्त होने पर योगासाधक के मन में अनुभव होने लगता है। कि यह पूरा संसार ही मेरे अधीन है।

चरणदास के अनुसार योग के नियमित अभ्यास से ये आठों सिद्धियाँ अपने आप मिलती ही है। किन्तु जो योगसाधक योग के वास्तविक लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील रहते हैं, वे कभी भी इन सिद्धियों से प्राप्त अद्भुत मानसिक अनुभवों में नहीं उलझते। किन्तु जो प्रारंभिक साधक होते हैं वे इन्हीं सिद्धियों के क्षणिक मानसिक अनुभव में मग्न रहकर अपनी साधना से प्राप्त प्रगति को गंवा देते है। परिणामतः वे योग के लक्ष्य को प्राप्त कर पाने की कल्पना भी नहीं कर सकते।

12.10 **सारांश**

प्रस्तुत इकाई में स्वामी चरणदास एवं अष्टांग योग ग्रंथ का परिचयए स्वामी चरणदास के अनुसार अष्टांग योग एवं सयंम के स्वरूप का वर्णन किया है साथ ही प्राण नाडियांए प्राणायामए चक्रभेदन ए त्रिबंध एवं अष्ट सिद्धियों का संक्षेप में वर्णन किया गया है ।

12.11**बोधात्मक प्रश्न**

1. स्वामी चरणदास एवं अष्टांगयोग ग्रन्थ का परिचय लिखिये
2. स्वामी चरणदास के अनुसार अष्टांग योग में संयम का स्वरूप समझाइए
3. स्वामी चरणदास के अनुसार यम नियम का स्वरूप बताइये
4. स्वामी चरणदास के अनुसार प्रत्याहार धारणा ध्यान समाधि के स्वरूप का वर्णन कीजिए
5. स्वामी चरणदास के अनुसार प्राणनाडियां, प्राणायामएवं चक्रभेदन का स्वरूप लिखिये
6. स्वामी चरणदास के अनुसार त्रिबंध एवं अश्ट सिद्धियों का वर्णन कीजिए

12.12 **संदर्भ ग्रंथ सूची**

- योग और अनुसंधान स्वामी कुवलयानन्द, कैवल्यधाम लोनावाला पूना 410403
- साधना स्वामी शिवान्द , दिव्य जीवन संघ , पत्रालय शिवानन्द नगर 249192 , जिला टिहरी गढ़वाल हिमालय (उ.प्र.)
- राजयोग स्वामी विवेकानंद, अद्वैत आश्रम, 5-देही एन्टाली रोड, कलकत्ता - 700014

- लाईट ऑनयोग महर्षि अरविंद, अरविंद आश्रम पाण्डिचेरी
- अष्टांग योग - चरणदास अनुवादक , श्री ओ. पी. तिवारी , प्रकाशक कैवल्यधाम- एस. एम. वाई. एम. समिति , कैवल्यधाम लोनावाला पूना
- योग परिचय - डॉ पीताम्बर झा , प्रका. गुप्ता प्रकाशन डी-35 साउथ एकसटैंशन भाग I नई दिल्ली - 49
- योग का परिचयात्मक - डॉ ओमनारायण तिवारी स्वरूपप्रकाशक पं. सुन्दरलाल शर्मा (मुक्त) विश्वविद्यालय छत्तीसगढ़, बिलासपुर (छ.ग.)
- Secrets of Hatha Vidya - Dr. Vijayendra pratap SKY FoundationPhiladelphia Pennsylvania U.S.A.
- योगासन एवं हठयोग विज्ञान - डॉ. ओम नारायण तिवारी, विलासपुर (छत्तीसगढ़)
- पतनजल योग दर्शन - डॉ. नित्यानन्द शर्मा, कोटा (राजस्थान - 324005)

इकाई - 13

स्वास्थ्य एवं रोग का अर्थ एवं परिभाषा

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 स्वास्थ्य का अर्थ एवं परिभाषा

13.2 मानव स्वास्थ्य के लिए महत्वपूर्ण बिन्दु

13.3 स्वास्थ्य की मौलिक आवश्यकताएं

13.4 रोग की अवधारणा

13.5 रोग की परिभाषा एवं अर्थ

13.6 रोग के कारण

13.7 रोगी शरीर की पहचान

13.8 रोग के प्रकार

13.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

13.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

13.0 **उद्देश्य**

स्वास्थ्य किसे कहा जाता है? स्वास्थ्य रोग विहीन शरीर को माना जा सकता है? स्वास्थ्य के विषय में डब्ल्यू.एच.ओ. की संशोधित परिभाषा क्या कहती है? स्वास्थ्य शारीरिक ही नहीं अपितु मानसिक, आध्यात्मिक व सामाजिक स्वास्थ्य से भी परिपूर्ण होना आवश्यक है। स्वास्थ्य को स्वस्थ बनाने हेतु किन बिन्दुओं को समझते हुए उनकी मौलिक आवश्यकताएं क्या हो सकती है? जिनसे हम चारों प्रकार के स्वास्थ्य को प्राप्त किया जा सके। साथ ही हम जान पाएगें कि स्वास्थ्य की अनुपस्थिति ही रोग की जन्मदात्री है। अर्थात् रोग क्या है? उसका अर्थ एवं परिभाषा तथा उसके कारण जिनमें रोग आते है और रोगी शरीर को हम किस प्रकार पहचान कर सकते हैं। रोग कितने प्रकार से हमारे शरीर को प्रभावित करते हैं। उनके मुख्य स्रोत क्या हो सकते हैं।

13.1 **स्वास्थ्य का अर्थ एवं परिभाषा**

शरीर, मन तथा शरीर के विभिन्न अंगों का आपस में तालमेल बनाते हुए एकरूपता में व्यवस्थित तौर पर कार्य करना ही स्वास्थ्य है। स्वास्थ्य उन तत्वों एवं शक्तियों का पूर्णरूपेण कार्य करना होता है जो मानव अस्तित्व को निर्माण करने वाले भौतिक, मानसिक एवं नैतिक स्तरों पर व्यक्तियों के अस्तित्व के लिए आवश्यक प्रकृति के निर्माणकारी सिद्धान्त के अनुरूप होते है। स्वास्थ्य स्वस्थ रहना और स्वास्थ्य को बनाए रखने की बात सदियों से चलती रही है। समय के बदलते रूप के साथ इसका स्वरूप भले ही बदले लेकिन इसके प्रति लोगों का आकर्षण सदैव बना रहा है। आज प्रत्येक व्यक्ति स्वास्थ्य को प्राप्त करने के

लिए विभिन्न प्रकार के तौर तरीके अपनाता है जिसमें औषधि का लिया जाना, अन्य क्रियाकलापों का किया जाना तथा अन्य भी ढेर सारे क्रियाकलाप शामिल होते है। हमारे लिए यह जानना काफी आवश्यक है कि स्वास्थ्य क्या है। सरल शब्दों में रोगों की अनुपस्थिति ही स्वास्थ्य कहलाती है। प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार पंच तत्वों का संतुलन ही स्वास्थ्य है। इन तत्वों में असंतुलन ही रोगों के प्रार्दुभाव का मुख्य कारण होता है और इससे हमारे स्वास्थ्य को काफी नुकसान पहुंचता है। लेकिन WHO के अनुसार किसी भी व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक इन सभी दृष्टिकोणों से पूर्ण स्वस्थ्य होने की अवधारणा ही स्वास्थ्य कहलाती है। आज आधुनिक जीवन शैली में स्वास्थ्य को प्राप्त करने तथा अपने आपको रोगमुक्त रखने के लिए चिकित्सा विज्ञान द्वारा काफी प्रयास किए जा रहे है। दिन प्रतिदिन हो रहे अनुसंधानों, चिकित्सा की विभिन्न (i)तियों, मशीनों निदानों, डॉक्टरों और अस्पतालों की बढ़ती संख्या के बावजूद रोग और रोगियों दोनों की संख्या में काफी वृद्धि हो रही है। इस स्थिति के पीछे का मुख्य कारण यह है कि आज हमारा सारा ध्यान स्वास्थ्य की चिंता करने के बजाए बीमारियों को दूर करने में लगा रहता है। हम स्वास्थ्य को प्राप्त करने के बजाए बीमारी को मिटाने में लगे रहते है। वर्तमान चिकित्सा (i)तियों का ध्यान भी स्वास्थ्य को पूर्ण अवधारणा को प्राप्त करने के बजाए रोग पर केन्द्रित होता है। दुर्भाग्यवश आज हम स्वास्थ्य की पूर्ण आवधारणा से अनजान है। वर्तमान (i)तियों के सहारे हमें रोगों के कारण का पता तो चल जाता है लेकिन हम स्वस्थ्य रहने के महत्वपूर्ण कारणों को नजर अंदाज करते चले जाते है। हमारे अस्वस्थ रहने का मूल कारण यही है।

शारीरिक रूप से स्वस्थ रहना अपने आप में शरीर में किसी प्रकार के रोग होने और शरीर रूपी मशीन के सही ढंग से कार्य करने को शामिल करती है। शरीर और इसके अंगों के बीच कार्यात्मक क्षमता का अभाव व अस्वस्थ होने की स्थिति की तरफ इशारा करती है। लेकिन शारीरिक रूप स स्वस्थ होने के साथ साथ हमारा मानसिक, आध्यात्मिक और सामाजिक रूप से स्वस्थ्य होना भी आवश्यक है। मानसिक रूप से स्वस्थ होने का अर्थ यह होता है कि हमारा शरीर मानसिक रूप से स्वस्थ होता है कि हमारा मानसिक संतुलन ठीक हो और हमारे क्रियाकलापों व आचरण द्वारा किसी भी प्राणी व जीव जंतु को कोई नुकसान न पहुंचे । आधात्मिक रूप से स्वस्थ होने का अर्थ यह है कि हम उस सर्वशक्तिमान ईश्वर में पूर्ण आस्था रहते हुए अपने आप में आत्मा के मूल गुणों को समाहित करते हुए अपने जीवन में राम नाम की अवधारणा को शामिल करें। सामाजिक रूप से स्वस्थ होने का अर्थ यह है कि हमारे सभी सामाजिक सरोकार और संबंध ठीक ठाक हो। अपने सामाजिक कर्तव्यों का पूर्णरूपेण निर्वाह करते हुए हम अपने जीवन को सार्थक बना रहे हों। उपरोक्त बातों को अगर हम अपने जीवन में शामिल करते है तो हम पूर्ण स्वास्थ्य की अवधारणा को प्राप्त करने में सफल हो सकते है।

डयूबोस को इस संदर्भ में कहना हे कि स्वास्थ्य वह अवस्था है जिसमें रोग असुविधा तथा दर्द आदि अत्यन्त न्यून होते है तथा पर्यावरण के साथ सतत सामंजस्य बना रहता है जिसके परिणाम स्वरूप सभी शारीरिक एवं मानसिक क्रियाएं उच्चतम स्तर पर चलती रहती है।

सामान्यत: अगर हमारे शरीर के किसी भी हिस्से में दर्द सूजन, खिंचाव और इस प्रकार की अन्य कोई परेशानी न हो तो हम अपने आपको स्वस्थ कह सकते है शरीर के सभी अंगों को उचित अनुपात में विकसित होकर पूर्णरूपेण क्रियाशील होना भी एक महत्वपूर्ण कारक है। इस सबके साथ कुछ अन्य

स्थितियां, जैसे सारी इन्द्रियों का अच्छी तरह कार्य करना, स्वच्छ त्वचा, चमकदार आंखे, काले घने बाल, संतुलित श्वास, भूख प्यास का संतुलित होना, गहरी नीद और शौच आदि क्रिया कलापों का ठीक होना भी उत्तम स्वास्थ्य के लिए जवाबदेह होती है।

स्वास्थ्य की परिभाषा

समस्त शारीरिक परेशानियों और कष्टोंएके अभाव में स्थिति वाली शरीर, मन और चेतना की अवस्था को स्वास्थ्य कहते है। इस अवस्था में हम अपने सभी शारीरिक और मानसिक कार्यों को समय पर तथा पूरी क्षमता के साथ पूर्ण कर सकते है। इसमें व्यक्ति की आनुवांशिक और वातावरणीय स्थिति के साथ उसकी दिनचर्या का संतुलन पूर्ण गुणवत्ता के साथ होता है।

इस संदर्भ में पहले बतायी गयी डब्ल्यू.एच.ओ. के द्वारा दिये गए पूर्ण स्वास्थ्य की परिभाषा पर भी ध्यान दिया जाना जरूरी है।

13.2 **मानव स्वास्थ्य के लिए महत्वपूर्ण बिन्दु**

मानव स्वास्थ्य को मानव शरीरों के अंदर अथवा बाहर के वातावरण में नहीं बल्कि मानव के संपूर्ण वातावरण की पृष्ठनभूमिमें वैज्ञानिक रूप में आंका जा सकता है। मानव के संपूर्ण वातावरण को आमतौर पर भीतरी वातावरण और बाहरी वातावरण में विभाजित किया जा सकता है। मानव का जीवन इन दोनों वातावरणों का ही परिणाम है।

भीतरी वातावरण : यह मानव शरीर के अंदर वाला वातावरण है। इसमें शरीर की सामान्य संरचनाएं और कार्यप्रणाली तथा रोग के दौरान शरीर में जो परिवर्तन होते हैं वे सब सम्मिलित हैं। किसी रोग के ठीक हो जाने के उपरांत भी मानव की अच्छे स्तर वाली कार्यक्षमता के विकास और उसे बनाए रखने के लिए उसका ध्यान दिया जाना काफी आव श्यक होता है। सकारात्मक अथवा वांछित स्वास्थ्य की आधुनिक संकल्पना यही है।

बाहरी वातावरण - इसमें उन सारे पहलुओं को शामिल किया जा सकता हैं जो मानव शरीर के बाहर हैं और अच्छे स्वास्थ्य की प्राप्ति के लिए इनका भी उतना ही महत्व है। जितना भीतरी वातावरण का। इसमें शंका की कोई गुंजाइश हीं होती है कि मानव के चारों और का वातावरण ही हमेशा आंतरिक वातावरण को प्रभावित करने के लिए कार्यरत रहता है। बाहरी वातावरण को भौतिक, जैविक तथा सामाजिक तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है।

वैसे तो वातावारण का दायरा काफी व्यापक है लेकिन कुछ ऐसे महत्वपूर्ण कारक है जिन पर नियंत्रण रखा जाना काफी आवश्यक है और इन्हीं चीजों का ख्याल रखते हुए कोई भी समाज स्वास्थ्य के इष्ट तम स्तर रोग के निम्नतम स्तर और आयु की अधिकतम पराकाष्ठा तक पहुंचा सकता है।

भौतिक वातावरण - हवा, पानी और भौतिक वातावरण को प्रभावित करने वाले महत्वपूर्ण कारक है। जीवधारी प्राणियों का अस्तित्व हवा के अभाव में तत्क्षण खतरे में पड़ सकता है। शरीर का लगभग 7 0 प्रतिशत अश पानी का होता है और शेष तत्वों की आपूर्ति भोजन द्वारा की जाती है। ये तीन अनिवार्य अवयव मानव के जीवन के लिए अत्यावश्यक है। स्वास्थ्य के मानव इन तीन आधारभूत अवयवों की

गुणवत्ता और मात्रा पर ही निर्भर करते हैं। इसी तरह व्यक्तियों, परिवारों अथवा समुदायों में रोग का स्तर भी इन महत्वपूर्ण पदार्थों के उतार - चढ़ाव पर ही निर्भर करता है।

हमारी आधुनिक जीवन शैली के कारण उत्पन्न हुए भयावह स्थितियों जैसे अत्यधिक प्रदूषण, शोर-शराबा, भागमभाग और इस प्रकार के अन्य भी कई कारकों ने उपरोक्त बताए गए तीनों अवयवों को काफी हद तक प्रदूषित कर लेने के लिए बाध्य है और यह रोगों की उत्पति का एक मूल कारण है। हम सबको पता है कि स्वास्थ्य का स्तर अथवा जीवन की अवधि, उसके लिए ली जाने वाली हवा, पिए जाने वाले पानी, खाए जाने वाले भोजन और उस स्वच्छ वातावरण पर निर्भर करती है। जिसमें मानव जीवनयापन कर रहा है।

सामाजिक वातावरण - समाज, संस्कशित, शिक्षा, सभ्यता, सामुदायिक संगठन, आर्थिक परिस्थितियों आदि ही मानव के सामाजिक वातावरण का निर्माण करती है। आज रोगों की प्रवश्ति में सामाजिक वातावरण महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। रहन-सहन, शिक्षा व विकास काक स्तर और सामुदायिक स्वास्थ्य एजेन्सियों आदि के संगठन के रूप में स्वास्थ्य और रोग के स्तर सामाजिक परंपरा से संगतता रखते हैं। स्वास्थ्य से जुड़े कई पहलू तकनीकी और वैज्ञानिक होने की अपेक्षा अधिकांशतया समाज शास्त्रीय व प्रशासन संबंधी है।

जैविक वातावरण : मनुष्य के चारों और जीवधारियों का संसार ही उसका जैविक वातावरण है। स्वास्थ्य की दृष्टि से इस वातावरण का सबसे महत्वपूर्ण कारक सूक्ष्मजीव अथवा रोगाणु होता है। सभी संक्रामक रोग रोगाणुओं द्वारा ही जनित होते है। विकास क्रमों के परिणामस्वरूप ये रोगाणु मानव के शरीर में प्रवेश कर जाते हैं और अपने अस्तित्व के संघर्ष में परजीवी के रूप में वृद्धि करते हैं। रोग की प्रघटना को मानव ने मानव जाति और इन सूक्ष्म जीवों के बीच उत्तर जीविता के संघर्ष की प्रघटना कहा है।

शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक रूप से स्वस्थ होना ही प्राकृतिक स्वास्थ्य है। इसकी पहचान हम निम्नलिखित बिन्दुओं को ध्यान में रखते हुए कर सकते हैं -

1 मानव शरीर के अंदर सभी क्रियाकलाप सामान्य हों।

2 अपने आपको सदा ऊर्जावान और सक्रिय महसूस करते हों।

3 वाणी में मिठास हों।

4 रचनात्मक और सामाजिक कार्यों को करने में अभिरूचि हो।

5 चेहरे पर हर हमेशा कान्ति का भाव हो।

6 आंखों मेंचमक एवं सत्यता और निर्भीकता का भाव हो।

7 मन हर हमेशा प्रसन्न एवं हृदय सदैव स्वर्गीय आनंद से ओतप्रोत रहता हो।

8 पर्याप्त मीठी और गहरी नींद आती हो।

9 नियत समय पर भोजन लेने की इच्छा हो।

10 पूरे दिन कार्य करने के दौरान उत्साह का अनुभव करते हो।

11 पेट छाती से कभी भी बड़ा ना हो।

12 मादक और उत्तेजक पदार्थों को लेने की बिल्कुल इच्छा न हो।

13 बिना थके लगातार कार्य करने की क्षमता हो।

14 हर अवस्था में चेहरे पर मुस्कान का भाव हो।

15 जीवन के प्रति पर्याप्त सकारात्मक दृष्टिकोण हो।

16 शौच खुलकर और नियमित रूप से आता हो।

17 प्रात: जगने पर तन-मन स्फूर्ति और उत्साह से भरा हो।

18 अपने को एक सच्चा मानव बनाने का प्रयास करते हुए अन्य सभी मानवों के प्रति आत्मवत व्यवहार हो।

19 जीवन में राम नाम की अवधारणा का समावेश किया हो।

20 भगवान द्वारा उपहार के रूप में दिए गए इस मानव जीवन को सफल बना रहे हो।

उपरोक्त बिन्दुओं को सुनिश्चित करने के लिए हमारे द्वारा स्वास्थ्य संबंधी निम्नलिखित प्रमुख कारकों की उपस्थिति अनिवार्य है।

सही जल आपूर्ति : पीने के लिए प्रयोग किए जाने वाले जल को सभी हानिकाकर अशुद्धियों से मुक्त होना चाहिए। क्योंकि जल में सबसे खतरनाक रोग उत्पन्न करने वाले रोगाणु होते है। नदियों, कुएं आदि से प्राप्त होने वाले जल को पहले छानकर फिर क्लोरोनीकश्त करते हुए प्रयोग किया जाना चाहिए। पीने वाले पानी को हर हमेशा ढककर रखना चाहिए जो इसे संदूषित होने से बचाता है।

उचित भोजन पर्याप्त मात्रा में - हमें भोजन को हर हमेशा संयत मात्रा में लेना चाहिए और भोजन इस प्रकार का हो जिससे आवश्यक ऊर्जा प्राप्त हो, शरीर की वृद्धि हो, ऊतकों की मरम्मत हो तथा रोगों से प्रतिरक्षा हो। भोजन हर हमेशा प्रदूषण से मुक्त होना चाहिए।

विष्ठाक और अन्य मल पदार्थों का स्वास्थ्यकर निपटान : मल पदार्थ से पानी, भोजन और भूमि का बिल्कुल ही संदूषित न होने देना निपटान का सबसे अच्छा तरीका है। इसका सबसे अच्छा उपाय संप्रवाहन या जल वाह प्रणाली का प्रबंध है। आर्थिक कारणों से ऐसा हर जगह किया जाना संभव नहीं है। लेकिन सस्ते और सेवा - निरपेक्ष प्रकार के स्वच्छ शौचालय तो बनाए ही जा सकते हैं।

इसी प्रकार स्वास्थ्योपयोगी वातावरण बनाने के लिए अन्य मल पदार्थों, कचरे, बेकार पानी आदि का स्वास्थ्यकर निपटान भी अत्यन्त आवश्यक है।

अच्छा आवास : यह अच्छे स्वास्थ्य की प्राप्ति और रोगों से बचाव दोनों के लिए आवश्यक है। अच्छे घर में संवातन की सुचारू व्यवस्था होनी चाहिए और पूरे मकान में प्राकृतिक प्रकाश के यथेष्टा रूप से आने का प्रबंध हो। इसी तरह रसोई घर और स्नानघर अलग अलग और शौचालय स्वच्छ होने चाहिए।

अंत में यह कहना ज्यादती नहीं होगी कि हवा, पानी, भोजन, और मल पदार्थों के निपटान को दृष्टि में रखते हुए रोगों से बचा व दीर्घ जीवन तथा उत्तम स्वास्थ्य और शारीरिक क्षमता के लिए वातावरण का स्वच्छता का उच्च स्तर नितांत आवश्यक है। उपरोक्त सभी स्थितियों का अभाव ही रोगों के प्रार्दुभाव का कारण होती है।

स्वास्थ्य की मौलिक आवश्यकताएं

स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए कुछ मूलभूत आवश्यकताएं होती है -

1 वायु

2 जल

3 आहार

4 सूर्य का प्रकाश

5 शारीरिक श्रम, (अवश्यकतानुसार शारीरिक व्यायाम)

6 चार प्रकार के आराम

1शारीरिक

2मानसिक

3 ऐन्द्रिम

4 आंतरिक

7 गहरी नींद

8 प्रसन्नता (उपयुक्त मानसिक स्थिति)

9 सामान्य आंतरिक गमहित का एक समान होना

10 आशावाद

11 मनोदृढता

उपरोक्त मौलिक आवश्यकताओं से जीवन शक्ति में वृद्धि होती है तथा सभी कार्य शारीरिक तथा मानसिक बाह्य या आंतरिक, ऐच्छिक या अनैच्छिक, स्वास्थ्यवर्द्धक या स्वास्थ्य नाशक सुचारू रूप से सकारात्मक बन जाते है।

रोग की आवधारणा -

प्राकृतिक चिकित्सा को छोड़कर अन्य सभी चिकित्सा (i)तियों में रोगों के बाहरी कारणों को ढूंढा जाता है। जब हमारे शरीर के अंदर कार्य करने वाली प्रणाली शरीर में इक्ट्ठा होने वाले द्रव के निष्का ीसमें असमर्थ होती है तो रोग की स्थिति उत्पन्न हाती है। अनुचित अप्राकृतिक जीवन शैली तथा भोगवादी आहार के कारण हमारे शरीर में विषाक्त द्रव्य की मात्रा अधिक हो जाती है। इसी विषाक्त द्रव्य को शरीर को मुक्त करने के लिए शरीर द्वारा जो अतिरिक्त प्रयास किया जाता है यह स्थिति भी रोग को उत्पन्न करती है। रोग शरीर के कल्याण के लिए प्रकृति द्वारा चलायी जाने वाली एक विशेष प्रक्रिया का ही नाम है। इस बात को ध्यान में रखते हुए बिना हमारे द्वारा बिना दबाए हुए शरीर की इस अवस्था में मदद करनी चाहिए।

प्राकृतिक चिकित्सा के अलावा अन्य सभी चिकित्सा प्रणालियों द्वारा रोगों का अस्तित्व माना जाता है। अन्य सभी विभिन्न चिकित्सा प्रणालियों में बिमारियों के कुछ लक्षणों को देखते हुए बीमारियों का नाम दिया जाता है। उपचार प्रक्रिया के दौरान आकस्मिक लक्षण दिखने पर रोग का नाम भी बदल जाता है। किन्तु प्राकृतिक चिकित्सा प्रक्रिया अथवा प्राकृतिक चिकित्सा शास्त्र के अनुसार रोगों को नाम दिया जाना न तो महत्वपूर्ण है और न ही यह उसका निदान है क्योंकि हम लक्षणों के आधार पर रोगों के मूल

कारणों का पता नहीं लगा सकते है। अत: हम कह सकते है कि रोगों का उपचार बिना उसके मूल कारणों को जाने बिना अत्यधिक फायदेमंद नहीं है।

वर्तमान में उपयोग की जाने वाली तमाम निदान परीक्षणों की विधियाँ जैसे एण्डोस्कोपी, एक्स रे, अल्ट्रासाउण्ड, एम.आर.आई द्वारा निदान किए जाने पर कभी कभी रोगों का पूर्ण निदान नहीं होता है बल्कि इस दौरान प्रयोग किए जाने वाले विभिन्न तंरगों के प्रभाव द्वारा शरीर में अन्य बीमारियों के होने की भी आशंका बनी रहती है। प्राकृतिक चिकित्सा (i)ति में इस प्रकार के किसी भी परीक्षण किए जाने की कोई आवश्यकता नहीं होती है। बल्कि रोगी के द्वारा व्यक्तिगत रूप से खान-पान, रहन-सहन की आदतें तथा शारीरिक प्राण शक्ति एवं अवस्था के बारे में जानना जरूरी होता है। रोगी की जीवन शैली, दिनचर्या इत्यादि द्वारा स्वास्थ्य स्तर की जांच करना ही प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा किया जाने वाला वास्तविक निदान है। इस प्रक्रिया के माध्यम से रोगी को महत्वपूर्ण जानकारियां प्राप्त होती है जिसके द्वारा प्रत्येक व्यक्ति अपने स्वयं के स्वास्थ्य को पुन: प्राप्त कर सकता है। इस चिकित्सा प्रणाली के माध्यम से व्यक्तियों को निदान प्रदान करने के साथ उन्हें शिक्षित करने का भी कार्य किया जाता है।

रोग की परिभाषा और अर्थ -

पूर्ण स्वास्थ्य की अनुपस्थिति ही रोग है।

शरीर के अंदर एकत्र हुए विजातीय द्रव को प्रकृति द्वारा शरीर से निश्कासित किया जाने वाला प्रयास ही प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार रोग की स्थिति कहलाती है।

अनुचित और अप्राकृतिक ढंग से लिए जाने आहार विहार द्वारा स्वास्थ्य को खोना ही रोग है।

मानव शरीर की पूर्ण कार्य प्रणाली में होने वाला किसी भी प्रकार के असंतुलन की स्थिति रोग कहलाती है।

जल चिकित्सा के महान प्रवर्तक लुई कुने ने अपनी पुस्तक में New Science of Healing रोगों की एकता व उपचार की एकता पर Unity of Diseases Unity of Treatment जोर देकर विश्लेषण किया है। डॉक्टर जोजफ ने लिखा Disease in man for simply the result of decomposition in one form or other मनुष्य में समस्त रोग एक या दूसरे रूप में सीधे तौर पर गंदगी का फल है।

डॉ. डाइओ लेविस एम.डी. ने "Weak Lungs" में लिखा है। Local disease is an impossibility every disease must be systematic before it can assume any local expansion स्थानीय रोग असंभावित हैं। प्रत्येक रोग स्थानीय रूप धारण करने के पूर्व संपूर्ण शरीर से अवश्य ही संबंधित रहेगा। शरीर में रोग उत्पन्न होने का कोई ना कोई कारण अवश्य होता है। रोग शब्द रूप धातु से निश्पन्न है, जिसका अर्थ पीड़ा (दु:ख) कष्ट आदि से है। इसका विवरण अथर्ववेद में मिलता है। शरीर के अंदर विष (विजातीय द्रव्य का एकत्रित होना) जिसके लिए यक्ष्म शब्द का उल्लेख किया गया है।

''यक्षमाणां सर्वेशां विषं रिवोचमहम्''

बिना संपूर्ण शरीर के रोग ग्रसित हुए रोग का कोई भी लक्षण (स्थानीय रोग) प्रकट नहीं हो सकता जैसा कि डॉ. डरहन डनलयेन ने "Philosophy of the Bath" में कहा है। The Function of no one organ can be impaired without involving the whole system in the conrequence"

किसी भी एक अवयव की क्रिया संपूर्ण शरीर के खराब हुए बिना दोषपूर्ण नहीं हो सकती। इससे भी रोग की एकता प्रकट होती है। सभी रोग के लक्षण स्थानीय नहीं संपूर्ण शरीर से संबंधित होते है।

कृमि रोग का मुख्य कारण है जो अन्न या जल के माध्यम से प्रविष्टसहोकर शरीर को रोग ग्रस्त करता है। (अर्थर्ववेद 5/29 /6-6)

रोग का तीसरा कारण है - त्रिदोष (वात, पित्त, और कफ) जब तक शरीर स्वस्थ रहता है इसकी विषमता से शरीर रोगग्रस्त हो जाता है। (ऋग्वेद 1/3 4 /6)

यदि रोग की परिभाषा पर ध्यान देते हैं तो वह एक ऐसी दशा है जो जीवन को शक्ति, अवधि तथा आनंद इन सभी दष्टियोंसे सीमित कर देती है। रोग स्वास्थ्य की दशा से स्खलन है। व्यक्तियों का पारिस्थितिक अथवा प्राकृतिक संतुलन से वंचित होना रोगी दु:खी बनाता है। कई बार ऐसा होता है कि संतुलन की स्थिरता बहुत कम होती है। और निदान करने के साधन या उक्त परिवर्तन को लक्ष्य करने के जो साधन उपलब्ध होते हैं वे इतने अपर्याप्त होते हैं कि स्वास्थ्य में कमी को किसी रोग विशेष संज्ञा दे पाना असंभव होता है। विशिष्ट रोगों का निदान आमतौर से तभी हो पाता है जब वे मनुष्य के आंतरिक वातावरण में ऐसे महत्वपूर्ण परिवर्तन उत्पन्न करते हैं जिनमें पीड़ा, ज्वर, दुर्बलता इत्यादि लक्षण प्रकट होते हैं। ऐसी दशा में स्वास्थ्य का स्खलन बहुत व्यापक होता है और रोग के कारण जो भी हो लेकिन दिलचस्प तथ्य यह है कि बहुत से मामलों में रोग के द्वारा उत्पन्न परिवर्तन लक्षण प्रकट करने के योग्य प्रभावपूर्ण नहीं होते। इसका स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि इस प्रकार लक्षणहीन अथवा अतिस्वल्पकरोग का सरलता से निदान नहीं हो पाता। आयुर्विज्ञान और विशेष रूप से निरोधक आयुर्विज्ञान के क्षेत्र में आधुनिक प्रगतियों के फलस्वरूप किसी प्रकार का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ने के बहुत पहले ही स्वास्थ्य से स्खलन के रूप में अधिकाधिक रोगों का निदान किया जा सकता है।

'रोग' का शाब्दिक अर्थ है आराम अथवा सुख का अभाव, जिससे यह तथ्य महत्वपूर्ण हो जाता है कि स्वास्थ्य का मुख्य लक्षण अच्छा महसूस करना अथवा वातावरण के साथ पूर्ण संगति की अनुभूति करना है। यह अनुभूति अविश्वसनीय रूप से शरीर क्रिया तंत्रों के कार्य का परिणाम है। ये तंत्र भीतरी वातावरण का गतिविधि तथा कार्यक्षमता को सुरक्षित रखते हैं। बाहर के तत्व जो कि मूलत: शत्रु होते हैं, उनका सामना प्रभावपूर्ण तरीके से जिन संकुचित सीमाओं में आंतरिक समायोजन करने वाले तंत्र शरीर की सभी प्रणालियों के जरिए काम करते रहते हैं, खास तौर पर केन्द्रीय तंत्रिकातंत्र तथा अंत: स्रावी ग्रंथियों द्वारा नि:स्रवविताहार्मोनों के जरिए काम करते हैं। जीव के जीवित रहने के लिए उसके शरीर के तापमान को एक संकुचित परिसर के बीच रहना चाहिए और यदि उसे अधिकतम शरीर क्रियात्मक क्षमता के साथ अर्थात् पूर्णतम स्वास्थ्य की अवस्था में रहना हो तो उसके शरीर का तापमान और भी संकुचित परिसर के भीतर रहना चाहिए। इसी प्रकार शरीर के द्रव्यों की अम्लता, हृदय का निकास तथा विभिन्न अंगों में रक्त का प्रवाह, ऑक्सीजन की शरीर के भीतर प्रवेश करने वाली मात्रा तथा कार्बन डॉई ऑक्साइड का बाहर निकलना, आंतों क संचालन तथा शरीर के अन्य कार्यों का एक निश्चित परिसर के भीतर होते रहना आवश्यक है।

उपरोक्त तथ्यों से हम यह जान पाए है कि मनुष्य या कोई भी जीव जिस वातावरण में रहता है वह विरोधी वातावरण होता है। बाहरी वातावरण में ऐसे ढेर सारे प्रभाव मौजूद रहते है जो शरीर के आंतरिक नाजुक

संतुलन और एकरूपता को नष्ट करने के लिए तैयार रहते हैं और यही रोगों का मूल कारण होता है। अत्यधिक या निम्न तापमान, उचित पोषक तत्वों की कमी और ऊर्जा प्रदान करने वाले ऐसे पदार्थों का अभाव जो शरीर के सामान्य क्रियाकलापों के लिए आवश्यक होते है, भौतिक और रासायनिक घटकों को ऐसा संयोग जो शरीर के लिए हानिकारक है, परजीवी सूक्ष्म तथा अतिसूक्ष्म जीवाणुओं का संसार जो जीवित प्राणियों पर आक्रमण करते रहते हैं और अंत में अनिवार्य रूप से घटने वाली वह जैविक घटना जिसके अंतर्गत शरीर में व्ययजनन तथा वयोवृद्धि - ये सभी शरीर के संतुलन को बिगाड़ने के लिए बहुत हद तक उत्तरदायी होते हैं।

रोगी शरीर की पहचान के बिन्दु -

1 शरीर में शारीरिक क्रियाओं का असामान्य होना।

2 मीठी और गहरी नींद का न आना।

3 शौच क्रिया के दौरान मल का पतला या सख्त होना

4 भूख का अभाव

5 सिरदर्द का होना

6 जल्दी क्रोध का आना

7 किसी भी कार्य में अपने मन को स्थिर न कर पाना।

8 हर हमेशा आलस्य के भाव को महसूस करना।

9 किसी भी कार्य के दौरान जल्दी ही थकान को महसूस करना

10 हर हमेशा चिड़चिडेपन के स्वभाव को महसूस करना

11 हर हमेशा मसालेदार और चिकनाईवाले खाने की इच्छा होना

12 भोजन के उपरान्त भारीपन और भांति भांति की तकलीफें होना।

13 पेट का आकार छाती से बडा होना

14 शरीर और त्वचा से दुर्गन्ध आना।

15 सिर में बालों या गंजापन रोगी शरीर का परिचालक है।

16 वर्तमान समय में प्रचलित तरह तरह के मादक और नशीली दवाओं के सेवन का आदि होना।

17 शरीर के विभिन्न जगहों पर सृजन का होना

18 चहरे पर धब्बों, आखों के नीचे काले धब्बे इत्यादि का होना।

19 जीवन में सकारात्मकता का अभाव और नकारात्मक विचारों का प्रबल होना।

20 अन्य मनुष्यों, प्राणियों और प्रकृति के प्रति विध्वसात्मक कार्यों को किए जाने की प्रवृत्ति रखना।

रोग के प्रकार -

1 सहजन्य रोग - माता पिता के शुक्र दोष के द्वारा रोगों की उत्पत्ति पायी जाती है जिसमें मुख्य रूप से बबासीर, प्रमेह अथवा मधुमेह व कुष्ठ रोग इत्यादि पिता के अथवा माता के शुक्र में उत्पन्न हुए दोष के कारण पनपते हैं।

2 गर्भजन्य रोग - रोग के दौरान माता के द्वारा लिया गया मिथ्या आहार इसका मूल कारण होता है जिससे शिशु में कूबडापन या अपंगता के आने की संभावना होती है।

3 जातजन्म रोग - जन्म होने से पहले जब उपचार दिया जाता है उससे प्रभावित होकर पैदा होने वाले रोग को जातजन्य रोग कहते है।

4 पीड़ाजन्य रोग - चोट आदि से पैदा होने वाले रोग अपंगता, हड्डी का टूटना उसके द्वारा उत्पन्न अपंगता, क्रोध, शोक, भय व मानसिक रोग होते है।

5 कालजन्य रोग - इसमें ठंड (सर्दी) आदि के प्रभाव से अथवा अन्य दोष के प्रभाव से शरीर की रक्षा न होने पर उत्पन्न रोग

6 प्रभावजन्य रोग - गुरू या देवता की आज्ञा का उल्लंघन करने से उनके श्राप से उत्पन्न रोग।

7 स्वभावजन्य रोग - इसमें भूख, प्यास, ज्वर इत्यादि रोग स्वभावजन्य रोग होते है।

13 **8.सारांश**

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट हो गया कि केवल रोग की अनुपस्थिति को ही स्वास्थ्य जान लेना कभी भी उचित नहीं है। स्वास्थ्य प्राप्त करने हेतु कुछ आचार-विचार नियम, सिद्धान्त व आदतें तथा जीवन शैली का उचित रूप से पालन करते हुए उनकी मौलिक आवश्यकताओं को भी भली भांति जान कर जीवन का अंग बना लेना आवश्यक है। अन्यथा हमें पैत्रिक, दैनिक व भौतिक रूप से आने वाले रोगों को भुगतने के लिए तैयार हो जाना चाहिए। इन रोगों के आने के बाद किस प्रकार के संयम व आदतों को अपना कर इनके आने वाले भयंकर परिणाम शरीर पर भुगतने से बचा जा सकता है। कुछ ऐसे बिन्दुओं की भी चर्चा की गई जिनसे हमें ज्ञान हो जाता है कि हम रोग ग्रस्त हो चुके हैं। यह रोगग्रस्त अवस्था किस प्रकार हमारे शरीर में प्रवेश करती है तथा प्रवेश करने के पश्चात् हमारे शरीर को आतंकित कर उसे भयंकर पीडा प्रदान करता है।

13.9 **अभ्यासार्थ प्रश्न**

1 स्वास्थ्य का अर्थ एवं परिभाषा का वर्णन करें।

2 स्वास्थ्य के लक्षण एवं आवश्यक बिन्दुओं की व्याख्या करें।

3 रोग से आपका क्या अभिप्राय है? इसके लक्षणों को समझाइए।

4 स्वास्थ्य एवं रोग का आपस में क्या संबंध है? रोग के कारण का वर्णन करें।

13.10 **संदर्भ ग्रंथ सूची**

- प्राकृतिक आयुर्विज्ञान - राकेश जिन्दल
- प्राकृतिक स्वास्थ्य शास्त्र- आचार्य शेशाद्रि स्वामिनाथन्
- वृहद प्राकृतिक चिकित्सा - डॉ. ओ.पी. सक्सेना

इकाई 14

योग चिकित्सा की परिभाषाऐं

इकाई की रूपरेखा

14.1 उद्देश्य

14.2 प्रस्तावना

14.3 योग चिकित्सा की परिसीमाये

14.6 योग चिकित्सान्तर्गत सूर्यनमस्कार

14.7 सारांश

14.8 शब्दावली

14.9 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

14.10 सन्दर्भ ग्रंथ

14.11 निबन्धात्मक प्रश्न

14.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में निम्न विषयों का अध्ययन कर हम जान सकेगे कि योग की परिसीमायें कहॉ तक है। अष्ट सिद्वियॉ एवं अष्टऐष्वर्या, योग सिद्वि के समस्त भाव रोगों के शमन हेतु योग चिकित्सा, ध्यान एवं विधि नियम योग चिकित्सा में सूर्यमनस्कार, तथा अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस आदि का अध्ययन इस इकाई में किया जा रहा है।

14.2 प्रस्तावना

आज के इस भौतिकवादी यांत्रिक एवं आणविक युग की चकाचौध के युग में मानव समयाभाव के चलते अमर्यादित असंतुलित , तनावपूर्ण दिनचर्या, रात्रिचर्या एवं जीवन जी रहा है। दु:ख का विषय यह है कि भौतिक तथा कथित सुखों की तलाष में जानते हुये भी व्यक्ति तन- मन धन का दुरूपयोग कर बदले में रोग प्राप्त कर रहा है।

योग विलासी संस्कृति, अब्रह्मचर्य, प्रज्ञापराध, दूशित एवं मिलावटी आहार-विहार, कीटनाशक रसायनों से उत्पादित आहार सामग्री, इलेक्ट्रोनिक उपकरणों से उत्पन्न आणविक किरणों के दुश्प्रभावों , भा्रमक विज्ञापन आदि के कारण मनुष्य चिड़चिड़ा होकर तनावग्रस्त एवं बीमार हो रहा है।

योग एक दर्शन है, जीवन विज्ञान है। विश्व को दी जाने वाली भारतीय संस्कृति की अमूल्य कल्याणकारी देन है। जो प्रकृति के पुरुष में (जड़एवं चेतन)जीवात्मा एवं परमात्मा में, मन तथा शरीर में, सांसरिक द्वन्दों में एकता, शांत तथा सामजस्य योग विज्ञान के अभ्यास द्वारा संभव है।

जब सारी सृष्टि में एकात्मा, पूर्णता का भाव रखते है। जीव मात्र के कल्याण की कामना करते है। साथ-साथ प्रार्थना -मंत्र बालते है, तो मन मिलते है, दिल मिलते हैं, तो फिर मतभेद नहीं हो सकते हैं, अत: योगा जाति, धर्म, क्षेत्र, राष्ट्र, की सीमाओं से परे सर्वत्र एवं नित्य तथा सर्वकालिक विद्या है। जिसकी सीमायें अपरिसीमित है। भूण्डल से लेकर अंतरिक्ष मय जगत आकाश की समस्त सृष्टियों तक योग की अपार व्यापक परिसीमायें हैं।

14.3 **योग चिकित्सा की परिसीमायें**

योग का वास्तविक उद्देश्य तो (1) जीवात्मा का परमात्मा से मिलन था। (2) ब्रह्म की प्राप्ति। (3) आत्मा का स्वरूप -ज्ञान तथा (4) उसी आत्मसत्ता में स्वस्थ शरीर के माध्यम से समाधिस्थ होना। (5) चित्त की वृतियों का निरोध करते हुये (7) पूर्ण तत्त्व परमात्मा की प्राप्ति करना।

लेकिन आज मनुष्य योग के इस आध्यात्मिक पहलू से हट गया है। पात¥ुजल योग दर्शन में शरीर को यम- नियम का पालन करते हुये आसनों के द्वारा स्वास्थ्य शरीर बनाना तथा सुसंगठित मन की शांति एवं आनन्द हेतु प्राणायाम का अभ्यास करना है। गीता के त्रिविध में उपदेश यथा ज्ञान -भक्तिकर्म तथा क्रियायोग का क्रमशः मन, भावना, शरीर एवं उर्जा के द्वारा स्वास्थ्य प्राप्त करते हुये पूर्णतावादी दृष्टिकोण का अपनाकर विश्व कल्याण हेतु प्रयासरत होना है।

योग का जनसामान्य में उपयोग

(i) योग की परिसीमायें अनन्त है।
(ii) योग को सीमाओं में बांधा नहीं जा सकता है।
(iii) योग विश्व की समस्त जातियों से परें है।
(iv) योग विश्व ही क्या सम्पूर्ण सृष्टि का विषय है।
(v) योग जहॉ तक कि सृष्टि-ब्रह्माण है। सभी जगह पर इसकी सत्ता है।
(vi) योग समय सीमा में बाधा नहीं जा सकता है।
(vii) योग में पूर्व में भी था, आज भी है, तथा आगें भी रहेगा।
(viii) योग सार्वभौमिक एवं सर्वकालिक जीवन साधना की विद्या है।
(ix) योग पुर्णता प्राप्् करने की कला है।
(x) योग के द्वारा मानव एवं प्रकृति में स्नेह बढता है।
(xi) योग शरीर एवं मन में सामजस्य बिठाता है।
(xii) योग के द्वारा जीवन शैली में परिवर्तन होते हैं, जिससें हमारा स्वास्थ्य सुधरता है।
(xiii) योग से मन के अन्दर शरीर में भीतर जागरूकता पैदा करता है।
(xiv) योग व्यायाम मात्र ही नहीं अपितु आध्यात्मिक उत्कर्ष की साधना रूपी विद्या भी है।

(xv) योग के द्वारा स्वास्थ्य को प्रोत्साहन मिलता हैं।

(xvi) योग के द्वारा हम बीमारियों की रोकथाम करते है।

(xvii) योग के द्वारा हम स्वस्थ जीवन की शैली का प्रबधंन करते हैं।

(xviii) योग के द्वारा पूर्ण आत्मा की स्वतंत्रता जीव को प्राप्त होती है।

(xix) योग के द्वारा स्वास्थ्य एवं आनन्द की प्राप्ति होती है।

(xx) योग द्वारा इन्द्रियॉ प्रसन्न रहती है।

(xxi) योग द्वारा जाठराग्नि प्रदीप्त रहती है।

(xxii) योग के द्वारा पाचन पणाली स्वस्थ रहती है।

(xxiii) योग द्वारा शरीर एवं मन का सतुलन बनता रहता है।

(xxiv) योग द्वारा कुछ ना कुछ अवष्य कर लाभ प्राप्त कर सकते है।

(xxv) योग से जीवन शैली जन्य मोटापा, मधुमेह एवं हृदय आदि रोग दूर होते हैं।

(xxvi) योग के द्वारा मानव शरीर के सभी अंगावयवों, स्त्रोतसों एवं आषयों पर प्रभाव पडता है।

यह स्पष्ट है कि योग के द्वारा पांच भौतिक शरीर के अन्तर्गत सात धातुओं पर उनकी आरोग्यता हेतु प्रभाव पड़ता है, लेकिन ''अस्थि वह तंत्र'' एक ऐसा संस्थान है जहाँ सीधें सीधे योग के द्वारा विशेष प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं होता है। उदाहरण के लिये- किसी व्यक्ति की दुर्घटना के दौरान हाथ पैरों में फैक्चर (अस्थि- संधात) हो जाये तो उसे एक बार तो चिकित्सालय ले ही जाना पडेगा। चिकित्सकीय शल्यउपचार पटबन्धन आदि कराना ही श्रेष्ठ है। ऐसे में दुर्घटना पीडित व्यक्ति को यदि कपालभांति कराने लग जाये तो हम नहीं समझ सकते है कि उसकी आत्यायिक (इमरजेन्सी) परिस्थिति ठीक हो जायेगी।अत: योग का वात पित्त एवं कफ इन त्रिदोशों पर निष्चय रूप से प्रभाव होकर शरीर स्वस्थ करने में महती भूमिका हे। सप्त धातुओं में योग के द्वारा कोषिका के जीव द्रव्य पर नेनोटेक्नोलेजी के तहत रस, रत्त,मांस, मेद, भज्जा, एवं शुक्रादि सभी धातुओं पर योग का स्वास्थ्य संरक्षण एवं रोग निवारण दोनों प्रकार से पूरा पूरा लाभ मिलता है। जहॉ तक अस्थि वह स्त्रोरस या अस्थि धातु का प्रश्न है। वहॉ पर सीधे तौर पर तो नहीं पर किन्तु आषांष की कल्पनानुसार लम्बे समय बाद इस धातु पर भी आंषिक ही सही, लेकिन प्रभाव तो स्वास्थ्यानूकुल पड़ता ही है।

योग विज्ञान के प्रमुख निम्न क्षेत्र जहॉ योग की भूमिका को स्वीकारोक्ति मिली हुयी है।

(i) शिक्षण संस्थानों के सभी स्तरों पर सभी क्षेत्रों में योग की उपयोगिता

(ii) भारतीय चिकित्सा पद्वतियाँ जैसे - आयुर्वेद -नेचुरोपैथी,सिद्ध एवं यूनानी चिकित्सा आदि।

(iii) खेल में शारीरिक सौश्ठव एवं प्रतिस्पर्धा में विजय हेतु योग की उपादेयता।

(iv) औद्योगिक संस्थानों के सभी स्तरों में कार्यदक्षता बढ़ाने हेतु।

- मनोचिकित्सा के स्तरों में
- शारीरिक शिक्षा के क्षेत्र में।
- सुसंस्कारित नागरिक बनानें के क्षेत्र में।
- राजनेताओं एवं पन्द्रह वर्श के स्वास्थ्य समायोजन के क्षेत्र में।

- भृष्टाचार राकने के क्षेंत्र में।
- आत्मानुशासन के क्षेत्र में।
- सामाजिक एवं धार्मिक अनुशासन के क्षेत्र में।
- चिकित्सा पर बढ रहें आर्थिक बजट को कम करने के क्षेत्र में।
- वैश्विक शांति के क्षेत्र में।
- परोपकार के क्षेंत्र में।
- व्यक्तिगत जीवन के सर्वागींण विकास के क्षेंत्र में।
- शारीरिक एवं मन के सौन्दर्य संवर्धन हेतु।
- समुदायिक स्वास्थ्य प्रबन्धन हेतु।
- आर्थिक रूप से कमजोर लोगों के स्वास्थ्य हेतु।
- मोक्ष एवं कैवल्य प्राप्ति के क्षेत्र में।
- प्रकृति एवं पुरुष में सामजस्य हेतु।
- बीमारियों को राकने हेतु(शिक्षा के सभी क्षेत्रों में)
- बीमारियों को रोकने हेतु (समाज के सभी क्षेंत्रों में)
- आध्यात्मिकता के क्षेंत्र में। मानव जीवन सफल बनाने के क्षेत्रों में

अत: योग की अपनी कोई सीमा नहीं है। अंश्टागयोग के द्वारा सम्यक् स्वास्थ्य पाप्ति के लिये महर्षि पतंजली शारीरिक - मानसिक एवं आत्मिक शुद्वि हेतु इन आठ सोपानों (1) यम ((ii) नियम;(iii)आसन ;पअद्ध प्राणायाम ;अद्ध प्रत्याहार ;अ(i)धारणा ;अ(ii)ध्यान एवं समाधि का वर्णन किया।

यम नियमों का पालन करने से शरीर को सांसारिक द्वन्द परेषान नहीं करते। द्वन्दहीन शरीर में प्राणों का संचालन स्वुच्छानुसार किया जा सकता है।जब प्राण स्वाभाविक इच्छानुसार गति करता है तो बुंद्वि स्थिर हो जाती है तथा बुद्विके स्थिर होने पर विवेक ज्ञान प्राप्त होता है। बुंद्वि से विवेक की प्राप्ति होने पर मन के निग्रह अर्थात् वष में करने की योग्यता आ जाती है। मन के वषीकरण उपरान्त ज्ञानेन्द्रियाँ एवं कर्मेन्द्रियॅा भी स्वत: संयम में आ जाती है। जिससे प्रत्याहार की स्थिति उत्पन्न होती है। ‘‘प्रत्याहार ‘‘की स्थिति में ‘‘ अंहकार का भावष् समाप्त हो जाता है। तथा चित्त अर्थात् मन- बुद्वि - अंहकार शांत होने लगता है।षांत चित्त के द्वारा धारणा ध्यान एवं समाधि की प्राप्ति होती है। इन तीनों को ‘‘संयम योगष् कहा जाता है। जिससे शांति - आनन्द एवं कैवल्य की साक्षात् अनुभुमि होकर परमात्मा साक्षात्कार होता है।

संयम से भूत एवं भविश्य सदृष्ट होकर उनका ज्ञान / अभ्यास होता है। श्रद्वापुर्वक मन, वचन, एवं कर्म से यमों का नियमों के द्वारा पालन करना चाहिए। शरीर का शटकर्मों, यथा: -नेती,धोती, कुंजल, नौली, त्राटक तथा कपालभाति की क्रियाओं को करने से शरीर का प्राकृतिक शोधन एवं विकास होता है। प्राणायाम के द्वारा ‘‘स्थिरता’’ तथा प्रत्याहार द्वारा मन का निग्रह हेतु धारणा फिर ध्यान एवं अन्त में

ध्यान की गहराई के अनुरूप ही सम्यक समाधि की प्राप्ति होती है। जड शरीर की सम्यक शुद्वि होने बाद चित्त (मन, बुद्वि,अंहकार) की शुद्वि होने पर सम्यक स्वास्थ्य (मोक्ष, निर्वाण, परमपद) अर्थात कैवल्य को प्राप्त किया जा सकता है। यही योग का आत्मानुशासन एवं श्रेष्ठ प्रबन्धन है जो कि मोक्ष (कैवल्य) की ओर प्रेरित करता है।

14.6 **योग चिकित्सान्तर्गत सूर्यनमस्कार**

योग की परिसीमाओं में सूर्यनमस्कार को किसी एक देश से बांधा नहीं जा सकता है। सूर्य नमस्कार बारह आसनों का पुंज है। जिसमें शरीर के सभी प्रकार के मूमेन्ट (गतियॉ) समाहित होते है। पूरक रेचक के साथ इन आसनों को करने से प्राणायाम का भी इसमें समावेश हो जाता है। मंत्रों के साथ करने से सकारात्मक भाव पैदा होता है। एवं मन एकाग्र होता है।

इस इकाई में इस विषय को इसलिये भी समाहित किया जा रहा है कि वास्तव में सूर्यनमस्कार वह प्रक्रिया नहीं कि जिसमें सूर्य की आराधना-उपासना पूजा आदि की जाती है। यह तो शारीरिक सौश्ठव एवं मानसिक शांति प्राप्त करने के लिये सम्पूर्ण शरीर की व्यायाम पद्वति है।आज के भागमभाग के समय में समयाभाव के कारण यदि सूर्यनमस्कार पद्वति को भी अपनाया जाये तो इसमें आयु, प्रज्ञा, बल एवं वीर्य ओजगुण की प्राप्ति होगी। कोई व्यक्ति किसी भी देश का व्यक्ति क्यों न हो वह सूर्य की ताकत शक्ति को पहचाने बिना नहीं रह सकता। सूर्य किसी भी धर्म- जाति-मजहब विशेष का नहीं है। हम सूर्यनमस्कार कि पद्वति के द्वारा जिसकी की पूजा अर्चना (i)ति को मानते हो उसका ध्यान करते है। उसका स्मरण, उनके आप्त वाक्य दोहराकर बारह आसन कर सकते है। इन बारह आसनों का स्थितयों का इस इकाई में वर्णन नहीं कर केवल सूर्यनमस्कार के 12 आसनों का वैज्ञानिक चकित्सकों कि दृष्टि से विभिन्न संस्थानों पर होने वाले प्रभाव- लाभों का संक्षेप में वर्णन निम्नानुसार किया जा रहा है।

(i) ‘‘वसन वह संस्थान-त्मेचपतंजवतल लेजमउए पूरक रेचक करने से फुफ्फुसों में ताजी स्वच्छ आक्सीजन प्राप्त होती है। हस्तउतानासन में ऐसा ही होता है।

(ii) रक्त परिसंचरण संस्थान-ब्पतबनसंजवतल लेजमउ सूर्य नमस्कार को (i)ति से रक्त प्रवाह बढता है। रक्त के माध्यम से प्राणवायु कोशिकाओं तक सुचारू पहुॅंचने से हृदय सहित सभी अंग अवयव स्वस्थ रहते है।

(iii) पाचन संस्थान-क्पहमेजपअम लेजमउ खिंचाव , तनाव, एवं शरीर को ढीला छोड़ने से पाचन शक्ति मजबूत होती है। हस्तपदासन में उदर के अगांवयवों जैसे कि यकृत, वृक्क, पित्ताषय, गर्भाषय, सभी की मालिश जैसी क्रिया होती है। जिससे कि पाचन तंत्र सही रहता है।

(iv) अष्वसंचालन की स्थिति में खिचावं होने से जननांग अर्थात् पुरुष तथा महिलाओं के स्वस्थ होते है।

(v) पर्वतासन- इस स्थिति में भुजायें, पैर की स्नायुएवं पेषियाँ मजबूत होती है। मेरूदण्ड मजबूत होता है। वेरीकोज वेन टमतपबवे टमपदेद्धषिराषोथ दूर होने में सहायक है।

साष्टांग नमस्कारासन- इससे वक्ष का विकास, सीना चौडा होता है, कंधे एवं भुजायें मजबूत होती है। मणिपुर चक्र में उद्दीपन होता है। जिससे वक्ष स्थल एवं उदर प्रदेश स्वस्थ रहता है।

भुजगांसन- वक्ष एवं उदर पर गतिशील प्रभाव होने से ‘‘वास, दमा, गुर्दे, की बीमारी यकृत की अनेक बीमारियाँ दूर होती है। यकृत(लीवर) में पोशक, तत्त्वों की रासायनिक प्रक्रिया सम्यक् होती है।

पुन: अष्वसंचालनआसन, पष्चिमोतानासन, (पादहस्तासन) ताडासन, नमस्कारासन, आदि पूर्ववृत क्रियाओं के पूर्ववत लाभ प्राप्त होते है।

सूर्य नमस्कार द्वारा शरीर एवं मन में लचीलापन का विकास होता है। मानसिक संतंलन प्राप्त होता है। नकारात्मक भाव समाप्त हो जाते है। आत्म हत्या करना तो दूर इसका विचार भी मन में नहीं आता है।नकारात्मक भाव समाप्त हो जाते है।

उत्सर्जन संस्थान-भुजगांसन, अष्वसंचालासन, से उत्सर्जन संस्थान स्वस्थ होत है।

स्नायुमण्डल मेरूदण्ड सीधा होकर उसमें लचीलापन आने के कारण से मस्तिष्क की नाडियाँ कियाशील होकर पाडी जन्य रोगों को दूर करने में सहायक होती है।

अन्त: स्त्रावी ग्रथियों पर (पीयूशिका ग्रथिं) च्पजनपजंतल ज्ीलतवपक ळसंदकद्ध ;चंद्बतपमेळसंदकद्ध अधिवृक्क ग्रथिं ;।कतपदंस ळसंदकद्ध अग्नाषय जननांग ग्रथि ;त्मचतवकनबजपअम ळसंदकद्ध सभी प्रकार की सकारात्मक प्रभाव पडता है।

शरीर सुसंगठित एवं मजबूत होता है। मोटापे का विनाश हो जाता है। अत: सूर्यनमस्कार एक योग की वैज्ञानिक चिकित्सा है पद्वति है जो कि ये पद्वति सम्पूर्ण विश्व में जहॉ भी व्यक्ति इसका अभ्यास करें वह इससे शारीरिक, मानसिक, बौद्विक, आत्मिक, एवं आध्यात्मिक, उन्नति प्राप्त कर स्वास्थ्य का संरक्षण तथा व्याधियॅा, का विनाश कर करते हुए लाभ प्राप्त कर सकता है। इससे शारीरिक एवं मानसिक स्वस्थता तथा शांति आनन्द प्राप्त होता है।

14.7 **सारांश**

प्राचीन भारतीय परम्परागत योगचिकित्सा का आध्यात्म के साथ साथ स्वास्थ्य ्रपाप्ति में योगदान में हेतु इसका परिसीमायें ,अष्टसिद्वियॅा, हटयोग सिद्विकर भाव ध्यान विधि एवं नियम, रोगों, की चिकित्साऐं हेतु योगासन, योग चिकित्सा की वैज्ञानिकता, योग चिकित्सा में सूर्य नमस्कार एवं अन्तर्राशटीय योग दिवस योगदिवस का संक्षेप में वर्णन किया गया है। इस वण्रन के अन्तर्गत हम सार रूप में अध्ययन कर पाये कि समग्र आरोग्य की प्राप्ति में आत्मिक विकास एवं आध्यात्मिक लक्ष्य को पा्रप्त करते हुये सृष्टि क अन्य जीवधारियों प्रकृति आदि के साथ समाजस्य करते हुये विश्व को शातिमय एवं निरोग बनानें के लिये प्रयास में योग की सराहनीयमहत्त्वपूर्ण भूमिका के द्वारा समभव है। जो कि व्यक्ति से प्रारम्भ होकर परिवार-समाज - राष्ट्र एवं विश्व में सभी के लिये कल्याणकारी है।

14.8 शब्दावली

- सांसारिक द्वन्द - दिनचर्या शुभ, अषुभ जड - चेतन, दिन - रात, लाभ हानि, यष-अपयष आदि
- अपरिसीमित - व्यापक एवं विषाल जिसकी कोई सीमा ना हो।
- अष्ट ऐष्वर्य - योग के सतत अभ्यास से प्राप्त आठ विशेष शक्तियॉ
- ‘‘ल्यापचार - आधासज दुर्घटना की द्वारा चिकित्सा
- संयम योग - धारणा, ध्यान, समाणि का संयुक्तानाम
- वषीकरण - दुसरें को वष में कर उसके जैसा वैसा ही करना
- इश्टष्चातदर्शनम् - इच्छानुसार गायब एवं प्रकट होना।
- चेष्टा - क्रिया करना
- प्रष्वास - रेचक ‘‘वास को बाहर निकालना
- जनसड.ग् - सामान्य लोगों के साथ में रहना
- मणिपुर - नाभि में स्थित चक्र का नाम
- अनाहत - हदय स्थित चक्र का नाम
- ओज - सप्त धातुओं का सार भाग
- संगच्छध्वम् - साथ साथ चलें/ गमन करना
- कल्याण - मंगल (दूसरों) का भला करना

14.9 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. योग की आठ सिद्वियाँ कौनसी है?
2. आट ऐष्वर्यो का वर्ण कीजिये?
3. ध्यान के नियम बताइये?
4. सूर्यनमस्कार के पांच प्रकार के लाभ बताओ?
5. अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस का उद्देश्य बताइये?

14.10 सन्दर्भग्रंथ

- प्रार्थना ऊँ संगच्छध्वम्- ऋग्वेद - 10.191.2
- पूर्ववत योग विज्ञान का परिचय -ओ. एन. तिवाडी
- चिकित्सा विज्ञान एवं पंचकर्म - डॉ. श्रीमती विमला शर्मा

- चरक संहिता ''पिद्योतनी'' - पं. काशीनाथ शास्त्री
- पतनजल योग दर्शन - डॉ. नित्यानन्द शर्मा
- आयुर्वेद दीपिका - टीका चक्रपाणिकृत
- योग वशिष्ठ - वासुदेव लक्ष्मण शास्त्री
- प्राणायाम - स्वामी कुवलयानन्द
- आयुर्वेद प्रबोध - डॉ. श्रीमती विमला शर्मा
- हठ योग प्रदीपिका - डॉ. पीताम्बर झा
- अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस गाइड लाइन - केन्द्रीय योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा अनुसंधान परिषद् आयुष मंत्रालय

14.11 **निबन्धात्मक प्रश्न**

1. आधुनिक प्ररिपे्रक्ष्य में योग की परिसीमायें बताइये?
2. योग सिद्वि के भाव एवं बाधक कारणों का वर्णन कीजिये?
3. योग चिकित्सा के द्वारा रोग निवारण का वर्णन कीजिये?
4. योग चिकित्सा में सूर्यनमस्कार पद्वति के वैज्ञानिक लाभ बताइये?
5. अन्त्तराष्ट्रिय योग दिवस का परिचय देते हुये इसका विषद वर्णन कीजिये?

इकाई – 15

सामान्य योग अभ्यासक्रम (प्रोटोकाल)

इकाई की रूपरेखा

15.1 उद्देश्य
15.2 प्रस्तावना
15.3 अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस परिचय
15.4 योग विज्ञान का परिचय
15.5 सामान्य योग प्रोटोकाल भाग – I
15.6 सामान्य योग प्रोटोकाल भाग – II
15.7 सारांश
15.8 बोधात्मक प्रश्न
15.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

उद्देश्य

इस इकाई में हम निम्न विषयों का अध्ययन करेंगे :-

- योग परिचय, इतिहास, विकास, एवं आधारभूत तथ्य,
- पारम्परिक योग, सामान्य दिशा - निर्देश, सात्त्विक विचार (आहार)
- योग का वैज्ञानिक आधार
- प्रार्थना एवं शिथिलीकरण अभ्यास
- बीस योगासन
- कपाल भाति
- प्राणायाम
- ध्यान, संकल्प एवं शांति पाठ

15.2 प्रस्तावना

अंतर्राश्ट्रीय योग दिवस परिचय

इस इकाई में आज के युगानुसार संदर्भ में ''अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस'' का भी सक्षिप्त स्वास्थ्य की दृष्टि से वर्णन किया जा रहा है। वास्तव में योग का कोई सीमायें नहीं होती। आज योग द्वारा चिकित्सा 21 जुन 2015 के बाद से को अन्तर्राष्ट्रीय योगदिवस के साथ विश्व व्यापी बन गयी है। योग चिकित्सान्तर्गत् पंचयमों का पालन कर सम्पूर्ण विश्व में हम शान्ति का भाव उत्पन्न कर सकते है।

27 सितम्बर 2014 को संयुक्त राष्ट्र महासभा में 69 वें सत्र में भारत के माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने विश्व समुदाय से अंतर्राश्ट्रीय योग दिवस मनाने का आहान किया। 5 दिसम्बर, 2014 को संयुक्त राष्ट्र महासभा के 193 सदस्यों ने रिकार्ड 177 के समर्थक देशों के साथ 21 जून को ‘‘ अंतर्राश्ट्रीय योग दिवस’’ मनाने का संकल्प सर्वसम्मति से अनुमोदित कर दिया। 21 जून वर्श का सबसे बड़ा दिन होता है, इसलिये विकास की दृष्टि से इसदिन को ‘‘योग दिवस’’ के रूप में माना है। भारत में प्रत्येक पंचायत स्तर से नीचे 21 जून 2015 को सामूहिक योगाभ्यास निर्धारित प्रोटोकॉल के अनुसार सम्पन्न हुये।

स्वास्थ्य से सम्बन्धी अवधारणाओं को ध्यान में रखते हुये “केन्द्रिय योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा अनुसंधान परिशद “एवं भारत सरकार के ‘‘आयुश योग “ मंत्रालय के द्वारा विश्व में पहली बार 21 जून 2015 को अन्र्तराश्टीय योग दिवस को 33 मिनट के “कामन प्रोटोकालष् के तहत पहली बार मनाया गया।

इस सामूहिक योग अभ्यास की सार्वकालिक, सार्वभौमिक ऋग्वेद की प्रार्थना से इसे प्रारम्भ किया गया है। जो कि निम्न प्रकार से है-

ऊ संगच्छध्वं, संवदध्वं , सं वो मंनासि जानताम्।

दवा भागं यथा पूर्वे, सन्जानाना उपासते।। (ऋग्वेद)

अर्थात हम साथ गमन करें साथ -साथ चलें और

हम साथ -साथ एक सुर में बोले,

हम सब अपने मन कों समचित्त बनायें जैसा कि यह पूर्व में था।

आइये, ईष्वरत्व को अपनी अपनी उपासना में झलकनें दें।

षिथली करण के तीन अभ्यास - ग्रीवाचालन, कटि एवं घुटना संचालन

खड़े होकर किये जोन वाले पांच आसन है-

1. ताडासन - शरीर में स्थायित्व एवं लम्बाई बढ़ाने में सहायक
2. वृक्षासन - शरीर संतुलन, पैरों की मांसपेषियां मजबूत होती है।
3. पादहस्तासन - मेरूदण्ड लचीला, कब्ज नाशक, योनि दोष निवारण हेतु
4. अर्धचक्रासन - मेरूदण्ड लचीला, सवाईकल स्पोनोडो ाइटिस में श्रेष्ठ
5. त्रिकोणासन - पिण्डली, जंघा, कटि की मांसपेषिया सुदृढ़ होती है।

बैटकर किये जाने वाले चार आसन है।

1. भद्रासन - घूटनों का दर्द, मासिक धर्म के समय पेट दर्द से मुक्ति
2. अर्धउश्टासन - कब्ज, पीठ दर्द, मेरूदण्ड लचीला
3. शंषकासन - तनाव क्रोध एवं कब्ज को दूर कर पीठ दर्द से मुक्ति
4. वक्रासन - वक्रासन मधुमेह नाशक, लचीलापन बढ़ता ।

पेट के बल किराये जाने वाले तीन आसन है।

01- भुंजगासन - तनाव, पीठ दर्द, ‘‘वास दमा एवं मोटापा दूर करता है।

02- शलभासन - साइटिका, कमर के नीचे का दर्द दूर करता है।

03- मकरासन - तनाव, चिन्ता पीठ कमर का दर्द दूर करता है।

पीठ के बल किये जाने वाले आसन निम्न है।

01- सेतुबंधासन - अवसाद, चिन्ता, कब्ज आदि दूर होते है।

02- पवनमुक्तासन - कब्ज, अपानवायु ठीक करता है।

03- शवासन - तनाव से मुक्त, मन एवं शरीर को विश्राम

कपालभांतिक्रिया नाडी शोधन या अनुलोभ विलोम एवं भा्रमरी प्राणायाम , शाम्भवी मुद्रा में ध्यान, संकल्प एवं विश्व के कल्याण हेतु शांतिपाठ करना आदि।

अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस उपयोगिता निम्नानुसार है-

1. योग के स्वास्थ्य
2. सामंजस्य एवं शान्ति के लिये योग करना
3. सम्भावनाओं को सम्भव करने के लिये योग
4. प्रकृति एवं मानव में सामजस्य करने के लिये योग
5. सम्पूर्ण विश्व का कल्याण एवं आरोग्य प्राप्ति हेतु योग करना।
6. बीमारियों की रोकथाम हेतु योग करना।
7. स्वास्थ्य के संरक्षण हेतु योग।
8. पूर्ण आरोग्यता प्राप्ति के लिये योग
9. पूर्ण स्वतंत्रता हेतु योग
10. पूर्ण स्वाध्याय एवं स्वास्थ्य हेतु योग
11. पूर्ण स्वतंत्रता एवं सांसरिक द्वन्दो में समाजस्थ्य करने हेतु योग
12. स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता के लिये योग
13. योग द्वारा

योग के आधार चार स्तम्भ चार प्रकार के है-

(i) शरीर (कर्मयोग)

(ii) मन (ज्ञानयोग)

(iii) भावना (भक्ति योग)

(iv) उर्जा क्रिया योग

(v) इन चारों स्त्रों पर योग का प्रभाव पडता है।

भारतीय ऋषि मुनियों ने सतत तपस्या रुपी साधना करते हुये जीवन के वास्तविक आनन्द-सुख एवं शांति की प्राप्ति के लिए दीर्घ कालीन सतत अभ्यास के उपरान्त योग का अविष्कार किया हैं | आज के भौतिकवादी यांत्रिक युग में आहार की अनियमितता, शुद्ध प्राण वायु की कमी, शारीरिक व्यायाम की कमी तथा सदैव तनाव एवं चिन्ताग्रस्त प्रदूषित दिनचर्या के कारण नित नवीन रोग पैर पसारते हुये वैशिक जगत में मानव को अशांत एवं रोग ग्रस्त कर रहे हैं | ऐसे में मनुष्य के शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक रूपेण पूर्व स्वास्थ्य की प्राप्ति में योग की सम्पूर्ण विश्व में महती आवश्यकता हैं | योग हमारे भारतीय संस्कृति की सम्पूर्ण विश्व को " महान मानवतावादी " अर्थात् " वसुधैव कुटुम्बकम् " की भावना रुपी देन हैं | प्रस्तुत इकाई में " सर्वेभवन्तु सुखिन: " की भावना से " परस्पर सामंजस्य एवं शांति के लिए " अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस जो कि 21 जून को एक साथ सम्पूर्ण विश्व में मनाया जाता हैं उसके सामान्य योग अभ्यास क्रम (प्रोटोकाल) का आयुष मंत्रालय (भारत सरकार) के अनुसार वर्णन किया जा रहा हैं|

15.3 अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस परिचय एवं विवेचन

सामान्य योग अभ्यासक्रम (प्रोटोकॉल)

परिचय

27 सितम्बर, 2014 को संयुक्त राष्ट्र महासभा (यू एन जी ए) के 69 वें सत्र को संबोधित करते हुए भारत के माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने विश्व समुदाय से अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस मनाने का आह्वान किया |

श्री मोदी ने कहा , " योग प्राचीन भारतीय परम्परा एवं संस्कृति की अमूल्य देन है | योग अभ्यास शरीर एवं मन; विचार एवं कर्म; आत्मसंयम एवं पूर्णता की एकात्मकता तथा मानव एवं प्रकृति के बीच सामंजस्य स्थापित करता हैं | यह स्वास्थ्य एवं कल्याण का पूर्णतावादी दृष्टिकोण हैं | योग मात्र व्यायाम नहीं है, बल्कि स्वयं के साथ एकत्व खोजने का भाव है | योग हमारी जीवन शैली में परिवर्तन लाकर हमारे अन्दर जागरूकता उत्पन करता है तथा प्राकृतिक परिवर्तनों से शरीर में होने वाले बदलावों को सहन करने में सहायक हो सकता है | आइए हम सब मिलकर योग को अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस के रूप में स्वीकार करने की दिशा में कार्य करे | "

11 दिसम्बर, 2014 को संयुक्त राष्ट्र महासभा के 177 सह-समर्थक देशों के साथ 21 जून को "अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस" मानाने का संकल्प सर्वसम्मति से अनुमोदित किया | अपने संकल्प में संयुक्त राष्ट्र महासभा ने स्वीकार किया की योग स्वास्थ्य एवं कल्याण के लिए पूर्णतावादी दृष्टिकोण प्रदान करता है| योग विश्व की जनसंख्या के स्वास्थ्य के लिए तथा उनके लाभ के लिए विस्तृत रूप में कार्य करेगा | योग जीवन के सभी पहलुओं में सामंजस्य बैठाता है और इसीलिए बीमारी रोकथाम, स्वास्थ्य संवर्द्धन और जीवन शैली-संबंधी कई विकारों के प्रबंधन के लिए जाना जाता है |

प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस

आयुष मंत्रालय ने 21 जून , 2015 को राजपथ ,नई दिल्ली में प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस का सफल आयोजन किया| दो गिनीज विश्व रिकॉर्ड –35,985 प्रतिभगियो के साथ सबसे बड़ा योग सत्र तथा अभ्यास सत्र में सर्वाधिक देशो (84) के नागरिकों की प्रतिभागिता बने | विज्ञान भवन में 21 एवं 22 जून , 2015 को " सम्पूर्ण स्वास्थ्य के लिए योग " विषय पर दो दिवसीय अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठी आयोजित हुई जिसमे भारत तथा विदेश से लगभग 1300 प्रतिनिधियों ने भाग लिया | पहली बार आयोजित इस अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस में भारत और दुनिया के लाखों लाख लोगों ने भागीदारी की |

जनसामान्य के बीच योग के प्रति जागरूकता का प्रसार करने हेतु सामान्य योग शिष्टाचार एवं योग की डीवीडी तैयार की गई |

आयुष मंत्रालय और विभिन्न योग संस्थानों व संगठनों के साथ मिलकर विदेश मंत्रालय द्वारा भारत के बाहर युद्धग्रस्त यमन के अतिरिक्त सभी यूएनजीए सदस्य देशो में अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस का आयोजन किया गया |

इस इकाई का उद्देश्य व्यक्ति विशेष और समाज में रहने वाले सभी लोगों के लिए योग और यौगिक क्रियाओं का विस्तृत सारगर्भित ज्ञान प्रस्तुत करना है | सामान्य योग अभ्यासक्रम का यह वर्तमान संस्करण पिछले वर्ष के योग अभ्यासक्रम का ही संवार्धित संस्करण है | यौगिक सूक्ष्म व्यायाम, योगासन और प्रणायाम जेसे कुछ महत्त्वपूर्ण यौगिक क्रियाओं को इस द्वितीय परिवर्तित संस्करण में जोड़ा गया हैं | प्रमुख योग संस्थानों में संस्थानिक योगाभ्यास के रूप में संकल्प से पूर्व 45 मिनट के सामान्य योग

अभ्यासक्रम के अतिरिक्त 15 मिनट के विशेष यौगिक अभ्यास प्राणायाम,योग निंद्रा, ध्यान, सत्संग इत्यादि का प्रावधान किया गया है | इस तरह आईडीवाई में योगभ्यास की कुल समयावधि1 घंटे की हैं |

15.4 योग विज्ञान का परिचय

(i) **योग क्या है ?**

सार रूप में कहें तो योग आध्यात्मिक अनुशासन एवं अत्यंत सूक्ष्म विज्ञानं पर आधरित ज्ञान है जो मन और शरीर के बीच सामंजस्य स्थापित करता है | यह स्वस्थ जीवन की कला एवं विज्ञान हैं | संस्कृत वाङ्मय के अनुसार योग शब्द युज् धातु मे घञ्प्रत्यय लगाने से निष्पन्न हुआ है| पाणिनीय व्याकरण के अनुसार यह तीन अर्थो में प्रयुक्त होता है | (1)- युज् समाधौ = समाधि (2)- युजिर योगे = जोड़ (3)- युज् संयमने = सामंजस्य | यौगिक ग्रंथो के अनुसार , योग अभ्यास व्यक्तिगत चेतनता को सार्वभौमिक चेतनता के साथ एकाकार कर देता है | आधुनिक वैज्ञानिकों के अनुसार ब्रहमांड में जो कुछ भी है वह परमाणु का प्रकटीकरण मात्र है | जिसने योग में इस अस्तित्त्व के एकत्त्व का अनुभव कर लिया है,उसे योगी कहा जाता है, योगी पूर्ण सवतंत्रता प्राप्त कर मुक्तावस्था को प्राप्त करता है | इसे ही मुक्ति ,निर्वाण ,कैवल्य या मोक्ष कहा जाता है |

"योग" का प्रयोग आंतरिक विज्ञान के रूप में भी किया जाता है, जो विभिन्न प्रकार की प्रक्रियाओं का सम्मिलन है, जिसके माध्यम से मनुष्य शरीर एवं मन के बीच सामंजस्य स्थापित कर आत्म साक्षात्कार करता है | योग अभ्यास (साधना) का उद्देश्य सभी त्रिविध प्रकार के दु:खों से आत्यन्तिक निवृत्ति प्राप्त करना है, जिससे प्रत्येक व्यक्ति जीवन में पूर्ण स्वतंत्रता तथा स्वास्थ्य,प्रसन्ता एवं सामंजस्य का अनुभव कर सकें |

(ii) **योग का संक्षिप्त इतिहास एवं विकास**

योग विद्या का उद्भव हजारों वर्ष प्राचीन है | श्रुति परंपरा के अनुसार भगवान शिव योग विद्या के प्रथम आदि गुरु ,योगी या आदियोगी है | हजारों-हज़ार वर्ष पूर्व हिमालय में कांति सरोवर झील के किनारे आदियोगी ने योग का गूढ़ ज्ञान पौराणिक सप्त ऋषियों को दिया था | इन सप्त ऋषियों ने इस अत्यंत महत्वपूर्ण योग विद्या को एशिया, मध्यपूर्व, उत्तरी अफ्रीका एवं दक्षिण अमेरिका सहित विश्व के अलग-अलग भागो में प्रसारित किया | आधुनिक विद्वान सम्पूर्ण पृथ्वी की प्राचीन संस्कृतियों में एक समानता मिलने पर अचंभित है, यह एक अत्यंत रोचक तथ्य है|वह भारत भूमि ही है,जहां पर योग की विधा पूरी तरह अभिव्यक्त हुई | भारतीय उपमहाद्वीपो में भ्रमण करनेवालेसप्त ऋषियों एवं अगस्त्य मुनि ने इस योग संस्कृति को जीवन के रूप में विश्व के प्रत्येक भाग में प्रसारित किया |

योग का व्यापक स्वरूप तथा उसका परिणाम सिंधु एवं सरस्वती नदी घाटी सभ्यताओं 2700 ई. पू.-की अमर संस्कृति का प्रतिफलन माना जाता है | योग ने मानवता के मूर्त और आध्यात्मिक दोनों रूपों को महत्वपूर्ण बनाकर स्वयं को सिद्ध किया है | सिंधु सरस्वती घाटी सभ्यता में योग साधना करती अनेक आकृतियों के साथ प्राप्त ढ़ेरों मुहरें एवं जीवाश्म अवशेष इस बात के प्रमाण है कि प्राचीन भारत में योग का अस्तित्व था | सरस्वती घाटी सभ्यता में प्राप्त देवी और देवताओ कि मूर्तिया एवं मुहरे तंत्र योग का सन्देश देती है| वेदिक एवं उपनिषद परम्परा, शैव, वैष्णव तथा तांत्रिक परम्परा, भारतीय दर्शन, रामायण

एवं श्रीमद् भगवद्गीता समेत महाभारत जैसे महाकाव्यों, बौद्ध एवं जैन परम्परा के साथ साथ विश्व की लोक विरासत में भी योग मिलता है|योग का अभ्यास पूर्व वेदिक काल में भी किया जाता था | महर्षि पतंजलि में उस समय के प्रचलित प्राचीन योग अभ्यासों को व्यवस्थित व वर्गीकृत किया और उनके निहितार्थ और इससे सम्बंधित ज्ञान को पांतजलयोगसूत्र नमक ग्रन्थ में क्रमबद्ध तरीके से व्यवस्थित किया |

पतंजलि के बाद भी अनेक ऋषियों एवं योग आचार्यो ने योग अभ्यासो और यौगिक साहित्य के माध्यम से इस क्षेत्र के संरक्षण और विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया | प्रतिष्ठित योग आचार्यों की शिक्षाओं के माध्यम से योग प्राचीन काल से लेकर आज सम्पूर्ण विश्व में प्रसारित हुआ | आज सभी को योग अभ्यास से व्याधियों के रोकथाम, अच्छी देखभाल एवं स्वास्थ्य लाभ मिलने का दृढ़ विश्वास है | सम्पूर्ण विश्व में लाखों लोग योग अभ्यासों से लाभान्वित हो रहे हैं | योग दिन-प्रतिदिन विकसित और समृद्ध होता जा रहा है| आज के समय में यौगिक अभ्यास अधिक महत्त्वपूर्ण होता जा रहा है |

(iii) योग के आधारभूत तथ्य

व्यक्ति की शारीरिक क्षमता , उसके मन व भावनाएँ तथा उर्जा के स्तर के अनुरूप योग कार्य करता है| इसे व्यापक रूप से चार वर्गों में विभाजित किया गया है: कर्मयोग में हम शरीर का प्रयोग करते है: ज्ञानयोग में हम मन का प्रयोग करते है; भक्तियोग में हम भावना का प्रयोग करते है और क्रियायोग में हम उर्जा का प्रयोग करते है | योग की जिस भी प्रणाली का हम अभ्यास करते है, वह एक दूसरे से आपस में कई स्तरों पर मिली – जुली हुई होती है |

प्रत्येक व्यक्ति इन चारो योग कारकों का एक अद्वितीय संयोग है | केवल एक समर्थ गुरु (अध्यापक) ही योग साधक को उसके आवश्यकतानुसार आधारभूत योग सिद्धांतों का सही संयोजन करा सकता है | "योग की सभी प्राचीन व्याख्याओ में इस विषय पर अधिक बल दिया गया है कि समर्थ गुरु के मार्गदर्शन में अभ्यास करना अत्यंत आवश्यक है |"

(iv) **पारंपरिक योग सम्प्रदाय**

योग के अलग-अलग सम्प्रदायों , परम्पराओ ,दर्शनों ,धर्मो एवं गुरु-शिष्य परम्पराओ के चलते भिन्न – भिन्न पारंपरिक पाठशालाओ का मार्ग प्रशस्त हुआ | इनमे ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग, पातंजलयोग, कुंडलिनीयोग, हठयोग, ध्यानयोग, मन्त्रयोग, लययोग, राजयोग, जैनयोग, बौद्धयोग आदि सम्मिलित है | प्रत्येक सम्प्रदायों के अपने अलग दृष्टिकोण और अभ्यासक्रम है जिसके माध्यम से प्रत्येक योग सम्प्रदायों ने योग के मूल उदेश्योऔर लक्ष्यों तक पहुचने में सफलता प्राप्त की है |

(v) स्वास्थ्य और कल्याण के लिए योगिक अभ्यास

योग साधनाओं में यम, नियम ,आसन , प्राणायाम ,प्रत्याहार , धारणा , ध्यान ,समाधि ,बंध एवं मुद्रा ,षट्कर्म ,युक्ताहार ,मन्त्र – जप ,युक्त्कर्म आदि साधनाओं का अभ्यास सबसे अधिक किया जाता है|

यम प्रतिरोधक एवं नियम अनुपालनीय है| इन्हें योग अभ्यासो के लिए पूर्व अपेक्षित एवं अनिवार्य मन गया है| आसन का अभ्यास शरीर एवं मन में स्थायित्तव लेन में सक्षम है, कुर्यात् तदासनम् स्थैर्यम् अर्थात्

आसन का अभ्यास महत्त्वपूर्ण समय सीमा तक मनोदैहिक विधि पूर्वक अलग –अलग करने से स्वयं के अस्तितत्त्व के प्रति दैहिक स्थिति एवं स्थिर जागरूकता बनाये रखने की योग्यता प्रदान करता है |

प्राणायाम श्वास–प्रश्वास प्रक्रिया का सुव्यवस्ति एवं नियमित अभ्यास है | यह श्वसन प्रक्रिया के प्रति जागरूकता उत्पन करने एवं उसके पश्चात मन के प्रति सजगकता उत्पन करने तथा मन पर नियत्रंण स्थापित करने में सहायता करता है | अभ्यास की प्रारंभिक अवस्था में श्वास –प्रश्वासप्रक्रिया को सजगकता पूर्वक किया जाता है | बाद में यह घटना नियमित रूप से नियंत्रित एवं निर्देशित प्रक्रिया के माध्यम से नियमित हो जाती है | प्राणायाम का अभ्यास नासिका ,मुख एवं शरीर के अन्य छिद्रों तथा शरीर के आंतरिक एवं बाहरी मार्गो तक जागरूकता बढ़ाता है| प्राणायाम अभ्यास के दोरान नियमित ,नियंत्रित और निरीक्षित प्रक्रिया द्वारा श्वास को शरीर के अंदर रोकने की अवस्था कुम्भक तथा नियमित ,नियंत्रित और निरीक्षित प्रक्रिया द्वारा श्वास को शरीर के बाहर छोडना रेचक कहलाता है |

प्रत्याहार के अभ्यास से व्यक्ति अपनी इन्द्रियो के माध्यम से सांसारिक विषय का त्याग कर अपने मन तथा चेतन्य केन्द्र के एकीकरण का प्रयास करता है | धारणा का अभ्यास मनोयोग के व्यापक आधार क्षेत्र के एकीकरण का प्रयास करता हैं, यह एकीकरण बाद में ध्यान में परिवर्तित हो जाता है | इसी ध्यान में चिंतन (शरीर एवं मन के भीतर केंद्रित ध्यान) एवं एकीकरण रहने पर कुछ समय पश्चात यह समाधि की अवस्था में परिवर्तित हो जाता है |

बंद एवं मुद्रा ऐसे योग अभ्यास है, जो प्राणायाम से सम्बंधित है | ये उच्च यौगिक अभ्यास के प्रसिद्ध रूप माने जाते हैं, जो मुख्य रूप से नियंत्रित श्वसन के साथ विशेष शारीरिक बंधो एवं विभिन्न मुद्राओ के द्वारा किये जाते है | यही अभ्यास आगे चलकर मन पर नियंत्रण स्थापित करता है और उच्चतर यौगिक सिद्धियो के लिए मार्ग प्रशस्त करता है | हालांकि , ध्यान का अभ्यास , जो व्यक्ति को आत्मबोध एवं श्रेष्ठता की ओर ले जाता है, योग साधना (i)ति का सार मन गया है |

षट्कर्म शरीर एवं मन शोधन का सुव्यवस्ति एवं नियमित अभ्यास है जो शरीर में एकत्रित हुए विष को हटाने में सहायता प्रदान करता है | युक्ताहार स्वस्थ जीवन के लिए पर्याप्त सुव्यवस्ति एवं नियमित भोजन का समर्थन करता है |

मन्त्र जापः मंत्रो का चिकित्सकीय (i)ति से उच्चारण ही जाप अथवा देवीय नाम कहलाता है| मन्त्र जाप सकारात्मक मानसिक उर्जा की सृष्टि करता है जो धीरे धीरे तनाव से बाहर आने में सहायता करता है|

युक्त – कर्म स्वास्थ्य जीवन के लिए सम्यक (उचित) कर्म की प्रेरणा देता है |

(vi) योगाभ्यास के लिए सामान्य दिशा निर्देश

योग्यभ्यास करते समय योग के अभ्यासी को नीचे दिए गए दिशा निर्देशों एवं सिद्धांतों का पालन अवश्य करना चाहिए :

(i) **अभ्यास से पूर्व**

- शौच - शौच का अर्थ है शोधन , यह योग अभ्यास के लिए एक महत्त्वपूर्ण एवं पूर्व अपेक्षित क्रिया है | इसके अन्तर्गत आसपास का वातावरण , शरीर एवं मन की शुद्धि की जाती है |

- योग अभ्यास शांत वातावरण में आराम के साथ शरीर एवं मन को शिथिल करके किया जाना चाहिए है |
- योग अभ्यास खाली पेट अथवा अल्पाहार लेकर करना चाहिए | यदि अभ्यास के समय कमजोरी महसूस हो तो गुनगुने पानी में थोड़ी सी शहद मिलाकर लेना चाहिए |
- योग अभ्यास मल एवं मूत्र का विसर्जन करने के उपरांत प्रारंभ करना चाहिए |
- अभ्यास करने के लिए चटाई, दरी ,कम्बल अथवा योग मैट का प्रयोग करना चाहिए |
- अभ्यास करते समय शरीर की गतिविधि आसानी से हो, इसके लिए सूती के हल्के और आरामदायक वस्त्र पहनना चाहिए |
- थकावट, बीमारी ,जल्दबाजी एवं तनाव की स्थिति में योग नहीं करना चाहिए |
- यदि पुराने रोग, पीड़ा एवं हृदय सम्बन्धी समस्याएं हो तो ऐसी स्थिति में योग अभ्यास शुरू करने के पूर्व चिकित्सक अथवा योग विशेषज्ञ से परामर्श लेना चाहिए |
- गर्भावस्था एवं मासिक धर्म के समय योग करने से पहले योग विशेषज्ञ से परामर्श लेना चाहिए |

(ब) अभ्यास के समय

- अभ्यास सत्र प्रार्थना अथवा स्तुति से प्रारंभ करना चाहिए क्योंकि प्रार्थना अथवा स्तुति मन एवं मस्तिष्क को विश्रांति प्रदान करने के लिए शांत वातावरण निर्मित करते है |
- योग अभ्यास आरामदायक स्थिति में शरीर श्वास-प्रश्वास की सजगकता के साथ धीरे – धीरे प्रारंभ करना चाहिए |
- अभ्यास के समय श्वास – प्रश्वास की गति नहीं रोकनी चाहिए, जब तक कि आपको ऐसा करने के लिए विशेष रूप से कहा न जाये |
- श्वास – प्रश्वास सदैव नासारंध्रो से ही लेना चाहिए, जब तक कि आपको अन्य विधि से श्वास प्रश्वास लेने के लिए न कहा जाए |
- शरीर को सख्त नहीं करे अथवा शरीर को किसी भी प्रकार के झटके से बचाएं |
- अभ्यास के समय शरीर को शिथिल रखे,शरीर को किसी भी प्रकार के झटके से बचाएं |
- अपनी शारीरिक एवं मानसिक क्षमता के अनुसार ही योग अभ्यास करना चाहिए | अभ्यास के अच्छे परिणाम आने में कुछ समय लगता है, इसीलिए लगातार और नियमित अभ्यास बहुत आवश्यक है |
- प्रत्येक योग अभ्यास के लिए ध्यातव्य निर्देश एवं सावधानियां तथा सीमाएं होती है| ऐसे ध्यातव्य निर्देशों को सदैव अपने मन में रखना चाहिए |
- योग सत्र का समापन सदैव ध्यान एवं गहन मौन तथा शांति पाठ से करना चाहिए |

(स) अभ्यास के बाद

- अभ्यास के 20-30मिनट के बाद स्नान करना चाहिए |
- अभ्यास के 20-30 मिनट बाद ही आहार ग्रहण करना चाहिए, उससे पहले नहीं |

(vii) सात्विक विचार के लिए भोजन

आहार सम्बन्धी दिशा निर्देश – सुनिश्चित करें कि अभ्यास के लिए शरीर एवं मन ठीक प्रकार से तैयार है | अभ्यास के बाद आमतौर पर शाकाहारी आहार ग्रहण करना श्रेयस्कर मन जाता है |30 वर्ष की आयु से ऊपर के व्यक्ति के लिए बीमारी या अत्यधिक शरीरिक कार्य अथवा श्रम की स्थिति को छोडकर एक दिन में दो बार भोजन ग्रहण करना पर्याप्त होता है |

(viii) योग किस प्रकार सहायता कर सकता है ?

योग निश्चित रूप से सभी प्रकार के बंधनों से मुक्ति प्रदान करने का साधन है | वर्तमान समय में हुए चिकित्सा शोधों ने योग से होने वाले कई शारीरिक और मानसिक लाभों के रहस्य प्रकट किये है | यही नहीं लाखों योग अभ्यासियो कें अनुभव के आधार पर इस बात की पुष्टि की जा सकती है कि योग किस प्रकार सहायता करता है |

- योग शारीरिक स्वास्थ्य , स्नायुतंत्र एवं कंकाल तंत्र को सुचारू रूप से कार्य करने और हृदय तथा नाडियों के स्वास्थ्य के लिए हितकर अभ्यास है |
- यह मधुमेह, श्वसन संबंधी विकार, उच्च रक्तचाप, निम्न रक्तचाप और जीवन शैली सम्बन्धी कई विकारों के प्रबंधन में लाभकारी है |
- योग अवसाद, थकान, चिंता संबंधी विकार और तनाव को कम करने में सहायक है |
- योग मासिक धर्म को नियमित बनाता है |
  संक्षेप में यदि यह कहा जाए कि योग शरीर और मन के निर्माण कि ऐसी प्रक्रिया है, जो समृद्ध और परिपूर्ण जीवन की उन्नति का मार्ग है, न कि जीवन के अवरोध का |

15.5 **सामान्य योग प्रोटोकाल भाग** – I

1 प्रार्थना

योग का अभ्यास प्रार्थना के मनोभाव से शुरू करना चाहिए | ऐसा करने से योग अभ्यासियो को अधिकाधिक लाभ होगा |

संगच्छध्वं संवद्ध्वम
सं वो मनांसीजानताम्
देवा भागं यथा पूर् वे
सञ्जानाना उपासते || (ऋग्वेद 10.191.2)

- **Samgacchadhvam samvadadhvam**
   sam vo manāmsi jānatām
   devā bhāgam yathā pūrve
   sanjānānā upāsate ||

हम सभी प्रेम से मिलकर चलें , मिलकर बोलें और सभी ज्ञानी बनें | अपने पूर्वजों कि भांति हम सभी कर्तव्यों का पालन करें |

2 सदलज / चलन क्रियाएँ / शिथिलीकरण अभ्यास

सदलज / चलन क्रियाएँ / शिथिलीकरण के अभ्यास शरीर में सूक्ष्म संचरण बढाने में सहायता प्रदान करते हैं | इस अभ्यास को खड़े या बैठने कि स्थिति में किया जा सकता है|

(क) ग्रीवा चालन

शारीरिक स्थिति : समस्थिति

अभ्यास विधि

प्रथम चरण : (आगे तथा पीछे की ओर झुकना)

- पेरों के बल आराम से खड़े हो जाए |
- हाथों को शरीर के बगल में सीधा रखे |
- यह अभ्यास समस्थिति है | इसे ताड़ासन भी कहते है|
- अभ्यास के समय हाथों को कमर पर रखें |
- श्वास को बाहर निकालते हुए सिर को धीरे – धीरे आगे
  की ओर झुकाएं
  और ठुड्डी को वक्ष पर स्पर्श करने की कोशिश करें |
- श्वास को अंदर लेते हुए सिर को जितना पीछे ले जा सकते हों, पीछे ले जाएँ |
- यह एक चक्र पूर्ण हुआ | इस विधि को और दो बार दोहराएं|

द्वितीय चरण : (दाई और बाईं ओर झुकना)

- श्वास को बाहर छोड़ते हुए , सिर को धीरे – धीरे दाईं ओर झुकाएं; कान को कंधे के जितना नजदीक लाना संभव हो ,

लाएं |इस बात का ध्यान रखें कि कंधे ऊपर की ओर अधिक नहीं उठे होने चाहिए |

- श्वास को अंदर ग्रहण करते हुए , सिर को सामान्य स्थिति में लाएं |
- इसी प्रकार , श्वास को बाहर छोड़ते हुए सिर को बायीं तरफ झुकाएं |
- श्वास को अंदर खींचे और सिर को सामान्य स्थिति में लाएं|
- यह एक चक्र पूर्ण हुआ| इस विधि को और दो बार दोहराएं|

तृतीय चरण : (दाएं एवं बाएं घुमाना)

- सिर को सीधा रखें |
- श्वास को बाहर छोड़ते हुए ,सिर को आराम से दांई ओर घुमाएं, जिससे ठुड्डी और कंधे एक बराबर में हो जाएँ |
- श्वास को अंदर लेते हुए, सिर को सामान्य स्थिति में लाएं |

- इसी प्रकार , श्वास को बाहर छोड़ते हुए सिर को बायीं ओर घुमाएं |
- श्वास को अंदर लेते हुए सिर को सामान्य स्थिति में लाएं|
- यह एक चक्र पूर्ण हुआ| इस विधि को और दो बार दोहराएं|

चतुर्थ चरण : ग्रीवा घुमाना

- श्वास छोड़ते हुए सिर को आगे की ओर झुकाएंऔर ठुड्डी को वक्ष पर स्पर्श करने की कोशिश करें |
- श्वास को अंदर लेते हुए सिर को धीरे – धीरे घड़ी की सुई की दिशा में घुमाएं तथा वापस लाते समय श्वास को बाहर छोड़े|

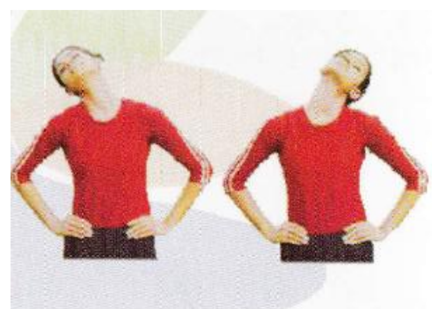

- इस प्रकार ग्रीवा एक बार पूरी तरह घुमाएं|
- तत्पश्चात ग्रीवा को घड़ी की विपरीत दिशा में घुमाएं|
- श्वास को अंदर लेते हुए ग्रीवा को पीछे ले जाए और श्वास को छोड़ते समय वापस ले आएं|
- यह एक चक्र पूर्ण हुआ| इस विधि को और दो बार दोहराएं|

ध्यातव्य :

- ग्रीवा को जितना संभव हो , उतना ही घुमाएं अधिक नही खींचना चाहिए |
- कंधों को शिथिल और स्थिर रखना चाहिए |

- ग्रीवा के आसपास खिंचाव महसूस करें और ग्रीवा के जोड़ों व मांसपेशियों को शिथिल करें |
- इसका अभ्यास कुर्सी पर बैठकर भी किया जा सकता है|
- जिन लोगों को ग्रीवा में पीड़ा हो , वे यह अभ्यास धीरे – धीरे करे , खासकर वे सिर को उतना ही पीछे ले जावें , जितना आरामदायक हो |
- अधिक उम्र के लोगों और सर्वाइकल स्पॉन्डिलाइटिस तथा उच्च रक्तचाप की व्याधि से ग्रसित व्यक्ति को इस अभ्यास से बचना चाहिए |

(ख) स्कंध संचालन

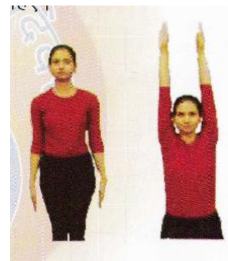

स्थिति : समस्थिति (सजग स्थिति)

चरण (क) स्कंध खिंचाव

अभ्यास विधि

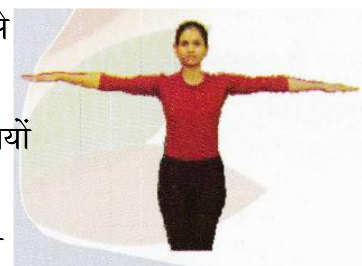

- पैर परस्पर मिले हुए हो , पैर से सिर तक का हिस्सा सरलता से सीधा रखते हुए खड़े रहें |
- बगल से अपनी दोनों भुजाओं को सिर से ऊपर उठायें ,हथेलियों ऊर्ध्व दिशा में हों | इसी क्रिया को नीचे की तरफ दोहराएँ |
- जब हाथ को सिर से ऊपर ले जाएं तो ध्यान रखें कि वे सिर से स्पर्श न करे , इसी प्रकार जब हाथों को नीचे लेकर आएं तो जांघों को वे स्पर्श न करें |
- उंगलियों को मिलाते हुए दोनों हथेलियों को पूरी तरह खोल दें |

चरण (ख) स्कंध चक्र (स्कंध चालन)

सीधे खड़े हो जाएं |

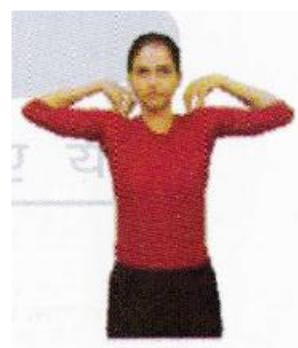

- बाएं हाथ की उँगलियों को बाएं कंधे पर रखे और उसी तरह दाएं हाथ की उँगलियों को दाएं कंधे पर रखे |
- दोनों कोहनियों को पूरी तरह चक्राकार घुमाएं |
- आगे की ओर कोहनियों को घुमाते हुए वक्ष स्थल के सामने स्पर्श करने की कोशिश करे और जब कोहनियों को विपरीत क्रम में घुमाएं तो उन्हें कानों से स्पर्श कराएँ |

- विपरीत दिशा में भुजाओं को खींचकर घुमाएं और कोशिश करे कि इस दौरान भुजाएं शरीर को स्पर्श करे |
- इस क्रिया को दाएं से बाएं (घड़ी कि सुई की दिशा में) पांच बार दोहराएँ |

- इस क्रिया को बाएं से दाएं (घड़ी कि सुई की विपरीत दिशा में) पांच बार दोहराएँ|

लाभ :

- इस क्रिया के अभ्यास से हड्डियां , मांसपेशियां और स्कंध क्षेत्र की तंत्रिकाएं स्वस्थ रहती है|
- यह योगासन गर्दन की रीढ़ की हड्डी की अपकर्षक (सर्वाइकल स्पॉन्डिलाइटिस) बीमारी को दूर करता है और स्कंध संचालन में आने वाली रूकावटो से छुटकारा दिलाता है |

(ग) कटि चालन

कटि चालन (कटिशक्ति विकासक)

स्थिति : समस्थिति (सजग स्थिति)

अभ्यास विधि

- दोनों पेरों के बीच 2 से 3 फीट की दूरी रखें |
- दोनों भुजाओ को वक्ष तक उठायें | इस समय दोनों हथेलियाँ समानांतर स्थिति में एक – दूसरे के आमने – सामने हों |
- श्वास को बाहर छोड़ते समय शरीर को बायीं ओर घुमाएं , जिससे कि दायीं हथेली बाएं कंधे को छुए | श्वास को अन्दर लेते हुए पूर्व स्थिति में आना चाहिए |
- श्वास को बाहर छोड़ते समय शरीर को दायीं ओर घुमाएं , जिससे कि बायीं हथेली दाएं कंधे को छुए | श्वास को अन्दर लेते हुए पूर्व स्थिति में आना चाहिए|
- इस तरह एक चक्र पूर्ण हुआ| इस विधि को और दो बार दोहराएं|
- अभ्यास के बाद समस्थिति में सिथिल हो जाएं |

ध्यातव्य:

- सामान्य गति से श्वास लेते हुए इस आसान का अभ्यास धीरे – धीरे करना चाहिए |
- हृदय रोगियों को यह अभ्यास सावधानीपूर्वक करना चाहिए |
- गंभीर पीठ दर्द तथा रीढ़ और डिस्क व्याधि से ग्रसित व्यक्तियों व उदर – शल्य क्रिया करने वालो को यह आसन नहीं करना चाहिए | मासिक धर्म के समय इस अभ्यास को नहीं करना चाहिए |

(घ) घुटना संचालन

शारीरिक स्थिति : समस्थिति (सजग स्थिति)

अभ्यास विधि :

- श्वास को शरीर के अंदर ग्रहण करते हुए अपनी भुजाओं को कंधे के स्तर तक लाएं तथा हथेलियों को नीचे की ओर रखें |

- श्वास छोड़ते हुए घुटनों को मोडें और अपने शरीर को बैठने की स्थिति में लाएं |
- अभ्यास की अंतिम स्थिति में दोनों भुजाएं और जांघे जमीन की तरफ समानांतर स्थिति में होनी चाहिए |
- श्वास को शरीर के अन्दर ग्रहण करते हुए शरीर को सीधा रखें |
- हाथों को वापस नीचे लाते समय श्वास को शरीर के बाहर छोडना चाहिए |
- इस विधि को दो बार दोहराएँ |

ध्यातव्य :

- घुटनों और कूल्हों के जोड़ों को सुदृढ़ बनाएं |
- आर्थराइटिस का गंभीर दर्द होने पर इस अभ्यास को नहीं करना चाहिए |

3 योगासन

(क) खड़े होकर किये जाने वाले आसान

ताड़ासन (ताड़वृक्ष की स्थिति में)

ताड़ शब्द का अर्थ है पहाड़, ताड़ या खजूर का पेड़|

इस आसान के अभ्यास से स्थायित्व व शारीरिक दृढ़ता प्राप्त होती है |यह खड़े होकर किये जाने वाले सभी आसनों का आधार है|

अभ्यास विधि

- सर्वप्रथम पैरों के बल खड़े हो जाएं तथा दोनों पैरों के बीच २ इंच की दूरी रखें|
- दोनों हाथो की अंगुलियों को आपस में एक-दूसरे से मिलाये तथा हथेलियों को बाहर की ओर रखते हुए श्वास को शरीर के अंदर ग्रहण करे |भुजाओं को उपर की ओर करके कन्धों को एक सीध में ले आएं|
- पैर की एडियों को पृथ्वी से उपर उठायें ओर पैर की अँगुलियों पर अपना संतुलन बनाये| इस स्थिति में 10 से 15 सेकंड तक रुके रहें |
- श्वास को शरीर से बाहर छोड़ते हुए एडियों को वापस जमीन पर रखें|
- अब हाथ की अँगुलियों को अलग अलग करते हुए भुजाओं को शरीर के समानांतर लाएं | फिर इसके बाद प्रारम्भिक स्थिति में वापस आ जाएं|

लाभ

- इस आसन के अभ्यास से शरीर सुदृढ़ होता है |यह मेरुदंड से सम्बन्धित नाड़ियो के रक्त संचय को ठीक करने में भी सहायक हैं|
- यह आसन एक निश्चित उम्र तक लम्बाई बढानें में सहायक हैं|

सावधानियां

- उन व्यक्तियों को यह आसन नहीं करना चाहिए जिन्हें हृदय सम्बन्धी व वैरीकोज वेंस (veins) संबंधी समस्याएं हैं |चक्कर आने की स्थिति में अंगुलियों पर ऊपर उठने का प्रयास नहीं करना चाहिये|

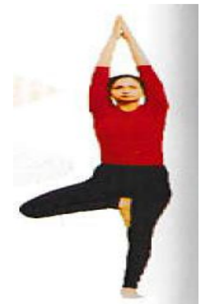

वृक्षासन (वृक्ष की स्थिति में)

वृक्ष शब्द का अर्थ हैं पेड़ |इस आसन के अभ्यास की अंतिम अवस्था में शारीरिक स्थिति एक पेड़ के आकार की बनती हैं |इसलिए इस आसन को यह नाम दिया गया हैं|

अभ्यास विधि

- वृक्षासन का अभ्यास करते समय सर्वप्रथम दोनों पैरों को एक दूसरे से २ इंच की दूरी पर रख कर खड़े हो जाएं |

- आँखों के सामने किसी बिंदु पर ध्यान केंद्रित करें|
- श्वास को शरीर के बाहर छोड़ते हुए दाएं पैर को मोड़कर उसके पंजे को बाएं पैर की अंदरूनी जांघ पर रखें |अभ्यास करते समय ध्यान रखें कि एडी मूलाधार (पेरिनियम) से मिली होनी चाहियें|

- श्वास को शरीर के अंदर लेते हुए दोनों हाथों को उपर कि ओर ले जाकर दोनों हथेलियों को जोड़ें|
- इस स्थिति में 10 से 30 सेकंड तक रहें|इस दौरान सामान्य रूप से श्वास लेते रहें|
- श्वास को शरीर के बाहर छोड़ते हुए हाथो एवं दाएं पैर को मूल अवस्था में वापस लेकर आएं|

- शरीर को शिथिल करते हुए इस आसन का अभ्यास पुनः बाएं पैर से करें|

लाभ

- यह आसन तंत्रिका से सम्बन्धित स्नायुओं के समन्वय को बेहतर बनाता हैं, शरीर को संतुलित बनाता हैं और सहनशीलता एवं जागरूकता बढ़ाता हैं|
- पैरों की मान्सपेशियों को गठीला बनाता हैं और लिगामेंट्स को भी सुदृढ़ करता हैं|

सावधानियां

- कृपया अर्थराइटिस, चक्कर आने और मोटापा होने पर इस आसन का अभ्यास न करें |

(iii) पादहस्तासन

पादहस्तासन का अर्थ है पाद अर्थात पैर, हस्त अर्थात हाथ | इस आसन के अभ्यास में हथेलियों को पैरों की तरफ नीचे ले जाया जाता है| इस आसन के अभ्यास को उत्तानासन भी कहा जाता है|

अभ्यास विधि

- पादहस्तासन का अभ्यास करते समय सर्वप्रथम दोनों पेरो के बीच 2 इंच की दूरी रखकर सीधा खड़ा हो जाएं |
- धीरे – धीरे श्वास को शरीर के अंदर खींचते हुए हाथों को ऊपर की ओर ले जाना चाहिए |
- कटिभाग से शरीर को ऊपर की ओर ले जाएं |
- श्वास को शरीर के बाहर छोड़ते हुए सामने की ओर झुकें , जब तक कि शरीर पृथ्वी के समानांतर न आ जाएं |
- श्वास को शरीर के बाहर छोड़ते हुए इस प्रकार झुकते रहना चाहिए कि हथेलियाँ पृथ्वी का स्पर्श करने लगे |
- इस शारीरिक स्थिति में 10 से 30 सेकंड तक रुकें |
- इस आसन का अभ्यास करते समय अपनी क्षमता के अनुसार झुकना चाहिए |
- श्वास को शरीर के अंदर खींचते हुए धीरे – धीरे हाथों को शरीर के ऊपर तक खींचकर रखना चाहिए |
- श्वास को शरीर के बाहर छोड़ते हुए धीरे – धीरे विपरीत क्रम में प्रारम्भिक अवस्था में वापस आ जाएं |
- ताड़ासन में शिथिल अवस्था में रहना चाहिए , और कुछ समय तक आराम करना चाहिए |

लाभ

- मेरुदंड को लचीला बनाता है , जठराग्नि प्रदीप्त करता है , कब्ज तथा मासिक धर्म से सम्बंधित समस्याओं से बचाता है |

सावधानियां

- हृदय अथवा पीठ से सम्बन्धित समस्याओं , उदर शोथ, हर्निया एवं अल्सर , उच्च मायोपिया , चक्कर सम्बंधित रोगों तथा गर्भावस्था के समय इस अभ्यास को नहीं करना चाहिए |
- कशेरुका संबंधी तथा डिस्क विकार वाले लोगो को भी यह अभ्यास नही करना चाहिए |

(iv) अर्धचक्रासन

अर्ध का अर्थ है आधा तथा चक्र का अर्थ है पहिया | इस आसन में चूँकि शरीर आधे पहिये की आकृति जैसा बनता है , इसलिए इस आसन को अर्ध चक्रासन कहते हैं |

अभ्यास विधि

- दोनों हाथों की सभी अंगुलियों से कमर को पीछे की ओर से पकड़े | सभी अंगुलियां उर्ध्वमुखी और अधोमुखी स्थिति में हो |
- सिर को पीछे की ओर झुकाते हुए ग्रीवा की मांसपेशियों को खींचना चाहिए |
- श्वास लेते हुए कटिभाग से पीछे की ओर झुकना चाहिए | श्वास को बाहर छोड़ते हुए शिथिल होना चाहिए |
- इस स्थिति में 10 - 30 सेकंड तक रुके तथा सामान्य रूप से श्वास लेते रहे |
- श्वास को अंदर खिंचते हुए धीरे – धीरे प्रारम्भिक अवस्था में वापस लौटे |

लाभ

- अर्ध चक्रासन के अभ्यास से मेरुदंड लचीला बनता है तथा मेरुदंड से सम्बंधित नड़ियाँ मजबूत बनती है |
- ग्रीवा की मांसपेशियों को मजबूत बनाता है तथा श्वसन क्षमता बढ़ाता है तथा श्वसन क्षमता बढाता है |
- सर्वाइकल स्पॉन्डिलाइटिस में यह लाभकारी है|

सावधानियां

- यदि आपको चक्कर आते हों तो इस आसन का अभ्यास करने से बचें |
- उच्च रक्तचाप वाले व्यक्ति अभ्यास करते समय सावधानी से पीछे की ओर झुके |

(v) त्रिकोणासन

त्रिकोणासन का अर्थ त्रि अर्थात तीन कोणों वाला आसन है | चूँकि आसन के अभ्यास से समय शरीर एवं पैरों से बनी आकृति तीन भुजाओं के सदृश्य दिखाई देती है , इसलिए इस अभ्यास को त्रिकोणासन कहते है |

अभ्यास विधि

- त्रिकोणासन के अभ्यास के समय दोनों पैरों को फेलाकर आराम से खड़ा होना चाहिए |
- दोनों हाथो को आकाश के समानान्तर होने तक धीरे – धीरे उठाना चाहिए |
- श्वास को शरीर से बाहर छोड़ते हुए धीरे – धीरे दाईं तरफ झुकना चाहिए | झुकने के बाद दायाँ हाथ दाएं पैर के ठीक पीछे की ओर रखना चाहिए |
- बाएं हाथ को सीधे ऊपर की ओर रखते हुए दाएं हाथ की सीध में लाना चाहिए |
- तत्पश्चात बायीं हथेली को आगे की ओर लाना चाहिए |
- सिर को घुमाते हुए बाएं हाथ की बीच वाली अंगुली को देखना चाहिए |
- सामान्य श्वास लेते हुए इस आसन में १० -३० सेकंड तक रुकना चाहिए |
- श्वास को शरीर के अन्दर लेते हुए प्रारम्भिक अवस्था में वापस आ जाएं |
- इस आसन को दूसरी ओर से भी करना चाहिए|

लाभ

- पैर के तलवों से सम्बंधित विसंगतियों से बचाता है|
- पिण्डिका, जांघों और कटिभाग की मांसपेशियों को मजबूत बनाता है|
- मेरुदंड को लचीला बनाता है तथा फेंफडो की कार्य क्षमता को बढ़ाता है|

सावधानियां

- स्लिप्ड डिस्क , साइटिका एवं उदर में किसी प्रकार की सर्जरी होने के बाद इस आसन का अभ्यास नहीं करना चाहिए |
- शरीर को कार्य क्षमता तथा सीमा से परे जाकर न करें तथा शरीर को सीमा से अधिक न खींचे|

- अभ्यास करते समय यदि आप जमीन को न छू सके तो घुटनों को छूने का प्रयास करें |

ख बैठकर किये जाने वाले आसन

(1) भद्रासन

भद्र शब्द का अर्थ दृढ़ , सज्जन या सौभाग्यशाली होता है|

शारीरिक स्थिति : बैठी हुई स्थिति (विश्रामासन)

अभ्यास विधि

- दोनों पैरों को सामने की ओर सीधा फेलाकर बैठें |
- दोनों हाथो को नितंब के पास रखें | यह स्थिति दंडासन कहलाती है|
- अब दोनों पैरों के तलवों को पास – पास ले आएं |
- श्वास बाहर छोड़ते हुए पैरों की अंगुलियों को हाथो से पकड़ कर ढ़क दे|
- एडियों को मूलाधार के जितना नजदीक हो सके ले आएं |
- यदि पैरों की एडियां जांघों को नहीं छू पा रही है या पृथ्वी से नही लगी हुई है तो सहारे के लिए घुटनों के नीचे एक मुलायम कुशन रखना चाहिए | यह अभ्यास की अंतिम अवस्था है|

- इस अवस्था में कुछ समय तक रहना चाहिए |

लाभ

- भद्रासन का अभ्यास शरीर की दृढ़ रखता है एवं मस्तिष्क को स्थिरता प्रदान करता है|
- घुटनों एवं नितंब के जोड़ों को स्वस्थ रखता है|
- घुटनों का दर्द कम करने में मदद करता है|
- उदर के अंगों को क्रियाशील करता है और उदर में होने वाली किसी भी तरह की त्रुटि / खिंचाव को सामान्य करता है|
- महिलाओं को मासिक धर्म के समय अक्सर होने वाले पेट दर्द से मुक्ति प्रदान करता है|

सावधानियां

- पुरानी तथा अत्यधिक पीड़ा देने वाले आर्थ्रराइटिस और साइटिका से ग्रसित व्यक्ति को इस अभ्यास से बचना चाहिए |

वज्रासन / वीरासन

इस आसन को ध्यान मुद्रा में किया जाना चाहिए | जब आप ध्यान मुद्रा में इस आसन का अभ्यास करें तब अंतिम अवस्था में आँखे बंद कर लें |

अभ्यास विधि

- दोनों पैरों को फेलाकर बैठ जाएं , हाथ आपके शरीर के बगल में हो और आपकी हथेलियां जमीन पर हो , उँगलियाँ सामने की दिशा की ओर इशारा करती हो |
- दाहिने पैर को घुटनों से मोड़ ले पंजों को नितंब के नीचे दबाकर बैठ जाएं |
- इसी तरह बाएं पैर को भी घुटने से मोड़ते हुए एसे बेठे कि पंजे बाएं नितंब के नीचे हो |
- नितंब एडियों के ऊपर होने चाहिए|
- बाएं हाथ को क्रमशः बाएं और दाएं हाथ को दाहिने घुटने पर रखें |
- मेरुदंड को सीधा रखे और सामने की ओर देखते हुए आँखे बंद रखें |
- पूर्ववत स्थिति में आने के लिए दाहिनी ओर थोड़ा सा झुककर अपने बाएं पैर को निकालें और उसे सीधा करे |
- इसी तरह अपने दाहिने पैर को निकालकर उसे सीधा कर ले |

लाभ

- इस आसन से जांघ और पिंडली की मांसपेशियां मजबूत होती है|
- यह् आसन पाचन शक्ति बढाने में सहायक होता है|
- यह मेरुदंड को सुदृढ़ता प्रदान करता है और उसे सीधा रखने में सहायता प्रदान करता है|

सावधानियां

- बवासीर के मरीजो कों इस आसान से परहेज करना चाहिए |
- घुटने दर्द और एडियों के चोट से ग्रसित व्यक्तियों को इस आसन से परहेज करना चाहिए |

(iii) अर्ध उष्ट्रासन

शारीरिक स्थिति : बैठी हुई स्थिति में (विश्रामासन)

उष्ट्र शब्द का अर्थ ऊंट है|इस आसन के अभ्यास में की अंतिम अवस्था ऊंट के कूबड़ या उभार की स्थिति जेसी बनती हैइस आसन के अभ्यास में केवल प्रथम चरण (अर्ध उष्ट्र की स्थिति) का अभ्यास ही किया जाता है |

अभ्यास विधि

- सर्वप्रथम विश्रामासन में बैठ जाएं |
- पुनः दंडासन की स्थिति में आ जाएं |
- पैरों को मोड़ते हुए एडियों पर बैठ जाएं |
- जांघों को सटाकर रखें एवं अंगूठे एक – दूसरे से सटे हो |
- हाथो को घुटनों पर रखें |
- सिर एवं पीठ को बिना झुकाए सीधा रखें |
- यह स्थिति वज्रासन कहलाती है |
- घुटनों पर खड़े हो जाएं |
- हाथो को कमर पर एस प्रकार रखें कि अंगुलियां जमीन की तरफ हो |
- कोहनियों एवं कंधो को सामानांतर रखें |
- अब सिर को पीछे की तरफ झुकाते हुए ग्रीवा की मांसपेशियों को खींचे एवं धड़ को जितना संभव हो सके झुकाएं |
  श्वास बाहर छोड़ते हुए शिथिल हो जाना चाहिए |
- पुनः जांघों को जमीन से लम्बवत रखें |
- सामान्य रूप से श्वास लेते हुए इस मुद्रा में 10 - 30 सेकंड तक रुकें |
- श्वास अंदर खींचते हुए सामान्य मुद्रा में वापस लौटते हुए वज्रासन में बैठ जाएं |
- पुनः विश्रामासन में शिथिल हो जाना चाहिए |

लाभ

- इस योगाभ्यास से पीठ और गर्दन की मांसपेशियां मजबूत होती है|
- कब्ज एवं पीठ दर्द से मुक्ति मिलती है|
- सिर एवं हृदय क्षेत्र में रक्त संचार बढ़ता है|
- यह योगाभ्यास हृदय रोगियों के लिए अत्यंत लाभदायक है , किन्तु इसका अभ्यास सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिए |

सावधानियां

- हर्निया एवं उदर सम्बन्धी गंभीर व्याधि तथा आर्थराइटिस , चक्कर आना ,स्त्रियों के लिए गर्भावस्था के समय में इस आसन का अभ्यास नही करना चाहिए |

(iv) उष्ट्रासन (ऊंट जैसी शारीरिक स्थिति)

इस आसन के अभ्यास की अवस्था में शारीरिक स्थिति ऊंट (उष्ट्र) के समान हो जाती है| इसीलिए इसका नाम उष्ट्र आसन है|

अभ्यास विधि

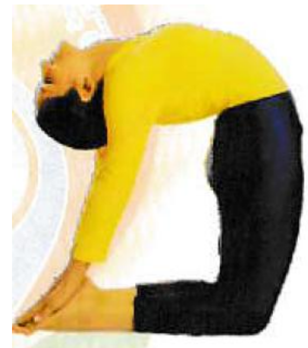

- घुटनों को जमीन पर टिकाते हुए अपने दोनों पैरों जांघ और पंजो को आपस में मिला लीजिए , पंजो को बाहर की तरफ रखते हुए जमीन पर फैला दीजिए |
- घुटनों एवं पंजो के बीच एक फुट की दूरी रखते हुए घुटनों के बल खड़े हो जाएं |
- श्वास लेते हुए पीछे की ओर झुकें |
- इस बात का ध्यान रखे कि पीछे झुकते समय गर्दन को झटका ना लगे |
- पीछे कि ओर झुकें और धीरे – धीरे दाहिने हाथ से दाहिनी एड़ी और बहिने हाथ से बायीं एडी को पकड़ने का प्रयास करें |
- अंतिम स्थिति में जांघ को जमीन पर उर्ध्वाकार (लम्बवत्) रखते हुए सिर को हल्का सा पीछे की ओर खींचकर रखें |
- यथासंभव पूरे शरीर का भर अपनी भुजाओं और पैरों पर होना चाहिए |
- इसका अभ्यास सर्वांगासन के बाद करना चाहिए | इस मुद्रा में उचित लाभ होता है|

लाभ

- उष्ट्रासन दृष्टिदोष में अत्यंत लाभदायक है|
- यह पीठ और गले के दर्द में आराम दिलाता है|
- यह उदर और नितंब की चर्बी को कम करने में सहायक है|
- पाचन क्रिया सम्बन्धी समस्याओं के लिए अत्यंत लाभदायक है|

सावधानियां

- उच्च रक्तचाप , ह्रदय रोगी , हर्निया के मरीजों को यह आसन नहीं करना चाहिए |

(v) शशांकासन

शशांक शब्द का अर्थ है खरगोश | चूँकि इस आसन के अभ्यास में शरीर की आकृति खरगोश जैसी बनती है इसलिए इसे शशांकासन कहते है|

शारीरिक स्थिति : वज्रासन

अभ्यास विधि

- सर्वप्रथम वज्रासन में बैठना चाहिए |
- दोनों पैरों के घुटनों को एक – दूसरे से दूर फैलाएं |
- इस प्रकार बैठें कि पैरों के अंगुठे एक – दूसरे से मिले हों | दोनों हथेलियों को घुटनों के बीच जमीन पर रखें |
- श्वास को बाहर छोड़ते हुए दोनों हथेलियों को सामने कि ओर स्वयं से दूर ले जाएं |
- आगे कि ओर झुकते हुए ठुड्डी को जमीन पर रखें |
- दोनों भुजाओं को समानांतर रखें|
- सामने की ओर देंखे और इस स्थिति को बनाएँ रखें |
- श्वास को अंदर खींचते हुए पीछे की ओर आ जाएं |
- श्वास को बाहर छोड़ते हुए वज्रासन में वापस लौट आएं |
- पैरों को पीछे खींचकर विश्रामासन में वापस आ जाएं |

लाभ

- शशांकासन का अभ्यास तनाव, क्रोध आदि को कम करने में सहायक है|
- यह जनन अंग सम्बन्धी व्याधि एवं कब्ज से मुक्ति दिलाता है एवं पाचन क्रिया संबंधी व्याधि व पीठ दर्द से छुटकारा दिलाता है|

सावधानियां

- अधिक पीठ दर्द में इस अभ्यास को नहीं करना चाहिए |
- घुटनों से सम्बंधित ओस्टियोआर्थराईटिस से पीड़ित व्यक्तियों को इस अभ्यास को सावधानीपूर्वक करना चाहिए अथवा वज्रासन से बचना चाहिए |
- उच्च रक्तचाप वाले व्यक्तियों को इस आसन से परहेज करना चाहिए |

(vii) उत्तानमंडूकासन (ऊर्ध्व दिशा में मेंढ़क जैसा)

उत्तान का अर्थ ऊर्ध्व और मंडूक का अर्थ मेंढ़क है| इस आसन में मेंढ़क जैसी स्थिति में उर्ध्वमुखी हुआ जाता है| इसी कारन इस आसन का नाम उत्तानमंडूकासन पड़ा | उत्तानमंडूकासन में कोहनियों के सहारे सिर को थामा जाता है|

अभ्यास विधि

- वज्रासन मुद्रा में बैठे |

- अंगुठो को सटाते हुए दोनों घुटनों को जितना अधिक हो सके फैलाएं |
- अपमी दाईं हथेली को उठायें , उसे मोडें और उसे पीछे की ओर ले जाकर दाहिने कंधे के ऊपर उठायें | इसके बाद हथेली को बायीं तरफ के कंधे के नीचे लाएं |
- इसी क्रिया को बायीं हथेली का उपयोग करते हुए दोहराएँ और अपनी हथेली को ऊपर ले जाकर बाएँ कंधे के नीचे ले आएं |
- कुछ देर तक इसी मुद्रा में रुकें | उसके बाद धीरे – धीरे बाएं कंधे और फिर दाएं कंधे को वापस ले आएं | अपने घुटनों को मिलाकर पूर्ववत स्थिति में आ जाएं |

लाभ

- यह आसन पीठ दर्द और ग्रीवा की तकलीफ से छुटकारा दिलाता है|
- यह आसन शरीर के मध्यपट के लिए लाभदायक है| यह फेंफडो की कार्यक्षमता में वृद्धि करता है |

सावधानियां

- घुटनों व जोड़ो के दर्द से पीड़ित व्यक्तियों को इस आसन से परहेज करना चाहिए |

(viii) मरिच्यासन / वक्रासन

वक्र शब्द का अर्थ घुमाव अथवा ऐंठन है | इस आसन के अभ्यास में मेरुदंड की अस्थि को घुमाते है , जिससे शरीर की आकृति वक्र हो जाती है जिसके कारण इसे वक्रासन कहते है | इसके अभ्यास से शरीर कार्य करने की क्षमता को नया जीवन मिलता है|

शारीरिक स्थिति : दंडासन

अभ्यास विधि

- सर्वप्रथम दाएं पैर को मोड़ते हुए उसके पंजे को बाएं घुटने के बगल में रखें |
- श्वास को बाहर छोड़ते हुए , शरीर को दाईं तरफ घुमाएं |
- बाएं हाथ को दाएं घुटने के पास लाएं और दाएं पैर के अंगूठे को पकड़ लें अथवा हथेली को दाएं पैर के पास रखें |
- दाएं हाथ को पीछे ले जाएं और हथेली को जमीन पर रखें , जब तक कि पीठ लम्बवत न हो जाए |
- इस स्थिति में 10 – 30 सेकंड तक रहे |
- सामान्य ढंग से श्वास – प्रश्वास लेते रहें और शरीर को शिथिल रखें |
- श्वास को बाहर छोड़ते हुए अपने हाथ हटा ले और शिथिल हो जाएं |
- इस अभ्यास क्रम को दूसरी तरफ से भी दोहराएँ |

लाभ

- मेरुदंड की अस्थि में लचीलापन बढ़ाता है|
- कब्ज एवं अग्निमांघ्य (डिस्पैप्सिया) को दूर करने में सहायता प्रदान करता है|

सावधानियां

- अधिक पीठ दर्द में और वर्टिब्रल व डिस्क डिस्ऑर्डर की स्थिति में इस अभ्यास को नही करना चाहिए | उदर की सर्जरी के बाद एवं मासिक धर्म के दिनों में भी इस आसन को मही करना चाहिए |

ग. उदर के बल लेटकर किये जाने वाले आसन

(i) मकरासन

संस्कृत में मकर शब्द का अर्थ होता है मगर या घड़ियाल| इस आसन में शरीर की स्थिति मगर की आकृति के समान हो जाती है , इसीलिए इसे मकरासन कहते है|

स्थिति : अधोमुख लेटकर शिथिल स्थिति

अभ्यास विधि

- सर्वप्रथम उदर के बल लेट जाएं |
- पैरों को एक – दूसरे से दूर फैलाकर , पंजो को बाहर की ओर रखें |
- दोनों हाथों को मोड़ते हुए व बाएं हाथ पर दायाँ हाथ रखें |
- तत्पश्चात ललाट को अपने हाथो पर रखें | आँखे धीरे – धीरे बंद करें | यह स्थिति मकरासन कहलाती है |
- सभी प्रकार के आसनों के पश्चात शिथिलीकरण के लिए इस आसन का अभ्यास किया जाता है |

लाभ

- कटि प्रदेश के निचले भाग के लिए लाभदायक है|
- पीठ संबंधी समस्याओं को दूर करने में उपयोगी है|
- अस्थि सम्बन्धी सभी व्याधियों को दूर करने में उपयोगी है|
- तनाव व चिंता से सम्बन्धित समस्याओं के नियंत्रण में लाभदायक है|

सावधानियां

- निम्न रक्तचाप, हृदय सम्बन्धी समस्याओं से ग्रसित व्यक्तियों को तथा गर्भावस्था में इस आसन को नही करना चाहिए |

(ii) भुजंगासन

भुजंग शब्द का अर्थ सांप, सर्प व नाग है | इस आसन में शरीर की आकृति सांप के फन की तरह ऊपर उठती है जिसके कारण इस आसन को भुजंगासन कहते है|

शारीरिक स्थिति : मकरासन

अभ्यास विधि

- सर्वप्रथम पेट के बल लेट जाएं और अपने दोनों हाथों पर सिर टिकाते हुए शरीर को शिथिल रखें |
- अब अपने दोनों पैरों को आपस में मिलाएं |
- हाथों को खींचकर रखते हुए ललाट को जमीन पर टिका रहने दे |
- अब हाथो को शरीर के ठीक बगल में ऐसा रखें कि हथेलियों और कोहनियां जमीन पर टिके रहें |
- धीरे – धीरे श्वास अन्दर खींचते हुए ठुड्डी और नाभि क्षेत्र तक शरीर को ऊपर उठाएं |

- कुछ समय तक इस स्थिति में आराम से रहें |
- इस अभ्यास को सरल भुजंगासन कहा जाता है|
- पुनः वापस लौटते हुए ललाट को जमीन पर टिकाएं |
- हथेलियों को वक्ष के बगल में रखें और कोहनियां ऊपर कि ओर उठी हुई होनी चाहिए |
- धीरे – धीरे श्वास को भीतर खींचते हुए ठुड्डी एवं नाभि क्षेत्र तक के शरीर को ऊपर उठाएं रखें|

इस अभ्यास को भुजनागासन कहा जाता है|

- पुनः श्वास को बाहर छोड़ते हुए ललाट को जमीन पर शिथिल होने दे और हथेलियों के ऊपर सिर तथा पैर को फैलाकर शरीर को शिथिल करें |

ध्यातव्य

- पैरों को उतना ही तानकर (दृढ़) रखें कि कटि क्षेत्र के मेरुदंड में कोई भार या तनाव न हो |

लाभ

- तनाव प्रबंधन के लिए यह आसन सर्वश्रेष्ठ है|
- यह उदर के अतिरिक्त वसा को घटता है तथा कब्जियत दूर करता है|
- पीठ दर्द और श्वास नली से सम्बन्धित समस्याओं को दूर करता है|

सावधानियां

- जिन लोगो कि उदर संबंधी सर्जरी हुई है , उन्हें इस आसन को नही करना चाहिए |
- जो लोग हर्निया , अल्सर से पीड़ित हो , उन्हें इसआसन का अभ्यास नही करना चाहिए |

(iii) शलभासन

शलभ शब्द का अर्थ टिड्डी होता है जो एक प्रकार का कीड़ा होता है|

स्थिति : मकरासन

अभ्यास विधि

- सर्वप्रथम मकरासन की स्थिति में लेट जाएं |
- ठुड्डी को पृथ्वी पर टिकाकर दोनों हाथों को शरीर के बगल में रख दें |ध्यान रहे कि हथेलियाँ ऊपर कि ओर होनी चाहिए |
- श्वास अन्दर खींचे, घुटनों को मोड़ें बिना पैरों को जमीन से जितना हो सके , ऊपर उठाएं |
- हाथों को इस तरह बढाएं कि शरीर जमीन से आसानी से ऊपर उठ सके |
- इस स्थिति में 10 – 20 सेकंड तक रहें और सामान्य रूप से श्वास लेते रहें |
- श्वास बाहर छोड़ते हुए पैरों को जमीन पर वापस ले आएं |
- कुछ समय के लिए मकरासन की स्थिति में लेटे रहें |

ध्यातव्य

- अपनी स्थिति को ठीक प्रकार से बनाने के लिए घुटनों की चक्की (नी कैप) को रोककर नितंबो को दबाकर रखना चाहिए | यह आसन भुजंगासन के बाद करने पर अधिक लाभदायक होता है |

लाभ

- साइटिका एवं पीठ के निचले हिस्से के पीड़ा – निवारण में सहायता प्रदान करता है|
- नितंबो की मांसपेशियों एवं वृक्क प्रदेश को सुगठित बनाता है|
- जांघों एवं नितंबो पर एकत्रित अतिरिक्त वसा को कम करता है; शरीर के वजन को नियंत्रित बनाये रखने में यह आसन उपयोगी है |

- उदर के अंगों को लाभ पहुंचता है, पाचन में सहायता करता है|

सावधानियां

- हृदय रोगियों को इस आसन का अभ्यास करने से बचना चाहिए | पीठ के निचले हिस्से में अधिक दर्द होने पर सावधानीपूर्वक अभ्यास करना चाहिए |
- उच्च रक्तचाप , पेप्टिक अल्सर एवं हर्निया रोग से पीड़ित व्यक्ति को यह अभ्यास नहीं करना चाहिए|

घ . पीठ के बल लेटकर किए जाने वाले आसन

(i) सेतुबंधासन

सेतुबंध शब्द का अर्थ सेतु का निर्माण है |इस आसन में शरीर की आकृति एक सेतु की अवस्था में रहती है , इसलिए इसे यह नाम दिया गया है| इसे कटुस्पादासनभी कहा जाता है |

अभ्यास विधि

- दोनों पैरों को घुटनों से मोड़ते हुए एड़ियों को नितंबों के पास लाएं |
- हाथो से पैर के टखनों को मजबूती से पकड़ें और घुटने एवं पैरों को एक सीध में रखें |
- श्वास अंदर खींचते हुए धीरे-धीरे अपने नितंब और धड़ को ऊपर की ओर उठाएं |
- इस अवस्था में 10-30 सेकण्ड तक रहें, इस दौरान सामान्य श्वास लेते रहना चाहिए |
- श्वास बाहर छोड़ते हुए धीरे-धीरे मूल अवस्था में वापस आएं और शवासन में लेटकर शारीर को शिथिल छोड़े दें |

ध्यातव्य

- अंतिम अवस्था में कंधे और सिर जमीन से लगे होने चाहिए |
- अंतिम अवस्था में यदि जरुरत हो तो आप अपनी कमर पर हाथ रखकर अपने शारीर को सहारा डे सकते हैं |

लाभ

- अवसाद एवं चिंता से मुक्त करता हैं | कमर के निचले हिस्से की मांसपेशियों को मजबूत बनाता हैं|
- उदर के अंगों में कसावट लाता हैं | पाचन क्षमता बढ़ाता है और कब्ज से छुटकारा दिलाता हैं |

सावधानियाँ

- अल्सर और हर्निया से ग्रस्त व्यक्तियों और अग्रिम अवस्था वाली गर्भवती महिलाओं को यह आसन नहीं करना चाहिए |

(ii) उत्तानपाद आसन

यहाँ उत्तान का अर्थ ऊपर की और उठा हुआ (उर्ध्व दिशा) और पाद का अर्थ पैर हैं | इस आसन में उत्तान (चित्त) लेटकर पैरों को ऊपर उठाया जाता हैं | इसी कारण इस आसन का नामकरण उत्तानपादासन हुआ |

अभ्यास विधि

- जमीन पर आराम से लेट जाएँ, पैरों की स्थिति सीधी हो और हाथों को बगल में रखें |
- श्वास लेते हुए घुटनों को बिना मोड़े धीरे-धीरे अपने दोनों पैरों को ऊपर उठाएं और 30 डिग्री का कोण बनाएँ |
- सामान्य रूप से श्वास लेते हुए इस अवस्था में कुछ देर ठहरें |
- श्वास छोड़ते हुए धीरे-धीरे अपने दोनों पैरों को नीचे लाएं और जमीन पर रखें |
- इस आसन को एक बार और दोहराएँ |

लाभ

- यह आसन नाभि केन्द्र (नाभिमणिचक्र) में संतुलन स्थापित करता है |
- यह उदर पीड़ा, वाई (उदर-वायु), अपच और अतिसार (दस्त) को दूर करने में सहायक होता हैं |
- यह उदर की मांसपेशियों को मजबूत प्रदान करता हैं |
- यह आसान घबराहट और चिंताओं से उबरने में सहायक हैं |
- यह श्वसन क्रिया को उन्नत करता है और फेफड़े की क्षमता में वृद्धि करता हैं |

सावधानियां

- गहरे तनाव से पीड़ित मरीज बिना श्वास रोके बारी-बारी से अपने पैरों का उपयोग करते हुए इस आसन का अभ्यास करें |

(iii) अर्धहलासन

अर्ध का अर्थ " आधा " और " हल " का अर्थ है खेत जोतने वाला हल | इस आसन में शारीर की स्थिति खेतों की जुताई करने वाले भारतीय हल की अर्द्धआक्रति जैसी हो जाती हैं | इसी कारण इसका नाम हलासन पड़ा |

अभ्यास विधि

- उत्तान अवस्था में बैठ जाएँ, दोनों हाथ जांघों के बगल में रखें और हथेलियाँ जमीन पर हों |
- घुटने को बिना मोड़े अपने पैरों को धीरे-धीरे ऊपर उठाएं और 30 डिग्री पर लाकर रोक दें |
- थोड़ी देर इसी अवस्था में बने रहें, कुछ देर बाद पुन: पैरों को धीरे-धीरे ऊपर उठाएं और 60 डिग्री पर रोक दें |
- इसके बाद थोडा रुककर पुन: पैरों को ऊपर उठाते हुए 90 डिग्री पर लाकर रोक दें, यह हलासन की उचित मुद्रा हैं |
- इस अवस्था में नितंब से कंधे की स्थिति खींची हुई रहेगी |
- इस अवस्था में तब तक रहें जब तक आप रह सकते हैं |
- अपने पैरों को 90 डिग्री की स्थिति से धीरे-धीरे वापस जमीन पर लाएं |रहे वापसी की स्थिति में सिर जमीन से ऊपर न उठें |

लाभ

- यह आसान बदहजमी और कब्जियत से छुटकारा दिलाता हैं |
- यह आसन मधुमेह, बवासीर और गले संबंधी समस्याओं से छुटकारा दिलाने में सहायक हैं |
- यह आसन गहरे तनाव से ग्रस्त व्यक्तियों के लिए अत्यंत लाभदायक है, परन्तु उन्हें बड़ी सावधानी पूर्वक यह आसन करना चाहिए |

सावधानियां

- पीठ के निचले हिस्से के दर्द से पीड़ित व्यक्तियों को दोनों पैरों की सहायता से इस आसन को नहीं करना चाहिए |
- उदर में जख्म होने, हर्निया आदि से पीड़ित व्यक्तियों को यह आसन नहीं करना चाहिए |

(iv) पवनमुक्तासन

पवन शब्द का अर्थ वायु और मुक्त शब्द का अर्थ छोड़ना या मुक्त करना हैं | जैसा कि इस अभ्यास के नाम से ही पता चलता है, यह आसन उदर एवं आंतों से वायु या वात बाहर निकलने में उपयोगी हैं |

अभ्यास विधि

- सर्वप्रथम पीठ के बल लंबवत् लेटना चाहिए |

- दोनों घुटनों को मोड़ते हुए जांघों को वृक्ष के ऊपर ले आएं |
- दोनों हाथों की अंगुलियों को आपस में गूंथते हुए पैरों को पकड़ लें | ठुड्डी को घुटनों के नीचे ले आएं |
- श्वास बाहर छोड़ते हुए सिर को तब तक ऊपर उठाएं, जब तक की ठुड्डी घुटनों से नहीं लग जाए | कुछ समय तक इस स्थिति में रुकें |
- यह अभ्यास पवनमुक्तासन कहा जाता हैं |
- सिर को वापस जमीन पर ले आएं |
- श्वास बाहर छोड़ते समय पैरों को जमीन पर ले आएं |
- अभ्यास के अंत में शवासन में आराम करें |

ध्यातव्य

- पैरों की गतिविधि के अनुसार श्वास-प्रश्वास को एक लय में लाना चाहिए |
- घुटनों को ललाट से स्पर्श करते यह अनुभव करना चाहिए कि कटि प्रवेश में खिंचाव हो रहा हैं; आँखे बन्द रखनी चाहिए | ध्यान कटि प्रदेश पर होना चाहिए |

लाभ

- कब्जियत दूर करता हैं; वात से राहत दिलाता है और उदर के फुलाव को कम करता हैं | पाचन क्रिया में भी सहायक करता हैं |
- गहरा आंतरिक दबाव डालता है, श्रोणि और कटिक्षेत्र में मांसपेशियों, लिगामेंट्स और स्नायु की अति जटिल समस्याओं का निदान करता है और उनमें कसावट लाता हैं |
- यह पीठ की मांसपेशियों और मेरु के स्नायुओं को सुगठित बनाता हैं |

सावधानियां

उदर संबंधी व्याधि, हर्निया, साइटिका या तीव्र दर्द तथा गर्भावस्था के समय इस अभ्यास को न करें |

(v) शवासन

शव शब्द का अर्थ मृत देह हैं | इस आसन में अंतिम अवस्था एक मृत देह जैसी होती हैं |
शारीरिक इस्थिति : निष्क्रिय शिथिल स्थिति |

अभ्यास विधि

- सर्वप्रथम पीठ के बल लेट जाना चाहिए |
- हाथों और पैरों को आरामदायक स्थिति में फैलाकर रखें | आँखे बन्द होनी चाहिए |
- पुरे शारीर को अचेतन अवस्था में शिथिल छोड़ दें |
- नैसर्गिक श्वास-प्रश्वास प्रक्रिया पर ध्यान केंद्रित करें |

- इस अवस्था में तब तक रहें, जब तक कि पूर्ण विश्रान्ति एवं चित्त शान्त न हो जाए |

लाभ

- सभी प्रकार के तनावों से मुक्त करता है|
- शरीर तथा मस्तिष्क दोनों को आराम प्रदान करता है|
- पूरे मं तथा शरीर तंत्र को विश्राम प्रदान करता है|
- बाहरी दुनिया के प्रति लगातार आकर्षित होने वाला मं अंदर की ओर गमन करता है| इस तरह धीरे – धीरे महसूस होता है कि मस्तिष्क स्थिर हो गया |
  अभ्यासकर्ता बाहरी वातावरण से अलग होकर शांत बना रहता है|
- तनाव एवं इसके परिणामों के प्रबंधन में यह बहुत लाभदायक होता है|

15.6 **सामान्य योग प्रोटोकाल भाग** – II

4 कपालभाति

शारीरिक स्थिति : कोई भी ध्यानात्मक आसन जैसे सुखासन / पधमासन / वज्रासन आदि

अभ्यास विधि

- सर्वप्रथम किसी भी ध्यानात्मक आसन में बैठ जाएं |
- आँखे बंद करके पूरे शरीर को शिथिल कर लें |
- दोनों नासिकरंध्रों से गहरी साँस ले और वक्ष स्थल को फैलाएं |
- दोनों नथुनों से गहरी श्वास अन्दर खींचते हुए वक्ष को फुलाएं|
  उदर की मांसपेशियों को दबाव पूर्वक अंदर बाहर करते हुए श्वास छोड़े और ग्रहण करे |
- सक्रियातापूर्वक श्वास बाहर छोडना एवं निष्क्रियता पूर्वक उच्छवास करना चाहिए |
- कम से कम तीव्र श्वास को 30 चक्र पूरा करना चाहिए |
- इसके बाद गहरी श्वास अंदर लेते हुए धीरे – धीरे बाहर छोड़ें |
- इस तरह कपालभातिका एक चक्र पूरा होता है|
- इसी प्रकार प्रत्येक चक्र पूरा करने के बाद गहरी श्वास लेनी चाहिए |
- इस अभ्यास को कम से कम दो बार और दोहराना चाहिए |

श्वसन क्रिया : यह श्वसन क्रिया उदर की मांसपेशियों के सहयोग से बिना किसी अतिरिक्त दबाव के होनी चाहिए | श्वास बाहर छोड़ने की क्रिया वक्ष एवं कंधा क्षेत्र में बिना किसी अनुचित दबाव अथवा गतिविधि के होनी चाहिए | पूरे अभ्यास के समय श्वास – उच्छवास सहज रूप से होने चाहिए |

अभ्यास की चक्र संख्या : प्रारम्भिक अवस्था में 3 चक्र तक अभ्यास कर सकते हैं | प्रत्येक चक्र में 20 श्वासोच्छवास संख्या होनी चाहिए | धीरे – धीरे अभ्यास बढ़ाया जा सकता है|

लाभ

- कपालभाति कपाल को शुद्ध करता है| कफ विकारों को समाप्त करता है |
- यह जुकाम , साइनोसाइटिस , अस्थमा एवं श्वास नली सम्बन्धी संक्रमणों में लाभदायक है|
- यह पूरे शरीर का कायाकल्प करता है और चहरे को सुकोमल और दीप्तिमान बनाये रखता है |
- यह तंत्रिका तंत्र को संतुलित कर शक्तिशाली बनाये रखता है| साथ ही साथ पाचन तंत्र को शक्तिशाली बनाता है |

सावधानियां

- हृदय सम्बन्धी व्याधियों में , चक्कर आने , उच्च रक्तचाप , नासिका से रक्त प्रवाह . मिर्गी , माइग्रेनस्टोक , हर्निया एवं गेस्ट्रिक अल्सर होने की स्थिति में इस अभ्यास को नहीं करना चाहिए |

5 प्राणायाम

(i) नाड़ी शोधन अथवा अनुलोम विलोम प्राणायाम

इस प्राणायाम की मुख्य विशेषता है कि बाएं एवं दाएं नासिकारंध्रों से क्रमवार श्वास – प्रश्वास को रोककर अथवा बिना श्वास – प्रश्वास रोके श्वसन किया जाता है |

शारीरिक स्थिति : कोई भी ध्यानात्मक आसन |

अभ्यास विधि

- सर्वप्रथम किसी भी ध्यानात्मक आसन में बैठ जाएं|
- मेरुदंड कि अस्थि एवं सिर को सीधा रखें और आँखे बंद कर ले |
- कुछ गहरी श्वासों के साथ शरीर को शिथिल कर ले |
- ज्ञान मुद्रा में बायीं हथेली बाएं घुटने के ऊपर रखनी चाहिए | दांया हाथ नासाग्र मुद्रा में होना चाहिए |
- अनामिका एवं कनिष्ठिका अंगुली बायीं नासिका पर रखनी चाहिए | मध्यमा और तर्जनी अंगुली को मोड़कर रखें | दाएं हाथ का अंगूठा दाईं नासिका पर रखना चाहिए |
- बायीं नासिका से श्वास ग्रहण करे | इसके बाद कनिष्ठिका एवं अनामिका अँगुलियों से बाईं नासिका बंद कर ले| दाईं नासिका से अंगूठा हटा कर वहाँ से (दाईं नासिका) श्वास बाहर छोड़े|
- तत्पश्चात एक बार दाईं नासिका से श्वास ग्रहण करना चाहिए |

- श्वासोच्छवास के अंत में दाईं नासिका को बंद करें | बाईं नासिका खोले तथा इसके द्वारा श्वास बाहर छोड़ दें |
- यह पूरी प्रक्रिया नाड़ी शोधन या अनुलोम विलोम प्राणायाम का एक चक्र है|
- यह पूरी प्रक्रिया पांच बार दोहराई जानी चाहिए|

अनुपात एवं समय

- प्रारम्भिक अभ्यासियों के लिए श्वासोच्छवास की क्रिया की अवधि बराबर होनी चाहिए |
- धीरे – धीरे इस श्वासोच्छवास क्रिया को क्रमशः 1 : 2 कर देना चाहिए |

श्वसन

- श्वसन क्रिया मंद , समान एवं नियंत्रित होनी चाहिए | इसमें किसी भी प्रकार का दबाव या अवरोध नही होना चाहिए |

लाभ

- इस प्राणायाम का मुख्य उद्देश्य शरीर को ऊर्जा वहन करने वाले मुख्य स्रोतों का शुद्धिकरण करना है| अतः यह अभ्यास पूरे शरीर का पोषण करता है|
- मन में निश्चलता लाता है और शांति प्रदान करता है| साथ ही एकाग्रता बढाने में भी सहायक है|
- जीवन शक्ति बढाता है और तनाव एवं चिंता के स्तर को कम करता है|
- यह कफ विकार को भी कम करता है|

(ii) शीतली प्राणायाम

शीतली का अर्थ है शीतल होना | यह साधक के चित्त को शांत करता है और मन की व्यग्रता को दूर करता है | जेसा की शीतली प्राणायाम नाम से ही स्पष्ट है , यह शरीर और मन को शीतलता प्रदान करता है | इस आसन की सृष्टि शरीर के तापमान को नियंत्रित करने के लिए ही विशेष रूप से की गयी है| इस प्राणायाम के अभ्यास से न केवल शरीर का तापमान नियंत्रित होता है , बल्कि मन भी एकदम शांत चित्त हो जाता है |

अभ्यास विधि

- पद्मासन मुद्रा अथवा किसी भी अन्य आरामदायक मुद्रा में बैठ जाएं |
- ज्ञान मुद्रा अथवा अंजलि मुद्रा की अवस्था में अपने हाथो को घुटनों पर रख ले |
- जीभ को किनारों से मोड़कर टब का आकार बना ले |
- इस टबनुमा जीभ से साँस लेते हुए जितना हो सके हवा शरीर के अंदर प्रवेश कराएं और मुंह बंद कर ले |

- जालन्धर बंध मुद्रा में जितनी देर हो सके साँस को रोककर रखे |
- जालन्धर बंद मुद्रा से वापस आएं और नासिकारंध्रो से धीरे – धीरे श्वासछोड़ें |

लाभ

- शीतली प्राणायाम रक्त को शुद्ध करता है|
- यह शरीर में शीतलता प्रदान करता है|
- उच्च रक्तचाप वाले व्यक्तियों के लिए यह विशेष लाभप्रद है|
- यह भूख और प्यास का शमन करता है|
- कफ और पित्त के कारण होने वाले अपच और अन्य व्याधियो से दूर करता है|
- यह पुरानी से पुरानी बदहज़मी और तिल्ली रोग से छुटकारा दिलाता है (एसपी.2/58) |
- यह त्वचा और नेत्र के लिए भी लाभदायक है|

सावधानियां

- ठण्ड , कफ अथवा तुन्डिका - शोथ (टोंसिलाइट्-इस) के मरीजों को यह प्राणायाम नहीं करना चाहिए |
- जब तक योग प्रशिक्षक सलाह न दें , इस प्राणायाम को सर्दियों में नही करना चाहिए |

(iii) भ्रामरी प्राणायाम

भ्रामरी शब्द भ्रमर से लिया गया है , जिसका मुख्य अर्थ है भौंरा | इस प्राणायाम के अभ्यास के समय निकलने वाला स्वर भ्रमर के भिनभिनाने के स्वर की तरह होता है| इसीलिए इस योगासन का नाम भ्रामरी प्राणायाम है |

शारीरिक स्थिति : कोई भी ध्यानात्मक आसन |

अभ्यास विधि : I

- सर्वप्रथम किसी भी ध्यानात्मक आसन में आंखे बंद कर बैठ जाएं |
- नासिका सके द्वारा लंबा घर श्वास खींचे |
- नियंत्रित ढंग से श्वास को धीरे – धीरे बाहर छोड़े | श्वास छोड़ते हुए भौंरे जैसी आवाज़ निकाले | इस प्रकार भ्रामरी प्राणायाम का एक चक्र पूर्ण होता है|
- इसे और दो बार दोहराएँ |

अभ्यास विधि : II

- सर्वप्रथम किसी भी ध्यानात्मक आसन में आंखे बंद कर बैठ जाएं|
- नासिका सके द्वारा लंबा घर श्वास खींचे|

- चित्र में दिखाए अनुसार अंगुठो से कर्णछिद्र बंद कर ले | तर्जनी अंगुली से आँखों को बंद करे और नासिकारंध्रो को मध्यमा अंगुली से बंद करे | षणमुखी मुद्रा कहते है|
- धीरे – धीरे नियंत्रित रूप सेश्वास को बाहर छोड़ते समय भौंरे जैसी आवाज़ निकाले | इस तरह भ्रामरी प्राणायाम का एक चक्र पूर्ण होता है|
- इसे और दो बार दोहराएँ |

लाभ

- भ्रामरी प्राणायाम का अभ्यास तनाव से मुक्त करता है और चिंता , क्रोध ,एवं अतिसक्रियता को घटाता है |
- भौंरे जैसी आवाज़ का प्रतिध्वनिक प्रभाव मस्तिष्क एवं तंत्रिकातंत्र पर लाभकारी प्रभाव डालता है |
- यह महत्वपूर्ण शांतिकारक अभ्यास है; जो तनाव सम्बन्धी विकारों को दूर करने में लाभकारी होता है |
- यह एकाग्रता और ध्यान की आरम्भिक अवस्था में उपयोगी है|

सावधानियां

- नाक एवं कान में यदि किसी प्रकार का संक्रमण हो तो इस आसन को नही करना चाहिए |

6. ध्यान

ध्यान लगातार चिंतन – मनन की एक क्रिया है|

शारीरिक स्थिति : कोई भी ध्यानात्मक आसन में बैठ जाएं |

अभ्यास विधि :

- सर्वप्रथम किसी भी ध्यानात्मक आसन में बैठ जाएं |
- मेरुदंड को बिना किसी प्रकार का कष्ट दिए सीधा रखें |
- नियमानुसार ज्ञान मुद्रा में बैठ|
  - अंगूठे एवं तर्जनी अंगुली के सिरों को आपस में स्पर्श कराएँ |
  - अन्य तीन अँगुलियां सीधी और आरामदायक स्थिति में होनी चाहिए |
  - तीनों अंगुलियां एक – दूसरे के अगल – बगल हों और वें एक – दूसरे को स्पर्श करती हों |
  - ऊपर की ओर खुली हुई हथेली की घुटनों पर रखें |
  - हाथों और कंधो को ढीला और शिथिल कर देना चाहिए |
- आंखे बंद करके मुख को थोडा ऊपर की ओर उठाकर बैठ जाएं |

- मुख को थोडा ऊपर की दिशा में उठाकर एकाग्रचित मुद्रा में बैठ जाएं | बिना किसी पर विशेष ध्यान केंद्रित किए केवल अपनी भौंहो के बीच हल्का सा ध्यान केंद्रित करे और अपनी आती – जाती श्वासों को महसूस करे |
- पूर्व विचारों को छोड़ने का प्रयास करे | पवित्र व निर्मल विचार मन में लेन का प्रयास करें |
- इस स्थिति में ध्यान लगाकर कुछ समय तक बैठे रहें |

ध्यातव्य

- ध्यान अभ्यास की प्रारंभिक अवस्था में मन को प्रसन्नचित्त करने वाला संगीत बजाया जा सकता है|
- जितने अधिक समय तक सम्भव हो , इस स्थिति में रुकना चाहिए |

लाभ

- ध्यान योगाभ्यास का सबसे महत्त्वपूर्ण घटक है|
- यह अभ्यासकर्ता को नकारात्मक भावनाओं से दूर रखता है , भय , क्रोध ,अवसाद , चिंता दूर करता है और सकारात्मक भावनाएं विकसित करने में सहायता करता है |
- मस्तिष्क को शांत और निश्चल रखता है|
- एकाग्रता , स्मृति , विचारों की स्पष्टता और मनोबल को बढ़ाता है|
- पूरे शरीर और मस्तिष्क को पर्याप्त आराम देते हुए उन्हें तरोताजा करता है|
- ध्यान आत्म अनुभूति की ओर ले जाता है |

7 संकल्प (योग सत्र का समापन इस संकल्प के साथ करना चाहिए)

हमे अपने मन को हमेशा संतुलित रखना है,
इसमें ही हमारा आत्मविकास समाया है,
मैं खुद के प्रति , कुटुंब के प्रति , काम , समाज और विश्व के प्रति , शांति , आनंद
और स्वास्थ्य के प्रचार के लिए बद्ध हूँ |

संकल्प (योग सत्र का समापन इस संकल्प के साथ करना चाहिए)

मैं संकल्प लेता हूँ कि सर्वदा अपनी सोच में संतुलन बनाये रखूंगा | ऐसी मन: स्थिति मेरे उच्चतम आत्म – विकास की असीम संभावनाएं प्रदान करती है | मैं अपने कर्तव्य निर्वाह के प्रति , कुटुंब और कार्य के प्रति तथा समाज व समूचे विश्व में शांति , स्वास्थ्य और सौहार्द के प्रसार के लिए कृत संकल्प हूँ|

8 शांति पाठ

ॐ सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामय: |
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु , मा कश्चिद्दु:खभाग्भत् ||

ॐSarve Bhavantu Sukhinah,
Sarve Santu Niramayah
Sarve Bhadrani Pasyantu,
Maa Kascit Dukha Bhagbhavet
ॐShantih Shantih Shantih
सब सुखी हों , सब निरोग हों |
सब निरामय हों , सबका मंगल हों ,
कोई दुखी न् हों |

15.7 **सारांश**

प्रस्तुत इकाई में योग का परिचय संक्षिप्त इतिहास योग अभ्यास हेतू आवश्यक दिशा निर्देश, योग की वैज्ञानिक अवधारणा तथा सामान्य योगाभ्यास हेतू प्रोटोकाल के तहत् प्रार्थना सार्वभौमिक शिथिलीकरण के अभ्यास, बीस योगासन, कपाल भांति, तीन प्राणायाम, ध्यान, संकल्प एवं शांति पाठ का वर्णन शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक स्वास्थ्य प्राप्ति हेतू जनसामान्य के कल्याण अर्थात् "लोका: समस्ता: सुखिनो भवन्तु" की मंगल कामना के अनुसार संक्षेप किया गया हैं |

15.8 **बोधात्मक प्रश्न**

1. अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस कब मनाया जाता हैं ?
2. अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस के 2 ग्रीनिज बुक रिकार्ड कौन से हैं ?
3. योगाभ्यास के सामान्य दिशा निर्देशों का वर्णन कीजिये ?
4. "योग स्वास्थ्य प्राप्ति में सहायक हैं" टिप्पणी लिखिये ?
5. योग की वैदिक प्रार्थना का सन्दर्भ लिखिये ?
6. चार चालन क्रिया का वर्णन कीजिये ?
7. खड़े होकर एवं बैठकर किये जाने वाले आसनों का उल्लेख कीजिये ?
8. पैर एवं पीठ के बाल लेटकर किए जाने वाले आसनों का वर्णन कीजिये ?
9. तीन प्रमुख प्राणायामों का विस्तृत वर्णन कीजिये ?
10. कपाल भाति का वैज्ञानिक महत्त्व लिखिये ?
11. ध्यान, संकल्प एवं शांति पाठ की विवेचना कीजिये ?
12. अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस का आह्वान सर्व प्रथम किस देश ने किया ?
13. लम्बाई एवं स्मरण शक्ति बढानें के आसान कौन-कौन से हैं ?
14. मासिक धर्म के समय पेट दर्द दूर करने वाला आसान कौनसा हैं ?
15. ध्यान की मुद्रा का नाम क्या हैं ?

16. तनाव-गुस्सा (क्रोध) दूर करने वाला आसान कौनसा हैं ?

15.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. **Prayer :** Rgveda-10.191.2
2. **Sadilaja/Calanakriya/Yogic Suksma Vyayama :** Also referred as Caaranaa in Hathatatvakaumudi- 9.13-16, Yogic Sukshma Vyayama of Swami Dheerendra Bhramhachari
3. **Tadasana :** Also called as Taalaasana, Yogarahasya of Nathamuni, Kirana Tika, a commentary on Yoga sutras, Shri Yoga Kaustubha-25, Sachitra Caurasi Asana-34, Yoga Asanas by Swami Shivananda.
4. **Vrksasana**: Gheranda Samhita-ii.36, BrihadyogaSopana, Hathayoga Samhita-43, Yoga Marga Pradipa-11
5. **Pada-hastasana/Uttanasana :** Shri Yoga Kaustubha. Yogarahasya of Nathamuni
6. **Ardha Cakrasana:** Traditional Cakrasana has several varieties quite different from this which is practiced over the years
7. **Trikonasana:** Yogarahasya-ii.20 of Nathamuni
8. **Bhadrasana:** Hathapradipika-i.53-54.
9. **Vajrasana:** Gheranda Samhita II-12,Hathayoga- Samhita-Asana- 20, Brhada Yoga Sopana III-14, Sacitra Vyavaharika 16, Narada Purana-33-112
10. **Ardha Ustrasana:** Sri Yoga Kaustibha, Nagoji BhattaVritti on Yogasutra-ii. 46, GherandaSamhita - ii.41describes Ustrasana which is done lying in prone position
11. **Sasankasana:** Gheranda Samhita-ii.12 calls it as Vajrasana, Hathayoga Samhita, Brhada Yoga Sopana, SachitraVyavaharika Yoga-16, Narada Purana-33-112, Brihannaradiya Purana, Yogamargapradipa, Yoga Bija-90, YogaSiksopanishad-I.111-112, Hatharatnavali-iii.9
12. **Uttana Mandukasana:** Hathayoga-Samhita-Asana-42, Cre Yoga Kaustubha-58, Gheranda Samhita II-35, Brhada Yoga Sopana III-41, Sacitra Cauryayasin Asane 81
13. **Vakrasana:** Easier version of Matsyendrasana (mentioned in Hathapradipika) given by Swami Kuvalayananda in his book Asan
14. **Makarasana:** Jaipur Central Meusum, with some variation in hands position.
15. **Bhujangasana:** Gheranda Samhita .ii.42, with some variation, Kirana Tika-ii. 46 on Yoga sutra, Hatha yoga Samhita-49, Sri Yoga Kaustubha-62,

Yogamargapradipa-19, YogaRahasya of Nathamuni-ii.14, Jaipur CentralMuseum-7174.

16. **Salabasana:** Gheranda Samhita-ii.39, Brihada Yoga Sopana-iii46, Hathayoga Samhita- 46,Yogamargapradipa-33.
17. **Setubandhasana/CatuSpadasana:** Yogarahasya of Nathamuni.
18. **Uttana Padasana:** Sri Yoga Kaustubha-94
19. **Ardha Halasana:** Yoga-rahasya II- 17
20. **Pavanamuktasana:** Sri Yoga Kaustubha. It is done in sitting as per Yoga Asanas-3, Sachitra cauryasin Asane-5-7, Shri Yoga Kaustubha-5, Kirana Tika-ii.46 on Yoga Sutra
21. **Savasana:** Gheranda Samhita-ii.19, Hathapradipika-i.32, Hatharatnavali-iii.20,76, Kapala Kurantaka HathabhaSya Paddhati-111, Yuktabhavadeva-vi.21, Asanani-14, Yoga Siddhanta Chandrika-ii.46, Sritatva Nidhi-70, KiranaTika on Yogasutra-ii.46, Brhada Yoga Sopana-iii.24, Hathapradipika, SriYoga Kaustubha-17.
22. **Kapalabhati:** A variation of Bhastrika Kumbhaka of Gheranda Samhita - v. 70 - 72, Kumbhaka Paddhati - 164 - 165, Hathapradipika, Hatharatnavali-22-24, Hathatatvakaumudi-x.12-14, Yuktabhavadeva-vii.110-118.
23. **NadiShodhana / AnulomaViloma Pranayama :** Hathapradipika, It has visualization and internal retention breath. Additionally, Gheranda Samhita-v.38-45 has time units for inhalation, retention and exhalation.
24. **Bhramari Pranayama :** Hathapradipika, Hatharatnavali-ii.26, Kumbhaka Paddhati- 169.
25. **Sitali Pranayama :** Siva Samhita III-81-82, Gheranda , Samhita V-69, Hathapradipika-II-57-58
26. **Dhyana:** Yoga Sutra of Patanjali III.2